

लेखक के दो शब्द

कई वर्ष हुए इस पुस्तक की प्रारंभिक सामग्री का कुछ भाग मासिक 'सार्वदेशिक' पत्र में धारावाही रूप में छपा था। उस समय ही कृपालु पाठकों की ओर से यह मांग उठी थी कि इस सामग्री को जन-साधारण के लाभार्थ बृहत् पुस्तक का रूप दिया जाय। यह मांग तभी से हमारे लक्ष्य में थी।

आर्य समाज स्थापना शताब्दी इस मांग की पूर्ति का उपयुक्त अवसर समझा गया और यह भी कि इस सामग्री के अतिरिक्त अधिक से अधिक ऐसी उपयोगी सामग्री एकत्र करदी जाय जिसमें आर्य समाज का पूर्ण स्वरूप, उसके मन्तव्य, कार्यकलाप तथा उपलब्धियां प्रतिलक्षित हों साथ ही आर्य जनों और आर्य समाजों को एक ही स्थान पर एक ही माध्यम से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने की सुविधा रहे जिसके विषय में वे प्रायः प्रान्तीय सभाओं और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के साथ पत्राचार करते रहते हैं, इस प्रयास में यह विचार भी कार्य रत था। हो सकता है कि इसमें कोई आवश्यक जानकारी दिए जाने से रह गई हो। विज्ञ पाठकों से उसका सुझाव आने पर उसका उपयोग किए जाने की चेष्टा की जायगी।

इस पुस्तक में जो सामग्री प्रस्तुत की गई है यह स्थूल रूप में है। इस सामग्री में से बहुत सी सामग्री विस्तृत, एवं विवेचनात्मक रूप में अन्यत्र भी उपलब्ध होगी परन्तु जहाँ तक हमारी जानकारी है एक ही स्थान पर उसका उपलब्ध होना संभव नहीं है।

इस पुस्तक की अधिकांश सामग्री का श्री बाबूलाल जी गुप्त (पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत लश्कर, ग्वालियर तथा अंतरंग सदस्य सार्वदेशिक आ. प्र. सभा) ने हमारी प्रार्थना पर समीक्षात्मक दृष्टि से अवलोकन किया और अपने सुझावों से उपकृत किया है। हम उनके आभारी हैं।

हम इस प्रयास में कहां तक सफल हुए हैं इसका निर्णय आर्य समाज के प्रेमी विज्ञ पाठक ही ठीक प्रकार से कर सकते हैं।

आशा है कि आर्य जनता और आर्य समाजें सार्वदेशिक सभा के इस प्रकाशन को अधिकाधिक संख्या में अपना कर हमें प्रोत्साहित करेगी और इस प्रकार अपनी आदर भावना का परिचय देगी।

३।५ महर्षि दयानन्द भवन
रामलीला मैदान नई दिल्ली-१

रघुनाथ प्रसाद पाठक

२२-१-१९७५



प्राक्कथन

आर्यसमाज की सर्वोच्च और अन्तर्राष्ट्रीय संस्था "सार्वदेशिक सभा" की स्थापना स्वामी श्रद्धानन्द जी और महात्मा नारायण स्वामी जी की प्रेरणा से ३१ अगस्त सन् १९०६ में हुई। पर कोई भी संगठन तब तक सक्रिय ठोस और सार्वजनिक रूप धारण नहीं कर सकता जब तक उस का कार्यालय सुदृढ़, सुव्यवस्थित और नियमित रूप से संचालित न हो। केन्द्रीय कार्यालय की अनियमता के फलस्वरूप कई शुभ और उत्साह युक्त भावनाओं से प्रारम्भ किये गये संगठन अकाल मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं। कार्यालय के माध्यम द्वारा ही जन-सम्पर्क तरोताजा और नवरक्त संचारक बन सकता है।

सार्वदेशिक सभा की संस्थापक गौरवशाली पुण्य स्मृतिमय दोनों उपर्युक्त विभूतियों की छत्रच्छाया में जिस व्यक्ति ने अपने उमरते जीवन काल में धन और यश के प्रलोभन और आकर्षणों को लात मार आर्य-समाज की मौन सेवा में अपने को संतोभावेन, समर्पित कर दिया, क्या उसे कभी भुलाया जा सकता है? गगन चुम्बी अट्टालिकाओं के शोभा-वर्द्धक शिखरों के नीचे चुपचाप पड़े नीव के पत्थर का क्या कम महत्व है? उस नीव के पत्थर के सिर पर ही तो वह अट्टालिकाएँ इतनी इतराती हैं।

सार्वदेशिक सभा को आज वट वृक्ष तुल्य विशाल चतुर्मुख रूप देने में जिस आर्य महानुभाव ने लगभग आधी सदी तक निरन्तर अपना खून-पसीना, एक निष्ठ अनवरत सेवा भाव से विना किसी लोकेषणा के, बहाया, वही इस पुस्तक के लेखक श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक हैं। पाठक जी सार्वदेशिक सभा के चलते फिरते दफ्तर हैं। सभा के स्थापना काल से आज तक इन ६६ वर्षों में—कितने ही यशस्वी और स्वनामधन्य

अधिकारी आये और गये पर पाठक जी की कर्तव्य-निष्ठा सरलता, विनम्रता और बिना किसी शिकवा शिकायत के उन सब को पूर्ण सहयोग प्रदान करने में रंचमात्र भी न्यूनता नहीं आयी। सभा के तथ्य और आंकड़े आपकी अंगुलियों पर हैं, और निसंकोच तथा निष्कपट भाव से, आपने उन्हें सभा के बदलते अधिकारियों के सम्मुख, यथोचित निर्णय तक पहुँचने के लिए उपस्थित करने में सदा अपने को प्रसन्नता से प्रस्तुत किया।

पाठक जी एक ऐसे दृढ़ आर्य माता पिता की संतान हैं जिन्हें अपने ज्येष्ठ पुत्र के अन्तर्जातीय विवाह के लिए विरादरी की यातनाएं सहनी पड़ीं। वह आर्य समाज का प्रारम्भिक युग था और आर्यों की कड़ी परीक्षा का समय था। पाठक जी के बड़े भाई गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक और महात्मा नारायण स्वामी जी के प्रिय शिष्य श्री शंकरदेव पाठक संस्कृत व्याकरण के उच्च कोटि के विद्वान और सत्याथं प्रकाश का संस्कृत में अनुवाद करने वाले एक मात्र लब्ध प्रतिष्ठ महानुभाव आर्य समाज में हुए हैं। आप आजन्म विभिन्न गुरुकुलों मुख्यतः गुरुकुल वृन्दावन में ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्य पद्धति से व्याकरण और संस्कृत वाङ्मय का अध्यापन कराते रहे।

सिवहारा जि. विजनौर (उ० प्र०) के स्व. श्री पं. लालमणि शर्मा वैद्य प्रधान आर्यसमाज के कनिष्ठ पुत्र श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक हैं जिन्होंने जहां एक ओर सार्वदेशिक सभा की आन्तरिक व्यवस्था को दायित्व पूर्ण पद पर लगभग आधी सदी तक रहते हुए, संवारा निखारा वहां साथ ही वैदिक वाङ्मय के गम्भीर मन्थन, अनुशीलन और स्वाध्याय में सदा संलग्न रहे। संस्कृत और हिन्दी भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी पर भी आप का अडिग आधिपत्य है। फलतः आपने हिन्दी में दर्जनों पुस्तकें लिखकर आर्य साहित्य की श्रीवृद्धि की है। पाठक जी की कलम में कुछ अनूठी विशेषताएं हैं। आप की भाषा सरल, सुगम सुबोध, और निरन्तर प्रवाहशील है। पढ़ने वाला आपकी चमत्कारी लेखनी के साथ अनायास ही

अपने को खिंचता, बंधता और लेखक के साथ एकात्मता अनुभव करता चला जाता है। इसीलिए आपकी कुछ पुस्तकों के कई संस्करण निकल चुके हैं। १९७५ में होने वाली आर्यसमाज की शताब्दी के उपलक्ष में पाठक जी ने शंग्रेजी में (१) Vedic Teachings of Dayanand's Talks and Sermons. और आर्य भाषा हिन्दी में (२) आर्यसमाज और उसका संदेश पुस्तकें लिखी हैं।

शताब्दी समारोह के लिए आप द्वारा लिखित कई पुस्तकों में नवीन-तम यह पुस्तक 'आर्यसमाज और उसका संदेश' पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए हम अपने को गौरव शील समझते हैं। इस में सिद्धहस्त चिन्तनशील लेखक ने वह सब कुछ क्रमबद्ध व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत कर दिया है जिससे "आर्यसमाज" का सर्वग्राही परिष्कृत रूप अनायास ही पाठक के हृदय पटल पर अविचल अंकित हो जाता है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के दिव्य जीवन की झांकी प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इस संगठन के वेद प्रतिपादित सिद्धान्त, मान्यताएं १९७५ की शताब्दी तक के इतिहास की चतुर्दिक व्यापी प्रवृत्तियां बहुमुखी आन्दोलन कार्य, उपलब्धियां, शानदार बलिदान हुतात्माओं के जीवन ऐतिहासिक धर्मयुद्ध (सत्याग्रह) इत्यादि सब का रोचक सरस और हृदय ग्राही प्रांजल भाषा में वर्णन है।

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज क्यों स्थापित किया, इसका वर्णन ऋषियर स्वयं अपने क्रान्तिकारी ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" के एकादश समुल्लास में इन शब्दों में करते हैं—“इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। जैसा आर्यसमाज, आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता।”

विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में स्पष्ट किया है कि आर्यसमाज कोई सम्प्रदाय, पन्थ व मजहब नहीं है किन्तु वैदिक धर्म प्रचारक संगठन है। इस का एकमात्र लक्ष्य वेद प्रतिपादित मौलिक रूप में चतुर्दिक सुधार के

कल्पतरु का बीजवमन करते हुए न केवल आर्यजाति किन्तु भूमंडल में नूतन जीवन-जागृति उत्पन्न करने के साधन उपस्थित करना है। यह एक प्रकार का सैनिक संगठन है जो वैदिक संस्कृति-सभ्यता, मान, मर्यादा की रक्षा के निमित्त ऋषिवर ने निर्मित किया था। साथ ही, यह एक ऐसी संस्था है जिसके द्वार जन सेवा और दीन दुखियों, निराश्रितों की सहायता के लिए उन्मुक्त कर दिये गये हैं। वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित, मानव जीवन उन्नायक, नैराश्यनाशक, प्रेरणा और उत्साह प्रद तथा व्यक्ति और समाज में नवरक्त संचारक, सत्संग गंगा का अनवरत प्रवाह आर्यसमाज द्वारा होता है।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस पुस्तक के अनुशीलन से पाठकों के जीवन में सत्प्रेरणा सद् भावना, सत् उत्साह का संचार होगा और वे आर्य समाज के नव राष्ट्र निर्माण तथा सार्वभौम विश्व शान्ति एकता और बन्धुत्व के लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में अपना सहयोग, निःसंकोच और तत्परता से देते रहेंगे। इस पुस्तक से आर्यसमाज के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों के अतिरिक्त उसकी गति विधियों के सम्बन्ध में प्रायः सभी जानकारी प्राप्त होती है।

नरेन्द्र

उपमंत्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

आर्य समाज का स्वरूप

स्वामी दयानन्द ने १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की थी जो आस्तिक समाज है। दयानन्द वेदों को निभ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। आर्यसमाज का वैधानिक मन्तव्य है 'ईश्वर सब सत्य विद्या का आदि मूल है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निराकार, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और नित्य है। एक मात्र उसी की उपासना करनी चाहिए। वेद सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ है।'।

आर्य जन विधवा विवाह के पक्ष में हैं। बाल-विवाह, जात-पात, मांस भक्षण के विरोधी हैं। हवन-यज्ञ आदि संस्कारों को करते हैं। गुरुडम को नहीं मानते।

आर्यसमाज 'वेदों की ओर चलो,' आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करता है जिसके संस्थापक वेदों से निकाल कर ऐसी बातें प्रकाश में लाए हैं जिनको आधुनिक जगत् में मान्यता प्राप्त है। उन्होंने वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद को सिद्ध कर दिया और विविध वैदिक देवताओं को सच्चे परमात्मा के विशेषण बताकर बहुदेवतावाद की मान्यता की निस्सारता प्रतिपादित कर दी। आर्यसमाज कर्म फल और मुक्ति में विश्वास रखता है। आवागमन के चक्र से छूट जाना मुक्ति है।

दयानन्द उच्च कोटि के राष्ट्रवादी थे। उनका आर्यसमाज आंदोलन भारत में आधुनिक राष्ट्रीयता का कारण और कार्य रहा है।

आर्यसमाज के प्रति लोगों के आकर्षण के निम्नलिखित कारण हैं :

१. वेदों की पुनः प्रतिष्ठा, २. एक परमात्मा की पूजा, ३. वेदों की अपौरुषेयता, ४. जन्मना जात-पात का खंडन, ५. दलितोद्धार, ६. समाज सेवा, ७. अपने उद्योग से प्रत्येक व्यक्ति के अधिक से अधिक ऊंचा उठने की मान्यता, ८. भारत-भारतीयों का है सर्वप्रथम इस आवाज का उठाना, ९. देश भक्ति के भावों को मरना।”

(एनसाईक्लोपीडिया आफ रिलीजन्स पृ० १७६)



विषय-सूची

आर्य	१	आर्यसमाज वेद वादी है विकास	
समाज	१	वादी नहीं है	१२
आर्य समाज	१	मनुष्यों में सहज ज्ञान नहीं होता	१२
स्थापना	२	वैदिक धर्म क्या है ?	१२
महर्षि दयानंद सरस्वती	२	वेदों की ओर चलो का अर्थ	१५
आर्य समाज से आशाएँ	३	तीन प्रकार की उन्नति	१५
महर्षि की आशाएँ	३	वेद की उदात्त शिक्षा	१५
आर्य समाज असीम प्रेम की आग	३	वेद प्राणीमात्र के लिए हैं	१६
उद्देश्य	४	दर्शन शास्त्र	१६
नियम	४	तीन अनादि सत्ताएं	१७
नियमों का सार	५	ईश्वर	१८
अन्यों की दृष्टि में आर्यसमाज के नियम	६	ईश्वर की मूर्ति नहीं बन सकती	१९
वेद	८	देवी देवता	१९
वेद प्रकरण	९	वर्तमान हिन्दू धर्म	२०
वेद और साइंस	९	मूर्ति पूजा	२२
वेदों की प्राचीनता	१०	परमात्मा का प्रत्यक्ष कैसे होता है ?	२२
वेदों की भाषा	१०	ईश्वर अवतार नहीं लेता	२३
वेद भाष्य	१०	मौजिजे झूठे होते हैं	२४
वेदों में संशोधन नहीं हो सकता	११	ईश्वर की दया व न्याय	२४
ईश्वरीय ज्ञान और बुद्धि का स्वतंत्र प्रयोग	११	पैगम्बर	२५
		ईश्वर कैसे सर्व शक्तिमान है ?	२५

ईश्वर का निजनाम	२५	जगत मिथ्या नहीं है	३४
ईश्वर का नाम स्मरण कैसे किया जाना चाहिए ?	२६	जगत में सुख अधिक दुःख कम	३४
ईश्वर सर्वोच्च आदर्श	२७	स्वर्ग और नरक	३४
जीव	२७	जगत ही सब कुछ नहीं है	३५
जीव ईश्वर से भिन्न सत्ता है	२८	सृष्टि में परोपकारी अधिक सुख पाते हैं	३५
जीव का स्वरूप	२८	मुक्ति	३५
जन्म और मृत्यु	२८	मुक्ति का उपाय	३५
शरीर का धर्म	२८	पापों का क्षय सत्कर्मों से होता है	३५
आवागमन	२८	✓ आश्रम	३७
आवागमन का उद्देश्य	२९	ब्रह्मचर्य	३७
जन्म	३०	गृहस्थ	३७
मनुष्य यौनि सर्व श्रेष्ठ यौनि है	३०	वानप्रस्थ	३७
जन्म मरण का चक्र कब तक चलता है ?	३०	संन्यास	३७
प्रकृति	३०	आश्रमों की मूल भावना	३८
कर्म	३१	तीन ऋण	३८
कर्मण्य बनो	३१	वर्ण	४०
दुःख से बचने के उपाय	३२	वर्ण भेद लोक सम्बन्धी कार्यों से सम्बद्ध है	४०
समाज की उन्नति क्यों आवश्यक है ?	३२	वर्ण और खान पान	४०
निष्काम कर्म की महिमा	३२	सहभोज	४०
पश्चिम का उपयोगितावाद	३२	भ्रातृत्व	४१
जादू, टोना आदि निरर्थक	३२	वर्ण चार हैं	४१
पाप के दंड से कोई नहीं बच सकता	३२	वर्ण बदल सकता है	४१
सृष्टि	३३	संस्कार	४३
		बाल विवाह निषेध	४५
		अन्तर्जातीय विवाह	४५

विधवा विवाह	४६	यूरोपियनों से शिक्षा	५५
व्रत और उपवास	४७	शासन	५६
पितृ श्राद्ध	४८	पार्लियामेंट	५६
आर्यसमाज ने संस्कारों को शुद्ध किया है	४९	बहुपक्ष	५७
यज्ञ	४९	राज्य कब नष्ट होता है ?	५७
ब्रह्म यज्ञ	५०	शुद्धि	५८
देव यज्ञ	५०	दलित वर्ग	५९
पितृ यज्ञ	५०	शिखा और सूत्र	६१
बलि वैश्व देव	५०	राष्ट्र भाषा हिन्दी	६१
अतिथि यज्ञ	५१	आर्य समाज राजनैतिक संस्था नहीं हैं	६२
नैमित्तिक	५१	विदेश यात्रा	६३
भक्ष्याभक्ष्य	५१	आर्य समाज के कार्य	
ग्रहों का फल	५२	वेदादि सत्शास्त्रों से प्रेम करना	६४
सूर्य-चन्द्र ग्रहण	५२	आर्य संस्कृति के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा	६४
विविध विचार		हिन्दी के गौरव की वृद्धि	६४
धर्म	५२	कुरीतियों का निवारण	६५
अर्थ	५३	स्त्रियों के मान की रक्षा	६५
काम	५३	कर्म का आदर	६६
तीर्थ	५३	हिन्दू जाति की एकता की रक्षा	६६
पुरुषार्थ	५३	निरक्षरता निवारण	६७
देव	५४	प्राचीन शिक्षा पद्धति का प्रचार	६७
देव पूजा	५४	सार्वजनिक सेवा भाव की उत्पत्ति	६७
जाति	५४	प्रजातन्त्र प्रणाली	६७
आर्य राष्ट्र	५४	राजनीति पर प्रभाव	६७
भारत की सर्वोपरिता	५५	हिन्दू समाज पर उपकार	६८
अपने देश से प्रेम करो	५५		

आर्य समाज से आशाएं एवं उप-	
लब्धियां एक दृष्टि में	६६
आर्य समाज का विस्तार	७६
आर्य समाज का संगठन	८०
आर्य समाज का सदस्य बनने की रीति	८०
अधिकारियों तथा प्रबंध कारिणी का चुनाव	८०
आर्य समाज व आर्यों की संख्या	८०
साप्ताहिक सत्संग	८०
प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाएं	८१
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा	८२
आर्य समाज के संगठन की विशेषता	८२
अन्य सभाएं	८२
सुप्रसिद्ध संस्थाएं	८३
प्रसिद्ध गुरुकुल	८३
आर्य अनाथालय	८४
प्रेस	८४
वानप्रस्थाश्रमादि	८४
कालेज	८५
संस्कृत स्कूल व कालेज	८५
हाई स्कूल	८५
कन्या स्कूल	८६
पत्र-पत्रिकाएं	८६
उपसंहार	८६
परिशिष्ट	

आर्य समाज के हुतात्मा	
हैदराबाद धर्म युद्ध के हुतात्मा	६५
हैदराबाद राज्य के आर्य वीर जिन्होंने अपने बलिदान से हैदराबाद सत्याग्रह का मार्ग प्रशस्त किया	६६
आर्य समाज की नींव के कुछ पत्थर	१०३
आर्य समाज	१२३
श्री ला० रामगोपाल शालवाले प्रवेश पद्धति (शुद्धि)	१३३
सत्यार्थ प्रकाश	१३७
महर्षि दयानन्द जन्म-तिथि	१४५
आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री	
आर्य समाज स्थापना-तिथि	१५५
आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री सार्वदेशिक सभा द्वारा निर्धारित आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग की पद्धति	१७२
आर्य समाज का प्रवेश-पत्र	१९६
आर्य समाज के दस नियम	१९७
आर्य समाज के दस नियमों की व्याख्या	१९८
नियमों पर एक विहंगम दृष्टि	२०८
नियमों पर गंभीर दृष्टि	२०९
अन्यों की दृष्टि में आर्य समाज के नियम	२११

ऋषि दयानन्द का संक्षिप्त जीवन		घोषणा-पत्र सं० ४	२८४
चरित्र और मुख्य-मुख्य		पर्वों की सूची	२८५
घटनाएं	२१४	आर्य कौन है ?	२८६
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा		शारदा एकट	३००
किए गए महत्व पूर्ण		आर्य समाज वाङ्मय सूची	३०८
शास्त्रार्थ	२२८	आर्य समाज और वेद विषय पर	
स्वामी दयानन्द सरस्वती कव		शोध ग्रन्थ	३२०
और कहाँ ?	२३२	एक ही मार्ग	३२३
उन स्थानों की तालिका जहां-		श्री ओ३म्प्रकाश त्यागी एम.पी.	
जहां स्वामी जी गए		वैदिक धर्म और आर्य समाज	
प्रामाणिक ग्रन्थ	२४३	का स्वरूप एवं कार्य	३४०
महर्षि दयानन्द रचित ग्रन्थों की		अदालतों के फैसले	३४६
सूची	२४३	आर्य ध्वज	३५७
महर्षि के ग्रन्थों पर एक दृष्टि	२४४	आर्य समाज मन्दिर चित्र	३५८
वैदिक साहित्य	२५२	महर्षि दयानन्द के सम्मान में	
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः	२५४	डाक टिकट	३५६
हमारा अभिवादन नमस्ते	२६३	काजमी एकट १६३६	३६१
प्रमाण पत्रम् (शुद्धि)	२६४	नित्य कर्म विधि	३६२
आर्य ध्वज गीत संशोधित रूप में	२६५	प्रातः काल पढ़ने के मन्त्र	३६२
समझदार मुसलमानों का सत्यार्थ		ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासना)	३६२
प्रकाश और महर्षि दयानन्द		नमस्कार मन्त्रः	३६८
के प्रति दृष्टिकोण	२६६	ईश्वर स्तुति प्रार्थना	३६६
आर्य विवाह एकट		स्वस्तिवाचन	३७०
श्री घनश्यामसिंह गुप्त		शान्तिप्रकरणम्	३७३
घोषणा-पत्र सं० १		देवयज्ञ	
घोषणा-पत्र सं० २	२८२	भोजन से पूर्व बोलने का मंत्र	३८३
घोषणा-पत्र सं० ३	२८३	पूर्णमासी की आहुतियां	३८३

अमावस्या की आहुतियाँ	३८३	यज्ञ-प्रार्थना	३८५
पितृयज्ञः	३८३	राष्ट्रीय प्रार्थना	३८६
भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेव)	३८३	संगठन सूत्र	३८६
अतिथियज्ञः	३८४	आरती	३८७
यज्ञोपवीत मन्त्र	३८५	वैदिक संध्या (अंग्रेजी)	३८८

आर्य समाज और उसका सन्देश

आर्य

“आर्य” संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है, “श्रेष्ठ” । संस्कृत में अथवा संसार की अन्य भाषाओं में “आर्य” शब्द जैसा कोई पवित्र और सम्मानित शब्द नहीं है, जिससे दिल और दिमाग की ऐसी विशेषताएं प्रकट होती हों, जैसी आर्य शब्द से प्रकट होती हैं । जो व्यक्ति अपनी दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में और समाज की दृष्टि में ऊंचा उठा होता है, वह सच्चे अर्थ में ‘आर्य’ होता है ।

आर्य शब्द जाति, रंग, देश और काल की सीमाओं से परे है । कोई भी श्रेष्ठ व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, काला हो या गोरा, भारतवासी हो या विदेशी, बूढ़ा हो या जवान, आर्य कहलाए जाने का अधिकारी हो सकता है ।

समाज

समाज का अर्थ है मनुष्यों का व्यवस्थित समूह । मनुष्यों की अव्यवस्थित भीड़ को समाज नहीं कह सकते ।

आर्य समाज

आर्य समाज का अर्थ है, श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज, जिसमें सम्मिलित होकर मनुष्य अच्छा बनता और दूसरों को अच्छा बनाने का यत्न करता है ।

स्थापना

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के प्रचार और वैदिक संस्कृति के प्रसार के लिए सर्व प्रथम आर्य समाज की स्थापना १८७५ ई० में बम्बई नगर में की थी ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८२४ ई० में काठियावाड़ के मौरवी राज्य के टंकारा नामक ग्राम में हुआ था और सन् १८८३ ई० की ३० अक्टूबर को अजमेर में निर्वाण पद को प्राप्त हुए थे ।

फरवरी १८२५ में मथुरा में उनकी जन्म शताब्दी मनाई गई । १८३३ में अजमेर में उनके निर्वाण का अर्धशताब्दी समारोह मनाया गया । १८६० ई० में मथुरा में उनकी दीक्षा शताब्दी मनाई गई ।

महर्षि के जीवन का पूरा परिचय उनके जीवन चरित्र से प्राप्त किया जा सकता है ।

उन्होंने ऋग्वेद के ७वें मंडल तक का और यजुर्वेद का पूर्ण भाष्य हिन्दी में किया । इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत और मुख्यतः हिन्दी में अनेक ग्रन्थ लिखे । उनका ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' वैदिक साहित्य की कुंजी है ।

महर्षि ने वैदिक हीरों पर पड़ी हुई सब धूल को साफ किया । भारत के प्रसिद्ध योगी श्रीयुत अरिविन्द जी ने जो आर्यसमाज के सदस्य न थे उनके वेद भाष्य के विषय में लिखा था—

“वेद भाष्य के सम्बन्ध में मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वेद का अन्तिम और सर्वांगपूर्ण भाष्य कोई क्यों न हो, वेद भाष्य की सच्ची कुंजी ज्ञात करने वाले के रूप में स्वामी दयानन्द का आदर होता रहेगा । युग युगान्तरों के भ्रम, संशय, अज्ञान और अंधविश्वासों की भूल भुलझ्यों में उनकी दिव्य दृष्टि ने सत्य के दर्शन किए ।”

(दयानन्द ऐज व्यूड बाई श्री 'अरविन्द घोष' पुस्तक)

आर्य समाज से आशाएं

आर्य समाज की स्थापना द्वारा वैदिक धर्म प्रचारक संगठन की नींव रखी गई थी। सुधार का कल्पतरु आरोपित एवं आर्य जाति में नूतन जीवन जागृति उत्पन्न करने का साधन उपस्थित किया गया था। आर्य मान-मर्यादा तथा आर्य गौरव-गरिमा की रक्षा के निमित्त एक सैनिक संघ संगठित हुआ एवं सर्वसाधारण को सच्चा धर्म प्रदान करने के लिए सत्संग गंगा का स्रोत खुल गया और दीन दुखियों की सहायता के लिए सेवक समिति उपस्थित की गई। (दयानन्द प्रकाश)

महर्षि की आशाएं

आर्यसमाज से महर्षि को कितनी बड़ी आशाएं थीं उसका किंचित दिग्दर्शन उनके उद्गारों से होता है—

एक पत्र में उन्होंने लिखा था—

परन्तु स्वदेशादि सब मनुष्यों का निर्विघ्नहित आर्य समाज से ही यथार्थ होगा।

(महर्षि का पत्र व्यवहार पत्र संख्या १९३३ चैत्र बदी ९) एक दूसरे स्थल पर उन्होंने लिखा—

‘इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। जैसा आर्य समाज, आयवित्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। (स० प्र० समु० ११)

आर्य समाज असीम प्रेम की आग

अमेरिका के परोक्ष-दर्शी विद्वान् श्री एड्रूज जैक्सन डेविड ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए लिखा—

‘मुझे एक आग दिखाई देती है जो सर्वत्र फैली हुई है। अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु

को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत भूखण्डों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इन सबको जलाने वाली और इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालाएं दिखाई देती हैं। इसका प्रादुर्भाव निम्नस्थ देशों से हुआ है। इसे अपने सुख और उत्थान के लिए मानव ने स्वयं प्रज्वलित किया है।

हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड आग को बुझाने के लिए चहुं ओर वेग से दौड़े परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके उद्दीपक प्रभु की ज्योति से युक्त उसके पुत्र स्वामी दयानन्द को भी भान न था। यह आग प्राचीन आर्य धर्म के पुनरुद्धार के लिए आर्य समाज की भट्टी में प्रज्वलित की गई। ईसाइयों ने भी जिनके मत की आग और पवित्र दीप शिखा पहले पहल पूर्व से प्रकाशित हुई थीं एशिया की इस नई ज्योति (आर्य समाज) को बुझाने में हिन्दुओं और मुसलमानों का साथ दिया परन्तु यह दैवीय आग और भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई।

सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट, नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जलकर भस्म हो जाएगा यहाँ तक कि रोग के स्थान में आरोग्य, अंध-विश्वास के स्थान में बुद्धि और तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विद्या, द्वेष की जगह सौहार्द, वैर की जगह समता, दुःख की जगह सुख, अंध-विश्वासों और पाखण्डों की जगह परमेश्वर और प्रकृति का राज्य व्याप्त हो जाएगा। मैं इस आग को मांगलिक समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथ्वी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।”

उद्देश्य

आर्य समाज के उद्देश्य उसके नियमों में वर्णित हैं जो इस प्रकार हैं—
नियम—१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्याय-

कारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना, पढ़ाना, और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।
५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए ।
६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।
७. सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।
८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।
९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।
१०. सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्व हितकारी नियम पालने में पर-तन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

नियमों का सार

आर्य समाज के नियमों में मानव जीवन के ३ कर्तव्यों की पूर्ति के उपाय बताए गए हैं—

(१) ईश्वर के सम्बन्ध में ।

(२) अपने सम्बन्ध में ।

(३) दूसरों के सम्बन्ध में ।

नियम संख्या १ और २ ईश्वर के सम्बन्ध में हैं । नियम संख्या ३,

४ और ५ मनुष्य के व्यक्तिगत कर्तव्यों से सम्बद्ध हैं अर्थात्—

- (१) वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना ।
- (२) असत्य का परित्याग और सत्य का ग्रहण ।
- (३) प्रत्येक कार्य का सत्यासत्य के विवेक के साथ सम्पादन ।

नियम संख्या ६ से १० तक में दूसरों के प्रति कर्तव्यों का विधान किया गया है—

(१) मनुष्य मात्र की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति में योग देना ।

(२) विद्या का विस्तार करना ।

(३) अपनी उन्नति के साथ दूसरों की भी उन्नति करना ।

(४) समाज के नियमों का पालन करना ।

अन्यों की दृष्टि में आर्य समाज के नियम

आर्य समाज के पहले दो नियम इस बात के सूचक हैं कि आर्य समाज धार्मिक, आस्तिक और एकेश्वरवादी समाज है। तीसरे नियम से स्पष्ट है कि वेद ही इसके धर्म ग्रन्थ हैं अर्थात् आर्यों के प्राचीन धर्म ग्रन्थों के साथ इसका सैद्धान्तिक सम्बन्ध है। चौथे और पांचवे नियमों के द्वारा न केवल सत्य निष्ठा पर ही बल दिया गया है अपितु सत्य की खोज भी आवश्यक ठहराई गई है। सदस्यों को यही आदेश दिया गया है कि वे जोवन पर्यन्त सत्य के अन्वेषी बने रहें और जब कभी उन्हें यह भान हो कि वे असत्य का अनुसरण करते आए हैं तो उन्हें उसका परित्याग करने के लिए भी सन्नद्ध रहना चाहिए। शेष ५ नियमों में मानव के उन कर्तव्यों का विश्लेषण किया गया है जो उसके अन्यों के प्रति होते हैं।

आर्य समाज के सदस्य के लिए धर्म विशुद्ध व्यक्तिगत विषय नहीं होता। हम एक विशाल समष्टि के अंग हैं और इस समष्टि में हमारे स्थान का निरूपण हमारे धार्मिक कर्तव्यों के अनुष्ठान से होता है और इन्हें

हमें सदैव अपनी दृष्टि में रखना होता है। इन नियमों में वर्णित धर्म वह तत्त्व होता है जो व्यक्ति और समष्टि में समन्वय स्थापित करता है। हम अलग-थलग रहने वाले प्राणी नहीं होते जिन्हें कोई बाह्य सत्ता (एजेन्सी) मन माने ढंग से रख देती हो। हम स्वाभाविक और अटूट बंधनों से बंधे होते हैं और हमारे वैयक्तिक योग क्षेम की दूसरों के योग क्षेम की भावना के बिना न कल्पना की जा सकती है और न उसका संपादन ही किया जा सकता है।

(थियोसोफिकल न्यूज एण्ड नोट्स लन्दन जून १९५५ ई०)

स्वामी दयानन्द नेप्रगतिशील मानव समाज की एकता के आदर्शों का जैसा सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया वैसा उनके समय का अन्य कोई व्यक्ति प्रस्तुत न कर सका था। आर्य समाज के दस नियमों से इस बात की सम्यक् पुष्टि हो जाती है। उनमें अत्यन्त उदारता, युक्तियुक्तता और स्वतंत्रता प्रति-लक्षित है और इनमें व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को क्रियान्वित करने का पूर्ण अवसर दिए जाने के साथ-साथ विचार की, व्यवहार की, चुनाव की और धार्मिक व्यक्ति के सदृश आचरण करने की स्वतन्त्रता भी दी गई है। इस प्रकार यह दावा ठीक सिद्ध हो जाता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानव जाति के उच्चतम आदर्शों और मानव की वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति एवं सदाचार के आदर्श को प्रस्तुत किया है। एक मात्र वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लोक और परलोक, आदर्श और व्यवहार, धर्म और विज्ञान, भोग और त्याग व्यक्ति और समष्टि धर्म और बुद्धि, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के मध्य समन्वय का मार्ग बनाने का प्रयत्न किया था। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण न होगा कि शायद संसार भर के धार्मिक इतिहास में किसी धार्मिक एवं मिशनरी सोसाइटी के मार्ग-दर्शन के लिए इन दस नियमों से बढ़िया नियम निर्धारित किए गए हों जो गूढ़ होते हुए भी सरल हैं। समस्त युगों और परिस्थि-तियों में व्यवहार में आने योग्य हों जिनकी प्रवृत्ति उन्नतशील हो और जो नवीन और प्राचीन दर्शन के तत्त्व से समन्वित

हों। ये नियम सर्व ग्राह्य हैं जिनकी सर्व व्यापकता इसी बात में निहित है कि इनमें सच्चे धर्म की सभी आवश्यक चीजें आ गई हैं। मानव समाज के लौकिक और आध्यात्मिक उत्थान की व्यवस्था रखी गई है और हमारी सभी प्रगतियों के लिए-सामाजिक, नैतिक, ऐहिक और आध्यात्मिक-द्वार खुला रखा गया है। संक्षेप में इन नियमों में विश्वधर्म और विशद सदाचार के प्रारम्भिक सभी सिद्धान्त समाविष्ट हैं।

इन नियमों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें साम्प्रदायिकता छू तक नहीं गई है और ये सम्पूर्ण मानव समाज के भले के लिए समस्त कालों और क्षेत्रों के लिए अमिप्रेत हैं।

आर्य समाज का आस्तिकवाद उस प्रभु के चहुँओर गतिमान रहता है जो चेतन है, ज्ञानवान है और आनन्द का भण्डार है। आर्य समाज का प्रभु अभाव से सृष्टि की रचना नहीं करता और न संसार उससे ही निकलता है। जो कार्य वा व्यवहार ठीक हो वह धर्म कहलाता है।

अर्थात् पक्षपात एवं द्वेष रहित सत्य एवं न्याय का आचरण धर्म माना जाता है। धर्म के दस लक्षणों को आर्य समाज धर्म की परिभाषा और स्वरूप मानता है।

मानव अल्पज्ञ है। एक मात्र परमात्मा ही सर्वज्ञ है। मानव को विचार एवं कर्म की जहाँ स्वतन्त्रता दी गई है वहाँ अल्पज्ञताजनित भूलों एवं निर्णयों के वचाव एवं परिमार्जन के लिए तथा अधिकाधिक प्रकाश के लिए उसे ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आश्रित रहने का भी परामर्श दिया गया है। इसीलिए सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करके विद्या का प्रकाश अविद्या का विनाश करना आवश्यक ठहराया गया है।

वेद

ब्रह्म समाज को छोड़ कर अन्य सब आस्तिक मत मतान्तर ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। वेदों का ईश्वरीय ज्ञान सर्वोपरि है।

(आर्य समाज की आधारशिला वेद हैं जिसका अर्थ है बुद्धि पूर्वक ज्ञान । वेद ईश्वरीय ज्ञान है, जो सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को परमात्मा की ओर से प्राप्त होता है । अतः ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आर्य समाज का भवन खड़ा है इसलिए आर्य समाज एक आस्तिक धार्मिक समाज है । यह नास्तिकवाद का घोर विरोधी है ।)

वेद चार हैं । ऋक्, यजुः, साम और अथर्व । चारों वेद ईश्वर प्रणीत होने से निश्चिन्त और स्वतः प्रमाण हैं । वेद से भिन्न जितने ग्रन्थ हैं, जिनमें चार उपवेद, वेदांग, उपांग, चार ब्राह्मण प्रतिशाख्य और १० उपनिषदादि सभी ग्रन्थ सम्मिलित हैं ऋषि प्रणीत होने से परतः प्रमाण हैं अर्थात् ये ग्रन्थ वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और इन में जो वेद विरुद्ध वचन हैं, वे अप्रमाण हैं । हमारे लिए ४ वेद ही प्रमाण हैं । अन्य ग्रन्थ प्रमाण रूप में तभी स्वीकार किए जा सकते हैं जबकि वे वेदानुकूल हों । मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियां ६ दर्शन सूत्र ग्रन्थ, वाल्मीकि रामायण और महाभारत भी ।

ऋग्वेद— में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया गया है, जिससे उन में प्रीति उत्पन्न हो कर उन से उपकार लेने की प्रवृत्ति हो सके ।

यजुर्वेद— में ज्ञान, कर्म और उपासना काण्ड की वृद्धि का फल कितना और कहाँ तक होना चाहिए, इसका विधान किया गया है ।

अथर्ववेद—तीनों वेदों में जो विद्या है, उन सब के शेष भाग की पूर्ति, विधान रक्षा और संशय निवृत्ति के उपाय हैं ।

सामवेद— इससे ज्ञान और आनन्द की उन्नति होती है ।

वेद प्रकरण

वेद सब सत्य विद्याओं के भाण्डार हैं । संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल वेद से प्राप्त होता है ।

वेद और साइंस

श्री अरविन्द जी स्वीकार करते हैं कि 'दयानन्द की इस मान्यता

में कि वेद-ज्ञान साइंस की सच्चाइयों से परिपूर्ण हैं' जरा भी अत्युक्ति नहीं हैं। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि वेदों में अन्य भी ऐसी सच्चाइयाँ मरी पड़ी हैं जिनका आधुनिक जगत को पता नहीं है। ऐसी अवस्था में दयानन्द ने वैदिक ज्ञान की गहराई और विस्तार को घटाकर ही बताया है, बढ़ाकर नहीं।

वेदों की प्राचीनता

वेद मानव जाति का प्राचीनतम पुस्तक है। प्रो. मैक्समूलर लिखते हैं—

“मानव समाज के पुस्तकालय की पहली पुस्तक ऋग्वेद है”।

(मैक्समूलर कृत सैकेरेड बुक्स आफ दी ईस्ट वाल्यूम ३८ पृ० ३१)

वेदों की भाषा

वेद की भाषा सब भाषाओं का मूल स्रोत है और उनमें जो विचार प्रकट किए गए हैं वे ही सब मतों के आदि स्रोत हैं।

(देखें श्री पं० गंगाप्रसाद जी रि० चीफ जज कृत फाउन्टेन हैड आफ रिलीजन ग्रन्थ)

वेद भाष्य

यतः वेद मानव समाज की सर्व प्रथम पुस्तक है अतः उसमें इतिहास नहीं हो सकता। यास्काचार्य का अनुसरण करते हुए महर्षि दयानन्द ने वेद मन्त्रों के यौगिक अर्थ किए हैं। इस बात की सत्यता को मैक्समूलर भी अंगीकार करते हैं। वह लिखते हैं:—

“वेदों में अनेक नाम पाए जाते हैं। परन्तु वे व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के रूप में नहीं देख पड़ते हैं”।

(हिस्ट्री ऑफ एनशिएट संस्कृत लिटरेचर)

वेदों में संशोधन नहीं हो सकता

वेद ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तकें हैं अतः उनमें कोई परिवर्तन या संशोधन अपेक्षित नहीं हैं ।

वेदों में भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक नियम और विधान भरे हुए हैं ।

वेदों का प्रामाण्य सदा एक जैसा रहता है ।

इसके विपरीत कुरान में बड़े सुधार की या सुसंगत व्याख्या की आवश्यकता है । ईसाई मत के धर्म ग्रन्थ बाइबिल के नए ग्रहदनामे ने पुराने अहद- नामे का रूप ही बदल दिया है ।

परमात्मा को अपनी आज्ञाओं को छिपाने की क्या आवश्यकता है ? क्या उसका ज्ञान पूर्ण नहीं है या उसके कार्यों एवं वचनों में कहीं कोई भूल है । यदि नहीं तो जिस पुस्तक में कुछ घटाया-बढ़ाया जा सकता है वह ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तक नहीं कही जा सकती ।

ईश्वरीय ज्ञान और बुद्धि का स्वतन्त्र प्रयोग

आर्य समाज ईश्वरीय ज्ञान को आवश्यक समझता है । मनुष्य अल्पज्ञ है । उसकी बुद्धि और शक्ति सीमित है । प्रकाश की प्राप्ति और संशय निवारण के लिए उसे दैवीय सहायता की आवश्यकता होती है । यह सहायता उसे वेदों से मिलती है । वेद मनुष्य की बुद्धि को कावू में रखते और मनमानी करने से रोकते हैं । अपनी अल्पज्ञता को अनुभव करना बुद्धि संगत होता है । ठीक इसी प्रकार आवश्यक होने पर ईश्वरीय सहायता की खोज करना भी बुद्धि संगत होता है । यह दावा दर्प और अज्ञान पूर्ण है कि मनुष्य सर्वज्ञ और सर्व शक्ति सम्पन्न है और वह बाहरी सहायता के बिना सब कुछ कर सकता है । इतिहास से इस दावे का समर्थन नहीं होता । वेद का ईश्वरीय ज्ञान हमें अपनी बुद्धि का स्वतन्त्र समुचित प्रयोग करने से नहीं रोकता । आर्य समाज अपने सदस्यों को लकीर का फकीर या अन्ध विश्वासी बनाना नहीं चाहता, इसलिए आर्य समाज के

नियमों में सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग पर बल दिया गया है और यह नियम आर्य समाज की शोभा है।

आर्य समाज वेद वादी है विकास वादी नहीं

आर्य समाज वेद वादी है विकासवादी नहीं, जिसमें क्रमशः ज्ञान वृद्धि की मान्यता है। ईश्वरीय ज्ञान की नहीं। विकास वाद का अब मान नहीं रहा क्योंकि वह एक ही योनि से बहुत सी योनियाँ बन जाने की झूठी और प्रमाण रहित भूल भुलैयाँ में फँस कर उससे बाहर नहीं निकल सका।

मनुष्यों में सहज ज्ञान नहीं होता

मनुष्यों में पशुओं की तरह सहज ज्ञान नहीं होता। भैंस का बच्चा बिना सिखाए पानी में तैरने लगता है परन्तु मनुष्य का बच्चा बिना सिखाए तैर नहीं सकता। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य में नैमित्तिक ज्ञान होता है जो बढ़ कर मनुष्य को देव और घट कर पशु बना सकता है। सृष्टि के प्रारम्भ में यह ज्ञान मनुष्य को ईश्वर से मिलता है। ईश्वर समय-समय पर नहीं अपितु जगत के प्रारम्भ में मनुष्यों को ज्ञान देता है जब वे नैमित्तिक ज्ञान से शून्य होते हैं। अधूरा या त्रुटि पूर्ण ज्ञान देने से जिसे बाद में पूरा अथवा रद्द करना पड़े ईश्वर की सर्वज्ञता और पूर्णता पर कलंक लगाना है, जिसे आर्य समाज बुद्धि और ज्ञान के विरुद्ध मानता है।

वैदिक धर्म क्या है ?

वेद मानव की महत्ता को स्वीकार करके विशुद्ध वैदिक धर्म की शिक्षा देता है, जिसका अभिप्राय है कि मनुष्य वेद ज्ञान को प्राप्त करके तदनुकूल आचरण करे। ज्ञान पूर्वक आचरण से ही पुरुषार्थ सफल होता है। केवल ज्ञान प्राप्त करके उसे आचरण में न लाने से मनुष्य अन्ध-

कार में भटकता है। अज्ञान पूर्वक कर्म करने से मनुष्य और भी अधिक अन्धकार में भटकता है। मनुष्य कर्म से मौत को पार करके ज्ञान से अमरता प्राप्त करता है। यही परम पुरुषार्थ है और यही वैदिक धर्म है। यह शिक्षा मनुष्य मात्र के लिए सब कालों में उपयोगी बनी रहती है। इसीलिए वेद सब देशों और सब कालों के लिए पूर्ण और उपयोगी माने जाते हैं।

वैदिक धर्म ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आश्रित आध्यात्मिक ज्ञान है और उन नित्य एवं अकाट्य नियमों का बोधक है जिनका मानव और प्रकृति पर प्रभुत्व होता है। एक दृष्टिकोण के अनुसार यह नियम साइन्स और दूसरे के अनुसार तत्त्वज्ञान कहलाते हैं।

अन्य मजहबों में प्रतिपादित मानव-समाज की असहायस्था निर्वलता और मुक्ति के लिए किसी बाहरी शक्ति अथवा किसी एक व्यक्ति पर पूर्णतः निर्भरता के साथ वैदिक धर्म का कोई सरोकार नहीं है। वैदिक धर्म में मानव के व्यक्तित्व, उसके गौरव और उसकी स्वतन्त्रता को मान्यता दी गई है। आर्य परम्पराओं पर चलने वाले भारतीयों का विश्वास है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान, ज्ञानवान, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक चेतन सत्ता है।

वैदिक धर्म का मुख्य लक्षण उसकी वैज्ञानिकता है। प्राचीन भारत में धर्म और साइन्स साथ-साथ चलते थे। वैदिक धर्म कभी भी वैज्ञानिक उन्नति से भयभीत नहीं हुआ और न यह कभी उस आतंक व्याप्ति से लालित ही हुआ जो ईसाई मत के धार्मिक न्यायालयों से सम्बोधित होने वाले खूनी न्यायालयों ने व्याप्त किया था। इसने गैलीलियो, कापरनिकस या ब्रूनों के खून से कभी भी अपने हाथ नहीं रंगे। अन्य राष्ट्रों के धार्मिक सिद्धांत साइन्स विरोधी प्रमाणित किए जा चुके हैं। भारत की ब्रह्म विद्या का भवन साइन्स और दर्शन शास्त्र पर खड़ा है। साइन्स की नितान्त अवहेलना पूर्वक जिन धर्मों का विकास हुआ उन्होंने उन जैसे अन्धविश्वासों, अनाचारों और बर्बरता को जन्म दिया जिनसे चर्च के

काले युगों में यूरोप ग्रस्त रह चुका था। धर्म की नितान्त अव-हेलना पूर्वक साइन्स के विकास से नास्तिकता, इन्द्रिय लोलुपता और अश्लीलता व्याप्त होती है। साइन्स और धर्म दोनों के समन्वय से ही एक दूसरे का सुधार और विकास होता है। वैदिक धर्म साइन्स धर्म, बुद्धि तथा आत्मा के मध्य पुल का काम करता है। वैदिक धर्म के सिवा अन्य कोई भी धर्म आधुनिक विज्ञान की भावना के पूर्णतः अनुरूप होने का दावा नहीं कर सकता।

वैदिक धर्म आज के अन्य धर्मों की भांति एक मात्र भारतीयों तक सीमित कभी नहीं रहा और न वह आज ही सीमित है। यह विश्व धर्म है क्योंकि यह शब्द के संकुचित भाव में रिलीजन नहीं है। न यह कोई रुढ़ि ही है और न यह किसी एक व्यक्ति के द्वारा शासित है चाहे वह कितना ही बड़ा एवं पवित्र क्यों न हो।

स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म को इसी प्राचीन विशुद्ध स्वरूप में पुनर्जीवित और विश्व भर में उसका प्रचार करना चाहते थे।

आर्य समाज का सबसे महत्वपूर्ण एवं सुविख्यात स्वरूप बताना अभीष्ट हो तो कहना होगा कि आर्य समाज उस धर्म का प्रचार करता है जो यद्यपि भावनाओं मान्यताओं और विषय की दृष्टि से पुराना है तथापि युग की भावना के अनुरूप है। यह धर्म आडम्बर शून्य एकेश्वरवाद का पृष्ठ पोषक है। ग्रन्थ विश्वासों से परिपूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह रहस्यवाद और चमत्कारों में आस्था रखने के सर्वथा विरुद्ध है। यह विश्व वन्धुत्व की शिक्षा देता है और मानव को अपने शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक उत्थान के लिए अधिक से अधिक जितना सम्भव हो सकता है अवसर प्रदान करता है।

वैदिक धर्म बुद्धि प्रधान और वर्तमान युग के ईश्वर विरोधी भौतिकवाद के तत्वों का वेदों की आस्तिक विचार धारा के माध्यम से सफलता पूर्वक सामना करता और अपने अनुयायियों में सदाचार की भावना कूट-

कूट कर भरता और सबसे बढ़ कर १६ वीं और २०वीं शती के व्यस्त जीवन तथा अतीत के शान्त धार्मिक एवं कर्म काण्ड के जीवन के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है ।

आर्य समाज प्रत्येक वस्तु को सत्य और पवित्र जीवन की कसीटी पर कसता और चाहता है कि प्रत्येक कार्य परमात्मा के नियम और उसकी व्यवस्था के अनुकूल हों ।

आर्य समाज आध्यात्मिक विशेषताओं, शान्तिवाद, शाकाहार और विश्व गवमन्ट पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रतिपादन करता है ।

वेदों की ओर चलो का अर्थ

वेदों की ओर चलो (Back to the Vedas) का अर्थ है पहले जीवन का सही उद्देश्य खोज करके निश्चित करो तब जीवन संग्राम में उतरों ।

तीन प्रकार की उन्नति

मनुष्य की उन्नति के लिए ३ प्रकार की उन्नति का होना आवश्यक है । इसीलिए वेद ने शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक शक्ति पर विशेष बल दिया है और शिक्षा दी है कि इन तीनों प्रकारों की उन्नति एक साथ होने से लाभ है । यदि एक को छोड़कर दूसरी उन्नति की जाए तो इसका अच्छा फल नहीं हो सकता अर्थात् अन्धकार में प्रवेश करना पड़ेगा । ये तीनों उन्नति ही ज्ञान और कर्म के सिद्धान्त की पूर्ति का साधन हैं । इन्हीं से लोक, और परलोक, दोनों की अधिक से अधिक उन्नति हो सकती है ।

वेद की उदात्त शिक्षा

वेद की शिक्षा है, जगत में अधिक से अधिक प्रेम का व्यवहार हो और कोई भी प्राणी किसी दूसरे को कष्ट न पहुंचावे । प्रत्येक सब की

उन्नति में अपनी उन्नति समझे। सब को ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, काले-गोरे, आदि आदि का भेद भुला कर आपस में प्रेम पूर्वक रहना चाहिए।

वेद प्राणी सत्त्व के लिए है

वेद के पढ़ने का सबको समान अधिकार है।

दर्शन शास्त्र

दर्शन छः हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त।

इनके अनुयायी शताब्दियों से आपस में लड़ते आ रहे थे। वेदान्ती दूसरों को मूर्ख कहते हैं। दूसरे लोग वेदान्तियों को पथ भ्रष्ट कहते थे। स्वामी दयानन्द ने सर्व प्रथम बताया कि छहों दर्शन एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। अपितु इन छहों को पढ़कर मनुष्य एक सुनिश्चित-परिणाम पर पहुँचता है।

दर्शनों में वेदों और उपनिषदों की परिभाषाओं की व्याख्या की गई है।

यूरोपियन हमारे उपनिषदों की दिल खोलकर प्रशंसा करते हैं। देखो यूरोप का एक महान् दार्शनिक क्या कहता है ?

“उपनिषदों जैसा उपयोगी और ऊँचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन नहीं है। उपनिषदों से मुझे जीवन में शान्ति मिली है और मरते समय भी मुझे इन्हीं से शान्ति मिलेगी।”

(शापनहार लैक्चर्स आन वेदान्त वाई मेक्समूलर पृ० ८)

वैदिक धर्म दार्शनिक धर्म है। मैक्समूलर कहते हैं—

“अन्य सब देशों ने धर्म की और धर्म ने दर्शन की निन्दा की है। परन्तु भारत ही अकेला देश है जहाँ दर्शन और धर्म ने मिलकर एक साथ काम किया है। यहाँ धर्म ने दर्शन से स्वतन्त्रता ग्रहण की और दर्शन ने धर्म से अध्यात्म तत्व प्राप्त किया।

(देखो सिक्स सिस्टम्स आफ इंडियन फिलासफी पृ० ४०६)

तीन अनादि सत्ताएं

ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि सत्ताएं हैं। वेद बताते हैं कि आत्मा और प्रकृति पर परमात्मा का शासन होता है।

ईसाई मत और इस्लाम की मान्यता है कि यह जगत् अभाव से उत्पन्न हुआ है परन्तु आर्य लोग यह मानते हैं कि अभाव से किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती। (देखो भगवद्गीता ११, १६) आधुनिक विज्ञान भी यही सिखाता है।

बहुत से वैज्ञानिक ईश्वर और आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते परन्तु उच्च कोटि के विज्ञानवेत्ता इनकी सत्ताओं को स्वीकार करने के लिए विवश हैं। यजुर्वेद में कहा गया है कि 'तदेजति तन्नैजति' अर्थात् वह ईश्वर गति देता है परन्तु स्वयं गति में नहीं आता। यूनान के बड़े दार्शनिक अरस्तू ने भी इस कथन का समर्थन किया है।

(देखें सेवेन एजिज पृ० ४६)

बिना गति के संसार की पुनः उत्पत्ति नहीं हो सकती और गति देने वाला ईश्वर है।

प्रकृति के नित्य होने में विज्ञान के अन्दर कोई मत भेद नहीं है सभी विज्ञान वेत्ता उसे सत्य मानते हैं।

जीवात्मा की सत्ता को स्वीकार करने में यद्यपि वैज्ञानिकों में मत भेद है तथापि उच्च कोटि के वैज्ञानिक न केवल जीवात्मा की सत्ता को ही स्वीकार करते हैं अपितु वे उसे सत्य भी मानते हैं।

(देखें साइन्स एण्ड रिलीजन बाई सेविन सैन आफ साइन्स ६, २६, २५)

ईसाई और मुसलमान दलील देते हैं कि परमात्मा सर्व शक्तिमान है अतः वह अभाव से भाव की उत्पत्ति कर सकता है। निश्चय ही परमात्मा अपने अकाट्य नियमों के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता। ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिन्हें वह नहीं कर सकता। न तो वह अपने को मिटा सकता है और न अपने जैसा कोई और परमात्मा बना सकता है। यदि वह ऐसा कर सकता है तो वह सर्व शक्तिमान् न होगा। सर्व शक्तिमान्

का अर्थ केवल यह है कि वह अपनी सामर्थ्य से सृष्टि की उत्पत्ति करता, पालन करता और उसका संहार करता है ।

आज कल वेदान्त फिलासफी की कई विचार धाराएं प्रचलित हैं । एक शंकराचार्य का अद्वैतवाद, दूसरा रामानुज का विशिष्ट अद्वैतवाद, तीसरा वल्लभ का शुद्ध अद्वैतवाद है । माधव का भी द्वैतवाद है ।

स्वामी दयानन्द का मत है कि वेद जिस त्रैतवाद का प्रतिपादन करते हैं उसके अनुसार ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों पृथक-पृथक अनादि नित्य सत्ताएं हैं ।

(देखें ऋग्वेद १६४, २० द्वा सुपर्णा...)

अद्वैत प्रणाली के अनुयायी कहते हैं कि 'समस्त विश्व परमात्मा है' जीव और प्रकृति परमात्मा से पृथक नहीं हैं । वे यह भी कहते हैं कि परमात्मा स्वयं जीव और प्रकृति है । स्वामी दयानन्द की स्थापना है कि समस्त विश्व परमात्मा नहीं है परन्तु समस्त विश्व परमात्मा में समाया हुआ है । यद्यपि वह उससे अलग है । यदि जीव और प्रकृति की उत्पत्ति परमात्मा से होती तो उनमें परमात्मा की विशेषताएं होतीं, पर बात इससे भिन्न है ।

यदि विश्व में परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की सत्ता न होती तो वह इस प्रकार के जटिल विश्व के निर्माण का कष्ट क्यों करता ?

ईश्वर

ईश्वर एक है, अमानवीय है और अद्वितीय है । वह अकेला ही सृष्टि को बनाता है, उसको धारण करता और उसका नाश करता है ।

आर्य समाज के सदस्य एक ईश्वर में विश्वास रखते हैं और उसको छोड़कर अन्य किसी की उपासना नहीं करते ।

हमारे मुसलमान भाइयों को इस बात का अभिमान है कि इस्लाम ने ही संसार को सर्व प्रथम एक मात्र ईश्वर की उपासना करनी सिखाई

है। परन्तु उनके मत के जन्म से करोड़ों वर्ष पूर्व वेदों ने तथा अन्य धर्म ग्रन्थों ने एकेश्वरवाद की घोषणा कर दी थी। युरोपियन भी इस बात की सच्चाई को स्वीकार करते हैं। प्रो० मैक्समूलर ऋग्वेद के 'हिरण्यगर्भ' की ओर संकेत करके इस मान्यता की पुष्टि करते हैं। वेदों और उपनिषदों में एकेश्वरवाद के समर्थक अनेक मंत्र उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार के स्पष्ट उद्धरणों की विद्यमानता में यह कथन अनगल है कि वेद बहुदेवतावाद की शिक्षा देते हैं। वेद तो विशुद्ध एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हैं।

ईश्वर की मूर्ति नहीं बन सकती

ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक है अतः उसकी मूर्ति नहीं बन सकती। ईश्वर के स्थान में देवी देवताओं को पूजना, उनकी मनीषी करना, पत्थरों या धातुओं की मूर्तियों, वृक्षों, नदियों, समाधियों, मजारों आदि पर सिर रगड़ना, निरर्थक और मूर्खता है। ईश्वर मूर्तियों आदि में निवास नहीं करता बल्कि मनुष्यों के हृदयों में निवास करता है और यहीं—पवित्र हृदय में—उसके दर्शन होते हैं। बाहरी आंखों के द्वारा नहीं, अपितु भीतरी आंखों के द्वारा।

देवी देवता

आधुनिक हिन्दू ३३ करोड़ देवताओं को मानता है परन्तु वैदिक साहित्य में ३३ देवताओं का वर्णन है जो हमारे उपास्य देव नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में वे ३३ श्रेणियों में विभक्त हो गए थे। संस्कृत के कोटि शब्द का अर्थ है श्रेणी। बाद में श्रेणी के स्थान में भूल से करोड़ का अर्थ लिया जाने लगा।

हमारी उपासना का पात्र देवाधिदेव एकमात्र परमात्मा ही है।

३३ देवता इस प्रकार हैं :—

८ वसु, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, द्युलोक

११ रुद्र, (१० प्राण+१ आत्मा)

१२ आदित्य १२ महीने

१ इन्द्र विजली

१ प्रजापति यज्ञ

देवता शब्द का अर्थ है प्रकाशमान पदार्थ । इस प्रकार इसका अभिप्राय विद्वान् पुरुष से है ।

देवी शब्द सम्मानित माननीय स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है यथा सीता-देवी, सावित्री देवी आदि-आदि ।

वर्तमान हिन्दू धर्म

आजकल के हिन्दू वस्तुतः पुराण पंथी हैं । पुराण संख्या में १८ हैं । परन्तु स्वामी दयानन्द पुराणों को अवैदिक सिद्ध करते हैं । वेद की परिभाषा में पुराण ब्राह्मण ग्रन्थों को कहते हैं ।

आजकल के हिन्दू समाज में मूर्ति पूजा, जन्मना जात पात की कट्टरता तथा अन्याय जिन विविध बुराइयों ने घर किया हुआ है उन्हें वेदों का समर्थन प्राप्त नहीं है । अतः पुराण जो इन बुराइयों के मूल हैं निश्चित रूप से वैदिक धर्म के विरुद्ध एवं त्याज्य हैं ।

पुराण महर्षि वेद व्यास की रचनाएं बताई जाती हैं जिन्होंने महा-भारत और वेदान्त लिखा था परन्तु यह बात गलत है । पुराणों की रचना भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा भिन्न-भिन्न कालों में बौद्ध और मुस्लिम काल में हुई प्रतीत होती है । स्वामी दयानन्द की इस स्थापना का समर्थन यूरोपियन विद्वानों और रमेशचन्द्र जैसे प्रसिद्ध हिन्दू लेखकों के द्वारा होता रहा है । पुराणों के खण्डन का मुख्य कारण यह है कि उनमें वैदिक शिक्षाओं के विरुद्ध बहुत सी बातें भरी हुई हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

१. देवी के नाम पर पशु वध । देवी के प्रसिद्ध मन्दिर कलकत्ता में विन्ध्येश्वरी का मन्दिर उत्तर प्रदेश में, ज्वालादेवी का पंजाब में

है जहां असंख्य पशुओं का निर्मम वध होता है ।

२. भैरव भगवान को शराव भेंट चढ़ाना और उसे पी जाना ।

३. भगवान के व्यभिचार कर्म में विश्वास रखना ।

४. ब्रह्मा का अपनी पुत्री के साथ जार कर्म ।

(देखें श्रीमद्भागवत तथा अन्य कई पुराण)

५. विष्णु का जालन्धर की पत्नी के साथ दुष्कर्म करना ।

(देखें शिव पुराण)

६. इन्द्र का गौतम की पत्नी के साथ दुराचार करना ।

(श्रीमद्भागवत)

७. ऋषि पत्नियों के साथ शिव की काम क्रीड़ाएं । (शिव पुराण)

८. देवी का अपने पुत्रों के साथ मैथुन करना ।

(देवी भागवत् पुराण)

९. चन्द्रमा का अपनी गुरुपत्नी वृहस्पति के साथ व्यभिचार करना जिससे बुद्ध की उत्पत्ति हुई ।

(श्रीमद्भागवत)

१०. योगीराज महात्मा कृष्ण पर राधिका और कुब्जा के साथ दुराचार करने का लांछन लगाना ।

११. असंभव बातों पर विश्वास करना ।

१२. हनुमान द्वारा चन्द्रमा को ग्रस लेना ।

१३. रावण के दस सिरों का होना ।

१४. मान्धाता का अपने पिता के पेट से उत्पन्न होना ।

१५. व्यास की माता का मछली के गर्भ से जन्म लेना ।

१६. देवी अहिल्या का पत्थर बन जाना ।

१७. बौद्ध और मुस्लिम काल की अनेक घटनाओं की चर्चा का होना ।

यह कहा जाता है कि पुराणों में बहुत से रूपक हैं । उदाहरणार्थ रावण के दस सिरों को ले लीजिये । इसका अर्थ है कि उसके दस सिर न थे परन्तु वह इतना विद्वान् था कि उसके स्वरूप के दस विद्वान् भी विद्वता में उसकी बराबरी न कर पाते थे या वह चारों वेदों और छःहों

दर्शनों का पंडित था। इसी प्रकार के अनेक रूपक हैं। फिर भी उनमें विष अधिक और अमृत बहुत कम है। अतः उनसे पृथक् रहने में ही कल्याण है।

मूर्ति पूजा

आजकल के हिन्दू पक्के मूर्ति पूजक माने जाते हैं। परन्तु मूर्ति पूजा नई चीज है जिसका आविष्कार महान् बुद्ध के पश्चात् हुआ। वेद में और प्राचीन साहित्य में इसके समर्थन में एक शब्द भी नहीं पाया जाता।

परमात्मा निराकार है। अतः उसकी मूर्ति असंभव है। उसकी बनाई हुई सृष्टि और सृष्टि के अद्भुत पदार्थ यथा सूर्य चन्द्र आदि उसकी साकार मूर्तियां हैं।

उसकी पूजा करने का एकमात्र उपाय है उसके गुणों पर विचार करके उन्हें अपने जीवन में धारण करना।

परमात्मा की पूजा का ठीक ढंग जानने के लिए पतंजलि के योग-शास्त्र को पढ़ो।

भगवद् गीता भी (अ २, १२, ३) यह शिक्षा देती है कि बाहरी मूर्तियों पर ध्यान मत दो परन्तु मन को एकाग्र करने के लिए आंखों और कानों को बन्द करो और ओ३म् का जप करो।

अब हमारे पौराणिक भाई भी यह मानने लगे हैं कि वे मूर्ति को भगवान नहीं मानते हैं परन्तु मूर्ति पूजा भगवत् भजन का एक ढंग है जो निश्चय ही गलत हानिकर और पतनकारी है। यूरोप में संस्कृत के विद्वान् महर्षि दयानन्द की इस स्थापना से सहमत हो गये हैं कि प्राचीन आर्य मूर्ति पूजक न थे।

परमात्मा का प्रत्यक्ष कैसे होता है ?

जैसे कान से रूप और नेत्र से शब्द ग्रहण नहीं हो सकता, वैसे ही

अनादि परमात्मा को देखने का साधन शुद्ध अन्तःकरण है जो विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। इस सृष्टि में परमात्मा की रचना विशेष चिह्न देखकर परमात्मा प्रत्यक्ष होता है। रंग बिरंगी और विचित्र सृष्टि को नियमानुरूप बंधी देखकर सहज ही अनुभव हो जाता है कि इसको बनाने वाली कोई न कोई सर्वशक्तिमान्, महान् ज्ञानवान् चेतन सत्ता अवश्य है। परमात्मा बहुत सूक्ष्म है इसलिए पार्थिव आंखों से दिखाई नहीं पड़ता। इसको देखने की विधि इस प्रकार है:—

१. अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, स्वाध्याय।
२. प्राणायाम के द्वारा शरीर और मन की उन्नति।
३. अभ्यास के द्वारा चित्त को एकाग्र करना।
४. निष्काम कर्म द्वारा ज्ञान वृद्धि।
५. ईश्वर के गुणों को जीवन में धारण करके अन्यो को ईश्वर की सत्ता अनुभव कराना।
६. परोपकार करते हुए अपना जीवन ईश्वर के अर्पण रखना और जो पापाचरणेच्छा समय में भय, शंका और लज्जा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से होती है। इससे भी परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है।

ईश्वर अवतार नहीं लेता

ईश्वर अनन्त, अजन्मा और निर्विकार होने से उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जन्म लेने वाली वस्तुओं में परिवर्तन होता है और वे ही नाश को प्राप्त होती हैं। वेद में ईश्वर को, “अकायम्” कहा है अर्थात् वह जन्म मरण, शरीर धारण रहित है। जो परमात्मा सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख, दुःख दृश्यादि गुण रहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्यों कर आ सकता है? आता जाता वह है जो एक देशीय हो। जो अचल, अदृश्य और जिसके बिना एक परमाणु भी खाली

नहीं है उसका अवतार कहना निरी मूर्खता है ।

आजकल के हिन्दू राम, कृष्ण, बुद्ध आदि को भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द कहते हैं कि यह मान्यता नितान्त वेद विरुद्ध है ।

परमात्मा का कोई आकार नहीं होता और वह सर्वत्र विद्यमान है । तब फिर वह एक शरीर में क्योंकर बद्ध हो सकता है ? इसके अतिरिक्त वह पापों से रहित है और पापी ही जन्म मरण के चक्र में फँसता है ।

राम ने सीता के लिए विलाप किया । यदि वह ईश्वर का अवतार होते तो उन्हें दुःख और चिन्ता क्यों होती ? दयानन्द राम और कृष्ण को परमात्मा के विनम्र भक्त तथा आदर्श चरित्र के महापुरुष मानते हैं जिनका संसार को अनुसरण करना चाहिए । इन महापुरुषों का स्वांग रचना मूर्खता है ।

मौजिजे भूठे होते हैं

मौजिजे अर्थात् दैवी शक्ति की सब बातें झूठी हैं । सृष्टि क्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी हैं । मरे हुए को कोई नहीं जिलासकता । मन्त्र बल से पूर्ण परमात्मा न आता है और न जाता है । यदि मन्त्र बल से परमेश्वर बुला लिया जाता तो उन्हीं मन्त्रों से मरे हुए जीवित हो जाते और शत्रु को मारने का अमोच अस्त्र हाथ आ जाता ।

ईश्वर की दया और न्याय

ईश्वर दयालु और न्यायकारी है । वह जीवों के उपयोग और प्रयोग के लिए सृष्टि रचता है, जिससे जीव अपने कर्मफल को भोग कर अपने सुधार का अवसर प्राप्त कर सके । सृष्टि में कुछ भी बुरा नहीं है । बुरा तो गलत प्रयोग और उपयोग से होता है । परमात्मा कर्म के अनुसार ही जीव को फल देता है । न कम न अधिक । इससे वह न्यायकारी है ।

पैगम्बर

ईश्वर और हमारे मध्य कोई पैगम्बर नहीं होता। ईश्वर आत्मा के सबसे निकट होता है क्योंकि वह सर्वव्यापक है।

हमारे मुसलमान भाइयों का विश्वास है कि मुहम्मद साहब उनके पैगम्बर है जिनके नाम का प्रतिदिन ५ बार नमाज में उच्चारण किया जाता है। उनकी यह भी मान्यता है कि पैगम्बर की सिफारिश के बिना कोई भी वहिश्त में दाखिल न हो सकेगा। ईसाइयों की भी इसी प्रकार की मान्यता है। ईसा ने कहा, 'मेरे बिना कोई भी खुदा के पास न जा सकेगा।' (देखें संत जो इन १४)

वैदिक शिक्षाएं किसी भी सिफारिश को स्वीकार नहीं करतीं। हमारे अपने शुभ कर्म ही न्यायशील निष्पक्ष परमात्मा से सिफारिश करने के लिए पर्याप्त हैं।

हम ईसाइयों एवं मुसलमानों की तरह ऐसे दोजख (नरक) को नहीं मानते जहाँ मौत के बाद हमारे विरोधी जाते हैं। वे यह मानते हैं कि हिन्दू लोग (काफिर) हैं। दोजख में डाले जाएंगे चाहे उनके कर्म अच्छे ही क्यों न हों।

ईश्वर कैसे सर्वशक्तिमान है ?

ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वह बिना किसी की सहायता के सृष्टि रचता, उसका पालन करता और विनाश करता है। उसके काम, नियम और व्यवस्था के अनुसार होते हैं। न वह अन्याय करता है और न अपने जैसा दूसरा ईश्वर बनाता या उसको मार देता है।

ईश्वर का निज नाम

ईश्वर का मुख्य निज नाम "ओ३म्" है। परमात्मा की विशेषता बताने वाले अन्य अनेक नाम हैं यथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इत्यादि।

हमारे पौराणिक भाई ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र इत्यादि को पृथक् सत्ताधारी प्राणी मानते हैं। परन्तु यह मानना वेद विरुद्ध है। पुराणों ने ब्रह्मा, विष्णु आदि की पृथक् सत्ताएं मानी हैं परन्तु वेदों में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

यद्यपि वेदों में ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र इत्यादि शब्द मिलते हैं तथापि वैदिक शब्द शास्त्र में इन शब्दों को परमात्मा के गुणों का वाचक माना गया है। ब्रह्मा का अर्थ है संसार का कर्ता, विष्णु का अर्थ है संसार का रक्षक और रुद्र का अर्थ है संहार करने वाला।

एकमात्र परमात्मा ही संसार का कर्ता, धर्ता और संहारक है अतः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इत्यादि उसी एक परमात्मा के गुण वाचक नाम हैं। यह है वेद की शिक्षा।

ऋग्वेद मंडल १, १६४, १६ (इन्द्र मित्र) का प्रो० मैक्समूलर ने भी हवाला देकर यह प्रतिपादित किया है कि वेद के अनुसार इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा आदि परमेश्वर के विशेषण हैं।

ईश्वर के नाम का कोई लिंग नहीं है। वेद के अनुसार परमात्मा के नाम पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक तीनों लिंगों में व्यवहृत होते हैं।

हमारे ईसाई भाइयों की मान्यता है कि ईसा ने ही सर्व प्रथम परमात्मा के पितृत्व की शिक्षा दी थी परन्तु यह बात निश्चित रूप से असत्य है। ईसा के जन्म से बहुत पूर्व भारतवासियों को यह शिक्षा दी गई थी कि परमात्मा न केवल हमारा पिता ही है अपितु वह हमारी माता भी है। पाठकों को ज्ञात होगा कि पिता की अपेक्षा माता का प्रेम बहुत ऊंचा होता है।

(देखें ऋग्वेद मंडल १, ८६, १०)

ईश्वर का नाम स्मरण कैसे किया जाना चाहिए ?

ईश्वर का केवल नाम रटने मात्र से कोई फल नहीं होता। कीर्तन, संकीर्तन की पौराणिक विधि वेद विरुद्ध और हानिकारक है। ईश्वर के

गुणों को अपने जीवन में चरितार्थ करना ही वास्तविक नाम स्मरण है। ईश्वर न्यायकारी है, यदि मनुष्य उसके इस गुण को जीवन में धारण करके सत्यपूर्ण और पक्षपात रहित व्यवहार करने लगे तो इस प्रकार उसके एक ही गुण से मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

ईश्वर सर्वोच्च आदर्श

जीव के लिए ईश्वर सर्वोच्च आदर्श होता है जिसे लक्ष्य में रखकर और उसके गुणों को जीवन में धारण कर मनुष्य अपनी उच्च से उच्च उन्नति कर सकता है। यही सच्ची ईश्वरोपासना है। यही पूजा है। यही नाम स्मरण है। सत्याचरण ही उसे प्रसन्न करने का एकमात्र उपाय है। हमारे हृदयों में ईश्वरको वही स्थान प्राप्त रहना चाहिए जो उसे सृष्टि में प्राप्त है। संसार की नैतिकता का स्रोत ईश्वर ही है। अनैतिकता के बवंडर से बचने के लिए यहां तक कह दिया जाता है कि यदि संसार में ईश्वर न भी होता तो उसकी सृष्टि करनी पड़ जाती। परमात्मा परोपकारी है इसीलिए प्रभु की सृष्टि में परोपकारी जन ही सुखी रहते हैं।

जीव

जीव, नित्य, चेतन और स्वतन्त्र सत्ता है। हमारे शरीर का अन्त होता है आत्माका अन्त नहीं होता। जीव के स्वतन्त्र कर्तृत्व में ही मुक्ति निहित है और इसी आधार पर वह अपनी शक्तियों का विकास करने में स्वतन्त्र है। प्रकृति द्वारा प्रस्तुत बाधाएं जीव के भले के लिए होती हैं। इनसे वह बलवान बनता है और उन पर विजय प्राप्त करने का यत्न और संघर्ष करता है। यदि जीव में स्वतन्त्र कर्तृत्व न होता तो वह गुड़िया जैसा निकम्मा बना रहता और उस पर कोई उत्तरदायित्व न होता। उत्तरदायित्व न होने से उसका विकास न होता। तब दया और न्याय का सवाल न उठता। परमात्मा जीव को अवसर देता है

और जीव अपने विवेक के अनुसार उसका प्रयोग करता है ।

जीव ईश्वर से भिन्न सत्ता है

जीवात्मा परमात्मा से भिन्न है और वह परमात्मा नहीं हो सकता ।

जीव का स्वरूप

जीवात्मा निराकार है । न मोटा है, न पतला, न काला, न सफेद न भारी, न हल्का । जीव सूक्ष्म निराकार सत्ता है । जीव का स्वभाव पवित्र, अविनाशी और धार्मिकतामय है । इच्छा, द्वेष, प्रयत्न सुख, दुःख शरीर के निमित्त से आत्मा में आ जाते हैं । अतः ये आत्मा के नैमित्तिक गुण होते हैं । आत्मा के स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं ।

जन्म और मृत्यु

जीवात्मा का शरीर के साथ संयोग होने से जन्म और शरीर से वियुक्त होने पर मृत्यु होती है ।

शरीर का धर्म

मनुष्य का शरीर जीवात्मा के गुणों को सार्थक करने का साधन है । केवल ज्ञान और कर्मेन्द्रियों का समुदाय है । ज्ञान कर्म का नियन्त्रण करता है । मानवता का तकाजा है कि शरीर जीवात्मा के अधीन और उसके अधिकार में रहे परन्तु जीवात्मा संसार के प्रलोभनों में फँसकर अपनी स्वतन्त्रता खोकर इन्द्रियों के अधीन हो जाता है । यही उसका पापकर्म और अधमचिचरण है । तब आवागमन के द्वारा उसका सुधार होता है ।

आवागमन

जीव का पुनर्जन्म होता है । चाहे उसे मनुष्य की योनि प्राप्त हो

या पशु तथा वृक्षादि की। बच्चों के अपने पूर्व जन्म के बताये हुए वृत्तान्तों, एक ही माता-पिता की सन्तानों की रुचियों, स्वभावों और मानसिक योग्यता के भेदों, किसी का अमीर घर में और किसी का गरीब घर में जन्म लेने की विभिन्नताओं से पुनर्जन्म प्रमाणित है। कर्म फल के अनुसार जीव के एक शरीर को छोड़कर दूसरे में जन्म लेने का नाम आवागमन है। मोक्ष प्राप्ति तक जन्म और मरण का चक्र चलता रहता है। पुनर्जन्म का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के कार्यों से होता है। कर्मफल का सिद्धान्त वैदिक धर्म का एक विशिष्ट सिद्धान्त है जिसकी व्याख्या आगे के पृष्ठों में भी की गई है। समझदार यूरोपीय विद्वान् भी इसका समर्थन करते हैं।

जो लोग कर्म के सिद्धान्त और आवागमन में विश्वास नहीं रखते हैं वे जीवन की पहली को हल करने में असमर्थ रहते हैं। उदाहरण के लिए यदि उनसे यह पूछा जाए कि कोई व्यक्ति अन्धा या गूंगा क्यों पैदा होता है तो उनसे इसका उत्तर नहीं बन पड़ता। वे केवल यह कह देते हैं कि “परमात्मा की ऐसी ही मरजी थी। उसने अपनी मर्जी से किसी को अन्धा और किसी को समाखा (आंखों की ज्योति वाला) गना दिया।”

इस प्रकार की धारणा से परमात्मा के गुणों पर आक्षेप आता है। वह न्यायी है या नहीं। अन्धा व्यक्ति उससे पूछेगा, “भगवान् (बाइबिल या कुरान का खुदा) मेरा क्या अपराध था कि आपने मुझे अन्धा बना कर सजा दी है। यदि आपने मुझे बिना कसूर के सजा दी है तो आप न्यायी नहीं हैं। आपसे तो वह जज कहीं अच्छा है जो बिना कसूर के किसी को सजा नहीं देता।”

यद्यपि ईसाई और मुसलमान भाई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते हैं तथापि पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाला हिन्दू बच्चा तत्काल कह देगा कि यह अन्धा अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोग रहा है।

आवागमन का उद्देश्य

आवागमन का उद्देश्य जीव का सुधार है न कि दंडित करके कष्ट

देना । आवागमन का सिद्धान्त हमें प्रसन्नता पूर्वक कष्ट सहन करने की अनूठी शिक्षा देता है । प्रत्येक कष्ट मनुष्य का भविष्य सुधारने और सिर से पापों का बोझ हल्का करने के लिए आया करता है ।

जन्म का ढंग

जीवात्मा वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्र द्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर बाहर आता है । स्त्री और पुरुष का शरीर कर्मों के अनुसार प्राप्त होता है ।

मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ योनि है

मनुष्य योनि कर्म योनि है और पशु-पक्षी से लेकर वृक्षादि स्थावर योनि पर्यन्त सभी भोग योनियां हैं । मनुष्य योनि में मनुष्य, कर्म भी करता है और भोगता भी है । अन्य योनियों में जीव केवल कर्मफल भोगने के लिए जाया करता हैं । जब पाप अधिक और पुण्य कम होता है तब पशु आदि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म कम होता है, तब विद्वानों का शरीर मिलता है । जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है । पूर्व जन्म के पुण्य-पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार भावी जन्म होता है ।

जन्म-मरण का चक्र कब तक चलता है ?

जीव तब तक नाना प्रकार के जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को प्राप्त करके मुक्ति नहीं पाता । उत्तम कर्म करने से मनुष्य उत्तम जन्म लेता है ।

प्रकृति

प्रकृति जगत का उपादान कारण है अर्थात् जिसके बिना कुछ न बन

सके और जो स्वयं न बन सके। ईश्वर निमित्त कारण है। वही जीव के उपयोग के लिए उपादान कारण प्रकृति से सृष्टि की रचना करता है, प्रकृति जड़ है, आत्मा इसे चेतन बनाता है और उस पर शासन करता है। प्रकृति आत्मा के प्रयोग के लिए नाना प्रकार के भौतिक रूप ग्रहण किया करती है। प्रकृति का भोग जीव करता हुआ उसमें फंसता है।

सत्त्व, रज और तम

मनुष्य का शरीर ३ प्रकार के परमाणुओं से बनता है। सत्त्व, रजस तमस। तम अन्धकार को कहते हैं। मनुष्य शरीर में जब तमस परमाणु बढ़ जाते हैं तब अन्तःकरण पर अन्धकार का आवरण आ जाता है, जिससे मानसिक शक्तियों का विकास रुक जाता है। उसी अन्धकार के पर्दे से अन्धकार की किरणें निकल कर मनुष्य को मूर्ख बनाती हैं।

रजस अनियमित कर्तृत्व को कहते हैं। नियमित कर्तृत्व को धर्म और अनियमित को अधर्म कहते हैं। जब मनुष्य में रज के परमाणु बढ़ जाते हैं, तब ये भी आवरण रूप होकर आत्मिक शक्तियों के विकास में बाधक होते हैं और विषय भोग की कामना में प्रकट हुआ करते हैं।

“सत्त्व” प्रकाश को कहते हैं। जब सत्त्व के परमाणु मनुष्य में बढ़ते हैं तब अन्तःकरण में प्रकाश की मात्रा बढ़ती है, जिससे सुगमता से आत्मिक शक्तियों का विकास होता है।

कर्म

कर्म का अच्छा या बुरा फल अवश्य मिलता है। जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु परमात्मा की व्यवस्था में फल भोगने में परतन्त्र है।

कर्मण्य बन्तो

बिना कर्म किये मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। आलस्य और

अकर्मण्यता से मनुष्य और जातियों का नाश होता है ।

दुःख से बचने का उपाय

मनुष्य को अपनी व्यक्तिगत उन्नति के लिए अच्छे कर्म करने चाहिए जिससे उसे दुःख भोगना न पड़े ।

समाज की उन्नति क्यों आवश्यक है ?

समाज की उन्नति भी साथ-साथ होनी चाहिए जिससे समाज में बुरे आदमी न रहने पाएं और उनके बुरे कर्मों से अन्यो को कष्ट न भोगना पड़े ।

निष्काम कर्म की महिमा

कर्म को धर्म (ड्यूटी) समझ कर करना चाहिए । कर्म में फल की इच्छा जुड़ जाने से उसका आदर्श नीचा हो जाता है । फल की इच्छा वाले कर्मों से बंधन होता है और निष्काम कर्मों से मुक्ति मिलती है ।

पश्चिम का उपयोगितावाद

पश्चिम का उपयोगितावाद सकाम कर्म का निष्कृष्ट रूप है जिसमें उपयोगिता के लिए झूठ बोलना भी जायज अर्थात् उचित है ।

जादू-टोना आदि निरर्थक

जादू, टोना, जाप, पुरश्चरण, देवी, देवताओं की मनौतियों आदि से कर्मों का फल नहीं टलता ।

पाप के दंड से कोई नहीं बच सकता

ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा नहीं करता अर्थात् मनुष्य पाप कर्म के फल से कभी नहीं बचता । जल, स्थल विशेष यथा प्रयागराज,

हरिद्वार आदि की यात्रा करके गंगा स्नान द्वारा पाप नहीं धुलते, न ही पण्डों, पुजारियों एवं पुरोहितों के द्वारा कराये गए यज्ञों, अनुष्ठानों एवं पुरश्चरणों से पापों का शमन होता है। पैगम्बर लोग भी दूसरों के पापों का भार हल्का कराने वाउनके सख्त फल से बचाने की क्षमता नहीं रखते। इनके कुचक्र में फँसने से आलस्य, प्रमाद और धनादि की बरबादी के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगता। यदि बिना शुभ कर्म किए पाप धुल जाएं तो पापियों की संख्या बढ़ जाए क्योंकि मनुष्य निर्द्वन्द्व होकर पाप करने लग जाएं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार सजा या पुरस्कार मिलता है। तब फिर कोई परमात्मा की उपासना क्यों करे ?

क्षमा की आशा से परमात्मा की उपासना नहीं की जाती बल्कि अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए की जाती है।

मुसलमान भाई यह मानते हैं कि खुदा सिर्फ मुसलमानों के गुनाहों (पापों) को क्षमा करता है अन्यो के गुनाहों को नहीं। यदि वह सच-मुच ऐसा करता है तो वह निष्पक्ष खुदा नहीं है।

ईसाई यह मानते हैं कि ईसा मसीह अपने अनुयायियों के पापों के बोझ को स्वयं अपने सिर पर ढोकर ले जाएगा। यदि ऐसा ही होता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि ईसाइयों का खुदा एक के पापों का दंड दूसरे को देता है। जब साधारण जज भी ऐसा नहीं करेगा तो न्याय-कारी परमात्मा ऐसा क्यों कर सकता है ?

सृष्टि

सृष्टि की रचना से ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव की सफलता सिद्ध होती है। सृष्टि की रचना जीवात्मा के उपकार के लिए हुई है जिससे वह कर्मों का यथावत् भोग कर सके। सृष्टि प्रवाह से अनादि है। परमात्मा सृष्टि का निमित्त कारण है। प्रकृति उपादान कारण है और समय स्थान और परमात्मा का ज्ञान आदि-आदि साधारण कारण है। हमारी पृथ्वी के समान विश्व में अनेक लोक लोकान्तर हैं जो इसी के

समान बसे हुए हैं ।

इस समय हमारा सृष्टि सम्बत् १९७२६४६०७५ है जो चैत्र प्रतिपदा से आरम्भ होता है । इस सम्बत् की गणना सूर्य सिद्धान्त के अनुसार होती है । आधुनिक विज्ञान वेत्ता और खगोल विद्या विशारद भी इसकी प्रामाणिकता को न्यूनाधिक रूप में स्वीकार करते हैं ।

जगत मिथ्या नहीं है

जगत मिथ्या नहीं है । यह वास्तविकता है । संसार को मिथ्या मानना कर्त्तव्य की अवहेलना करने का अपराध करना, आलस्य को निमन्त्रण देना और उन्नति को कुंठित करना है । संसार के मिथ्या मानने में जगत की उन्नति, परस्पर प्रीति और विद्यादि गुणों की प्राप्ति करने में पुरुषार्थ और श्रद्धा अत्यन्त नष्ट होने से जगत् में उत्तम कार्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं ।

जगत् में सुख अधिक दुःख कम

जगत् में सुख की अपेक्षा दुःख कम है । आत्मिक शक्तियों के विकास से ही इस सत्य का बोध होता है ।

स्वर्ग और नर्क

स्वर्ग सुख विशेष और नर्क दुःख विशेष को कहते हैं । हमारे पौराणिक भाई यह मानते हैं कि स्वर्ग और नर्क किसी खास स्थान पर हैं । ऐसे ही ईसाई और मुसलमान मानते हैं । स्वामी दयानन्द कहते हैं कि अत्यधिक आनन्द और सुख तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों को स्वर्ग और अत्यधिक दुःख और क्लेश तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों को नर्क कहते हैं ।

उदाहरण के लिए निर्धन, बीमार, अज्ञानी और असफल व्यक्ति नर्क में और धनवान, स्वस्थ, विद्वान और भाग्यशाली व्यक्ति स्वर्ग में होते हैं ।

जगत् ही सब कुछ नहीं है

जगत् को ही सब कुछ मानना भोग और विषयाशक्ति को विविध अभिशापों के साथ प्रमुखता देकर अपना अहित करना है।

सृष्टि में परोपकारी अधिक सुख पाते हैं

परमात्मा की सृष्टि में परोपकारी लोग अधिक सुख पाते हैं क्योंकि सृष्टि की रचना में परमात्मा का उद्देश्य परोपकार ही होता है।

मुक्ति

मोक्ष तीनों प्रकार के दुःखों से छूटकर बन्धन रहित होने को कहते हैं। बन्धन दुःखों में ग्रस्त होने का नाम है।

मुक्ति का उपाय

ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्माभ्यास, विद्या प्राप्ति, ब्रह्मचर्य के सेवन और सत्संग से मुक्ति प्राप्त होती है। ईश्वर प्रार्थना से इच्छा शक्ति का विकास होता है।

(क) स्तुति ईश्वर के गुणगान का नाम है। इसी को बार-बार मन में लाना "जप" कहलाता है।

(ख) सत्याचरण, धर्माचरण को कहते हैं।

(ग) जिससे सत्यासत्य का निर्णय हो, वह विद्या कहलाती है।

(घ) संयम पूर्वक रहने को ब्रह्मचर्य कहते हैं। संयम से रहने से आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्ति उत्पन्न होती और बढ़ती है

(च) सत्संग से उपर्युक्त ४ साधनों की सिद्धि होती है।

(छ) अहिंसा (वैर त्याग) सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (मोह रहित होना) यम कहलाते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर भक्ति, ये नियम कहलाते

हैं। ये योग की प्रारम्भिक सीढ़ियां हैं। तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम है। इनसे शारीरिक और मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है।

मुक्ति की इच्छा रखने वालों को ईश्वरोपासना, यम, नियम आदि से हर समय अपने जीवन को प्रभावित रखना चाहिए। मुक्तात्मा मुक्ति के आनन्द का उपभोग परिमित समय के लिए करता है। जिसके पश्चात् वह पुनः कर्म क्षेत्र में आ जाता है।

पापों का क्षय सत्कर्मों से होता है

किसी पैगम्बर पर ईमान लाने, तीबा करने गंगा आदि में स्नान करने, पीपल, तुलसी आदि वृक्षों की पूजा करने, हरिद्वार, प्रयाग आदि की तीर्थयात्रा करने से पापों का क्षय नहीं होता।

गंगा-गंगा कहने, हरि-हरि की रट लगाने, राम-कृष्ण, शिव, भगवती आदि का कीर्तन करने, शिवलिंग या उसकी मूर्ति का दर्शन करने से पाप कभी नहीं छूटता। जो पाप छूट जाए तो कोई दुखी न रहे और पाप करने से भी कोई न डरे। इस पोप लीला के कारण पाप बहुत बढ़े हैं।

जब परमात्मा न तो अवतार धारण करता है और न उसकी मूर्ति ही बनाई जा सकती है तब तथाकथित तीर्थों का उल्लेख क्योंकर हो सकता है? (तीर्थ स्थान, काशी, प्रयागराज, हरिद्वार आदि का) किसी मन्दिर या नाम की परिक्रमा करने से या किसी नदी में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं और स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, इस भ्रांत मान्यता को वैदिक साहित्य में समर्थन प्राप्त नहीं होता और न बुद्धि ही इसे ग्रहण करती है।

आर्य समाज इस बात को स्वीकार करता है कि कुछ तीर्थों में साधु-सन्त रहते थे या वे विद्या के केन्द्र थे अतः वे राष्ट्रीय गौरव की वस्तु थे। प्रयाग उन्हीं विद्या केन्द्रों में से था जहाँ महर्षि भारद्वाज १० हजार विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान किया करते थे।

माता-पिता, गुरुजनों, विद्वानों एवं सत्पुरुषों आदि-आदि की सेवा करना और उनका आदर-सत्कार करना ही बड़ा तीर्थ है। सत्य, विद्या, यम, नियम, योगाभ्यास, पुरुषार्थ तथा सत्याचरण आदि अच्छे कर्मों को भी तीर्थ कहते हैं जिससे दुःख सागर से पार हुआ जाए वही सच्चा तीर्थ है।

आश्रम

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन के इन चार पदार्थों की सिद्धि जीवनोद्देश्य की सफलता और योग्यता सम्पादन के लिए मानव जीवन चार विभागों में विभाजित है :—

ब्रह्मचर्य

शुशिक्षा और सत्य विद्यादि गुण ग्रहण करने के लिए होता है। साधारणतः लड़के के लिए २५ और लड़की के लिए १६ वर्ष तक इसकी अवधि होती है।

गृहस्थ

यथावत् ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए नियम पूर्वक विवाह करना, सन्तान उत्पन्न करना, जीविका उपलब्ध करना, सन्तान को सुयोग्य बनाना, उच्च पारिवारिक जीवन व्यतीत करना। साधारणतः इसकी अवधि २५ से ५० वर्ष की आयु तक की है।

वानप्रस्थ

गृहस्थ और गृहस्थ के भोगों को बिल्कुल त्याग कर ब्रह्मचर्य आश्रम वालों की मांति पुनः अपने को स्वच्छ बना लेना इस आश्रम का मुख्योद्देश्य है। इसकी अवधि ५० से ७५ वर्ष तक की नियत है।

संन्यास

मुक्ति प्राप्ति के साधनों को काम में लाना और जगत् के सुधार में

अपना अधिक से अधिक योग देना इस आश्रम का अभिप्राय है। इसकी अवधि साधारणतः ७५ से १०० वर्ष तक की नियत की गई है।

आश्रम की मूलभूत भावना

मुख्य आश्रम २ हैं, एक गृहस्थ दूसरा संन्यास, अन्य सहायक आश्रम हैं। गृहस्थ की तैयारी का आश्रम ब्रह्मचर्य और संन्यास आश्रम की तैयारी का वानप्रस्थ आश्रम है। जीवन के ७५ वर्ष आत्म साधना के और शेष २५ वर्ष भोगों को इस प्रकार भोगने के लिए अभिप्रेत हैं, जिससे आत्म साधना का लक्ष्य ओझल न होने पाये। मानव जीवन की नींव ब्रह्मचर्य पर रखी जाने से और जीवन का तीन चौथाई भाग मोक्ष सिद्धि में लग जाने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का मार्ग सरल एवं प्रशस्त बन जाता है। साथ ही संस्कृति त्याग-प्रधान बन जाती है। भोगों के अमर्यादित और अनियमित भोग के कारण संस्कृति भोग प्रधान और अशान्ति का कारण बन जाती है, जैसी कि आजकल बनी हुई है।

तीन ऋण

प्रत्येक व्यक्ति पर ३ ऋण हुआ करते हैं। पहला ऋणियों का, दूसरा पूर्वजों का और तीसरा देवताओं का। ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण।

मनुष्य को तीन आश्रमों के द्वारा ये ऋण चुकाने होते हैं। पहले अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में वेद और विविध ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल को पढ़ सीखकर ऋणियों का ऋण उतारा जाता है। दूसरे अर्थात् गृहस्थ आश्रम में मनुष्य सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करके अपने पूर्वजों के ऋण से उऋण होता है। तीसरे अर्थात् वानप्रस्थाश्रम में मनुष्य देवों और विद्वानों के ऋण को चुकाता है।

जब व्यक्ति इन तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है तो वह मोक्ष की सिद्धि करने में स्वतन्त्र हो जाता है जिसके लिए वह संन्यास लेता है।

और सब प्रकार के ऋणों और सांसारिक झंझटों से पृथक् हो जाता है ।

संन्यास किसी भी समय लिया जा सकता है परन्तु पूर्ण वैराग्य की स्थिति में ही होना चाहिए । महान् स्वामी दयानन्द और शंकराचार्य जी ने ब्रह्मचर्य अवस्था में ही संन्यास ग्रहण कर लिया था ।

आजकल के हिन्दुओं की मनोवृत्ति मृत्यु पर्यन्त गृहस्थाश्रम में पड़े रहने की है जिसके कारण आश्रम-व्यवस्था का उद्देश्य जाता रहा है ।

तीसरा आश्रम लगभग समाप्त हो चुका है और संन्यास आश्रम एक पंथ बन गया है । नामधारी साधुओं, वैरागियों, पंडितों, गुरुओं और आचार्यों आदि ने गजब ढा रखे हैं । आर्य समाज इन बुराइयों का सुधार करने का यत्न कर रहा है ।

जो मनुष्य यथावत परोपकार करना ही अपना कर्त्तव्य कर्म समझता है उसी को साधु कहते हैं ।

परमेश्वर का पूर्ण ज्ञान होने से जिसकी प्रकृति के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं ।

पूर्ण ज्ञानी का नाम महात्मा है । धर्म तथा शास्त्रोक्त विधि को पूर्णतया जानने वाले विद्वान्, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, सत्योपदेशक, पूज्य, सर्वोपकारी यजमान के हितकारी को पुरोहित कहते हैं । जो सांगोपांग वेदों के शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया का जानने वाला छल-कपट रहित अति प्रेम से सबको विद्यादाता, परोपकारी, तन, मन, धन से सबका सुख बढ़ाने में तत्पर सत्योपदेशक, सबका हितैषी, धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापन, सत्याचरण का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग कराने वाला हो वह आचार्य या गुरु कहलाता है । माता-पिता और जो विद्या एवं सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ाए उसकी संज्ञा गुरु होती है । अंतःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध करने वाले मनन शील, विद्वान् सदाचारी और धर्म में रत व्यक्ति को ब्राह्मण और पंडित कहते हैं । वेष और जन्म से ही कोई साधु या पंडित नहीं माना जाता ।

वर्ण

समाज को उत्तम रीति से संगठित रखने, व्यक्ति और समाज को संगठित रखने, व्यक्ति और समाज के मध्य कर्तव्यों और अधिकारों का उचित विभाजन करने, समता के भावों को कार्य रूप देने और जीविकोपार्जन के लिए श्रम विभाग के वैज्ञानिक सिद्धान्त पर वर्ण व्यवस्था कायम की गई है। गृहस्थ आश्रम का सम्बन्ध जीविकोपार्जन से है इसलिए यह आश्रम चार विभागों में बांट दिया गया है और इसी का नाम वर्ण है। वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म और स्वभाव पर आश्रित है, जन्म पर नहीं।

वर्ण भेद लोक सम्बन्धी कार्यों से सम्बद्ध है

वर्णों का यह भेद केवल लोक सम्बन्धी कर्मों में होता है। परलोक सम्बन्धी कर्म वेद पढ़ना, यज्ञ करना और दान देना, जिनसे मनुष्य, मनुष्य बनता है, सबके लिए एक जैसे हैं इनमें किसी प्रकार का भेद नहीं है।

वर्ण और खान पान

इन वर्णों में आपस में खान-पान वर्जित नहीं है। अन्तर्जातीय विवाह भी विहित हैं।

सहभोज

आजकल के हिन्दू प्रायः एक दूसरे के साथ नहीं खाते। एक जाति में भी अनेक उपजातियाँ हैं और उनका भी खान-पान अलग-अलग है।

प्राचीन आर्यों में इस प्रकार का भेद-भाव न था।

आर्य समाज समस्त हिन्दुओं में पारस्परिक खान-पान की अनुमति देता है। निःसन्देह अमक्ष्य पदार्थों यथा मांसादि सुरा आदि नशीली चीजों के भक्षण व सेवन की किसी भी दशा में अनुमति नहीं दी जाती।

साथ ही बेईमानी व अन्य दुष्कर्मों से प्राप्त अन्न भक्षण का घोर विरोधी है। खान-पान और रसोई की सात्विकता और स्वच्छता आवश्यक ठहराता है। जूठन खाने और खिलाने को, एक ही पत्तल वा थाली में खाने को शरीर एवं चिकित्सा शास्त्र के आधार पर निषिद्ध मानता है। एक ही पात्र में एक साथ खाने से प्रेम की वृद्धि होती है इस तर्क को अव्यावहारिक मानता है। कुत्ते आदि एक ही पात्र में एक साथ मिलकर खाते हैं परन्तु उन्हीं में एक दूसरे के प्रति वैर, विरोध अधिक प्रतिलक्षित होता है। (देखें स० प्र० स० १०)

भ्रातृत्व

ईसाइयों का दावा है कि सर्व प्रथम ईसामसीह ने सार्वभौम भ्रातृत्व का पाठ पढ़ाया था परन्तु उनसे करोड़ों वर्ष पहले वेद ने यह शिक्षा दी थी कि मनुष्यों को, प्राणीमात्र को मित्र की दृष्टि से देखना चाहिए। “मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे” (यजु० ३६, १८)

वर्ण चार हैं

वर्णों के भेद और उनके कर्तव्य कर्म इस प्रकार हैं :—

ब्राह्मण—वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान लेना तथा समाज का आध्यात्मिक नेतृत्व करना।

क्षत्रिय—राज्य सम्बन्धी कार्यों से वृत्ति प्राप्त करना, समाज को भीतरी और बाहरी शत्रुओं से बचाना और समाज को भौतिक विकास करने में समर्थ बनाये रखना।

वैश्य—पशु-रक्षा, व्यापार और कृषि आदि व्यवसाय करके समाज की सम्पत्ति बढ़ाना।

शूद्र—शारीरिक श्रम से धन प्राप्त करना।

वर्ण बदल सकता है

इस जन्म तथा दूसरे जन्म में वर्ण बदल सकता है। शूद्र ब्राह्मण

और ब्राह्मण शूद्र हो सकता है। वर्तमान जात-पाँत हमारी वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप है जो गृहस्थों को चार विभागों में बाँटती है। वेद इसका एक सुन्दर रूपक के रूप में वर्णन करते हैं जिसमें मानव समाज की एक पुरुष के शरीर के साथ तुलना की गई है।

ब्राह्मण शिर के समान, क्षत्रिय भुजाओं के समान, वैश्य पेट के समान और शूद्र पैरों के समान माने गये हैं।

इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार शिर समस्त शरीर का संचालन करता है इसी प्रकार जो दूसरों का मार्ग प्रदर्शन करते हैं वे ब्राह्मण, जो अपने बाहुबल से प्रजा की रक्षा करते हैं वे शासक वा क्षत्रिय, जो कृषि, व्यापार और उद्योग धंधों से समाज को समृद्ध बनाते हैं वे वैश्य और जो अपने शारीरिक परिश्रम से समाज की सेवा करते हैं वे शूद्र कहलाते हैं। (देखें यजुर्वेद ३१, ११ ब्राह्मणोऽस्य)

हमारे पौराणिक भाई यह मानते हैं कि इन वर्णों का निश्चय जन्म से होता है। उनके मतानुसार ब्राह्मण का बेटा चाहे निरक्षर भट्टाचार्य और दुष्कर्मी हो, ब्राह्मण है और उसका आदर होना चाहिए। निश्चय ही इस प्रकार की मान्यता ने हमारे देश का विनाश किया।

स्वामी दयानन्द की शिक्षा है कि वर्ण, गुण, कर्म और स्वभाव पर निर्भर करता है। जन्म पर नहीं। यदि जन्म पर निर्भर होता तो किसी ब्राह्मण के विधर्मी हो जाने पर भी वह ब्राह्मण ही माना जाता परन्तु ऐसा नहीं होता। वह विरादरी से खारिज कर दिया जाता है। अतः ब्राह्मण का अज्ञानी बेटा ब्राह्मण नहीं रहता। जिस प्रकार डाक्टर का पुत्र बिना डाक्टरी की विद्या प्राप्त किए डाक्टर नहीं माना जाता उसी प्रकार ब्राह्मण का पुत्र होने मात्र से वह ब्राह्मण नहीं माना जा सकता।

वर्ण व्यवस्था के गुण कर्म पर आश्रित होने से उसमें पात्रता और अपात्रता का सिद्धान्त काम करता है। साथ ही वह शक्ति सामंजस्य कायम रखता है। किसी एक वर्ण के आधिपत्य को खुली छुट्टी देकर मनमानी करने और समाज की शान्ति को खतरे में पड़ने से रोकता है।

सुपात्र शूद्र पुत्र उच्च से उच्च ब्राह्मण हो सकता है। इसी प्रकार अन्य वर्णों के सम्बन्ध में जानो।

इतिहास से भी इसका समर्थन होता है। महर्षि वेद व्यास का जन्म एक शूद्रा के पेट से हुआ था परन्तु वे ब्राह्मणों के शिर मीर थे।

वाल्मीकि चाण्डाल कुल के थे। परन्तु वह अपनी योग्यता और सदाचार के बल पर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गये।

यूरोप के संस्कृत भाषा के जानकार विद्वान् स्वामी दयानन्द की इस बात से सहमत हैं। मैक्समूलर कहते हैं :—

“वैदिक युग में इस समय जैसी जात-पात की प्रणाली प्रचलित न थी।” (चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप वाल्यूम २ पृ० ८०७)

पौराणिक लोग शूद्रों और स्त्रियों को वेद पढ़ने का तो क्या सुनने का भी अधिकार नहीं देते थे। आर्य समाज की मान्यता है कि ईश्वर का ज्ञान प्राणीमात्र के लिए है। जिसके कान हैं वह वेद पाठ को सुने, जिसके जीभ है वह इसका पाठ करे और इस प्रकार वेद की शिक्षाओं से अपना कल्याण करे।

वैदिक वर्ण व्यवस्था तभी क्रियान्वित की जा सकती है जब धर्मार्य सभा विद्यार्य सभा और राजार्य सभा संगठित हो जाएं।

संस्कार

जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होता है, वह संस्कार कहलाता है। संस्कार १६ हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :—

१. गर्भाधान—न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष का पुरुष हो तथा दोनों स्वस्थ हों तभी यह संस्कार करना चाहिए। अन्यथा गर्भ स्थापित न होगा। यदि हुआ तो क्षीण हो जाएगा। यदि क्षीण भी न हुआ तो बालक निर्बल और कम आयु वाला होगा। गर्भ स्थापन तिथि से लेकर सन्तानोत्पत्ति होने और उसके बाद स्त्री के पुनः स्वस्थ होने में २॥ वर्ष लगते हैं इसलिए २॥ वर्ष बीतने से पहले दोबारा गर्भा-

घान संस्कार न होना चाहिए ।

२. पुंसवन—पुंसवन का अभिप्राय वीर्य (शक्ति) लाभ और स्त्री की मानसिक शक्ति बढ़ते हुए उसे उत्साहित करना है । गर्भावस्था में स्त्री को प्रसन्न रखना आवश्यक है । (गर्भ स्थिति के दूसरे व तीसरे मास में)

३. सीमन्तोन्नयन—जिससे गर्भिणी स्त्री का मन सन्तुष्ट, आरोग्य, स्थित गर्भ उत्कृष्ट हो और प्रतिदिन बढ़ता जाए ।

(छठे व आठवें मास में)

४. जातकर्म—सन्तानोत्पत्ति पर नाड़ी छेदन आदि के बाद बालक की जीभ पर ओ३म् लिखकर उसके सीधे कान में “वेदोसीति” अर्थात् तेरा गुप्त नाम वेद है, ऐसा सुनाकर उसे घृत और मधु मिलाकर चटाना चाहिए । उत्पत्ति के दिन से ही बालक को आस्तिक बनाने का यत्न किया जाता है । यही इस संस्कार का उद्देश्य है ।

५. नामकरण—बालक का सुन्दर और सार्थक नाम रखना ।

६. निष्क्रमण—इस संस्कार से बालक को घर से बाहर जहां का वायु शुद्ध और दृश्य सुन्दर हो भ्रमण कराया जाता है ।

७. अन्न प्राशन—जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य हो जाए तब इस संस्कार से अन्न खिलाना आरम्भ करना चाहिए ।

८. चूड़ा कर्म—बच्चों के दांत निकलने ७वें मास से प्रारम्भ होकर तीसरे वर्ष के अन्त में समाप्त होते हैं । दांत निकलते समय अन्य रोगों के अतिरिक्त चर्मज (चमड़ी के) रोगों की भी सम्भावना होती है । इसीलिए यह संस्कार किया जाता है, जिससे सिर हल्का हो जाए, और बालक खाल सम्बन्धी तथा गर्मी से होने वाले रोगों से बचा रहे और शारीरिक विकास में बाधा न पहुंचे ।

९. कर्णवेध—अंत्र वृद्धि आदि रोगों को दूर करने के लिए यह संस्कार किया जाता है ।

१०. उपनयन—इस संस्कार से शिक्षा और दीक्षा का आरम्भ होता है ।

११. वेदारम्भ—गायत्री मंत्र से लेकर सांगोपांग चारों वेदों का अध्ययन करने और ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने के नियम धारण करने के लिए यह संस्कार प्रायः उपनयन संस्कार के साथ किया जाता है ।

१२. समावर्तन—ब्रह्मचर्य व्रत, वेद विद्या, उत्तम शिक्षा और विज्ञान को पूर्ण रीति से प्राप्त कर गृहस्थ में प्रवेश करने के लिए यह संस्कार किया जाता है ।

१३. विवाह—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके उत्तम और बलवान सन्तानोत्पत्ति करने और गृहस्थाश्रम के अन्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए यह संस्कार किया जाता है ।

बाल विवाह निषेध

५० या ६० वर्ष के बूढ़े का १६ या १८ वर्ष की लड़की के साथ या ८ या ९ वर्ष की लड़की का उसी आयु के लड़के के साथ विवाह होना बुरा और अनेक सामाजिक बुराइयों का स्रोत है ।

अन्तर्जातीय विवाह

आजकल प्रायः हिन्दुओं की विभिन्न जातियों में यहां तक कि उपजातियों में भी विवाह वर्जित सा ही समझा जाता है । परन्तु हमारा प्राचीन इतिहास बताता है कि भिन्न-भिन्न जातियों में विवाह होते थे ।

आर्य समाज गुण कर्मानुसार विवाह का पक्षपाती और प्रचारक है । अतः अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति देता है और इस समय तक उसके क्षेत्र में अनेक अन्तर्जातीय विवाह हुए हैं । परन्तु आर्य समाज यह सिखाता है कि एक स्त्री या पुरुष का एक ही पति वा पत्नी होनी चाहिए । विवाह विच्छेद भी वर्जित है ।

इस प्रकार के विवाह को कानूनी स्थिति प्रदान कराने के निमित्त

आर्य समाज की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा ने १९३७ में आर्य विवाह एकट पास कराया था जिसे माननीय श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त ने लैजिस्लेटिव एसेम्बली में प्रस्तुत किया था और जिसे सरकारी समर्थन प्राप्त था ।

विधवा विवाह

अक्षत योनि विधवाओं का पुनर्विवाह विहित है । वेद, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की विधवाओं एवं विधुरों के पुनर्विवाह की अनुमति नहीं देता ।

वेद ने आपत्काल में नियोग की अनुमति दी है । अक्षत वीर्य पुरुष और अक्षत योनि स्त्री के होने पर और ऐसी विशेष अवस्थाओं में जिनमें यह इष्ट हो कि विधवा परिवार से पृथक् न हो (क्योंकि पुनर्विवाह होने पर विधवा पति कुल में जाकर उसी परिवार का अंग बन जाती है) अतः उससे उत्पन्न संतान मृत पति और उसी परिवार की समझी जाए । महाभारत काल में यह प्रथा प्रचलित थी । परन्तु आर्य समाज के नेताओं ने निश्चय किया है कि वर्तमान काल में नियोग अव्यावहारिक है । अतः विधवाओं का विधुरों के साथ पुनर्विवाह हो जाना वरेण्य है ।

अविवाहित लड़के का अविवाहित लड़की के साथ और विधुर का विधवा के साथ विवाह उचित है । परन्तु ४० वर्ष के ऊपर की अवस्था वाले विधुर को विवाह की अनुमति नहीं दी गई है ।

युवतियों का बलात् वैधव्य सामाजिक अपराध है । यदि पाठक विवाह संस्कार के अवसर पर बोले जाने वाले वेद मंत्रों को पढ़ें तो उन्हें विदित होगा कि पति और पत्नी का पद समान रखा गया है ।

पत्नी अर्द्धांगिनी कही जाती है । श्रेष्ठ या निकृष्ट अर्द्ध भाग नहीं कही जाती । यूरोपियन लोग पत्नी को श्रेष्ठ अर्द्ध भाग कहते हैं और एशिया के लोग निकृष्ट अर्द्ध भाग मानते हैं । हमारे शास्त्रों में पति के समान ही पत्नी के कर्तव्य और अधिकार बताये गए हैं ।

वेदों के अनुसार स्त्री और पुरुष गृहस्थाश्रम रूपी रथ के एक जैसे दो पहिए होते हैं ।

स्त्रियों के लिए यज्ञोपवीत निषिद्ध नहीं ठहराया गया है । उनके लिए वेद का पढ़ना भी पुरुषों के समान अनिवार्य है । इसीलिए आर्य-समाज स्त्री शिक्षा का प्रबल समर्थक है ।

उत्तर भारत में हिन्दुओं में परदे की प्रथा प्रचलित है परन्तु प्राचीन भारत में पर्दे की प्रथा प्रचलित न थी । मुसलमानों के आगमन पर यह प्रथा चली । आर्य समाज ने इस स्वास्थ्य विनाशक एवं हानिकारक प्रथा को दूर करने का यश प्राप्त किया है ।

आधुनिक बहुसंख्यक हिन्दू स्त्रियों के अधिकारों की परवाह नहीं करते । इतना ही नहीं वे उसे गाली देते और ठोकरें मारते हैं । प्राचीन आर्यों का व्यवहार इससे बिल्कुल भिन्न था । देखो मनु महाराज क्या कहते हैं :—

जहां नारियों की प्रतिष्ठा होती है वहां देवता निवास करते हैं ।
जहां उनका निरादर होता है वहां सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं ।

(यत्र नार्यस्तु-मनुस्मृति अ ३ श्लोक ५७)

जिस घर या समाज में स्त्रियां दुःखी या अवनत होती हैं वह घर या समाज दुःखी और अनुन्नत होता है ।

आर्य समाज स्त्रियों की दशा को उन्नत करने के लिए सतत प्रयत्न-शील है ।

व्रत और उपवास

अपने आश्रम का यथोचित रीति से पालन करना ही सच्चा व्रत समझा जाता है । भूखे और प्यासे रहकर शरीर को सुखाना व्रत नहीं कहलाता । स्त्रियों के लिए पति की सेवा और उसका आदर करना ही एकमात्र सच्चा व्रत होता है ।

(देखें मनु अ० ५ श्लोक १३५)

१४. वानप्रस्थ—विवाह से उत्तम और बलवान सन्तान उत्पन्न करके ओर ज्येष्ठ पुत्र के भी प्रथम सन्तान उत्पन्न हो जाने पर गृहस्थ को छोड़कर संन्यास की तैयारी के लिए यह संस्कार होता है ।

१५. संन्यास—तीनों प्रकार की (पुत्र, धन और कीर्ति) इच्छाओं से रहित होकर ब्रह्मोपासना और परोपकार के लिए अपने को अर्पण कर देने को संन्यासी होना कहते हैं ।

१६. अंत्येष्टि—शरीर का अन्तिम संस्कार, जिसके पश्चात् मृतक के लिए अन्य कुछ शेष नहीं रहता प्राण रहित शरीर (शव) को भस्म कर देना है । इसी को नरमेघ, पुरुषमेघ, नरयाग पुरुषयाग भी कहते हैं ।

भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदि का कोई अस्तित्व नहीं है । ये भन के बहम और अज्ञानता के सूचक हैं ।

भूत का अर्थ है जो होकर न रहा हो । जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो हम कहते हैं कि अमुक आदमी अब नहीं रहा । संस्कृत से अनभिज्ञ साधारण व्यक्तियों का विश्वास है कि 'भूत' कोई प्राणी है जो देख नहीं पड़ता । प्रेत का अर्थ है मृत व्यक्ति की लाश ।

पितृ श्राद्ध

आजकल के हिन्दू यह मानते हैं और समझते हैं कि किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसके बेटे या रिश्तेदार जो दान-पुण्य करते हैं वह मृत व्यक्ति को पहुँच जाएगा परन्तु स्वामी दयानन्द कहते हैं कि यह नितान्त असम्भव है ।

व्यक्ति अपने सत्कर्मों या दुष्कर्मों का फल पाता है ।

मृत व्यक्ति की आत्मा का जीवित प्राणियों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता । आत्मा अपने कर्मों के अनुसार दूसरा शरीर धारण कर लेता है । अतः उसे कोई भेंट नहीं पहुँच सकती ।

दान देने वाले के लिए लाभदायक हो सकता है मृत व्यक्ति को नहीं ।

आर्य समाज की शिक्षा है कि हमें अपने जीवित माता-पिता और गुरुजनों की सेवा-सुश्रूषा करनी चाहिए और यही वास्तविक पितृ श्राद्ध है।

स्वामी दयानन्द कहते हैं कि उत्तम विधि से शव का दाह-संस्कार और फूल बीनने तथा उन्हें कृषि योग्य भूमि में डालने के पश्चात् मृत व्यक्ति के प्रति और कुछ करना शेष नहीं रहता।

मुसलमान, ईसाई तथा कुछ अज्ञानी हिन्दू अपने मुर्दों को गाढ़ते हैं। कुछ हिन्दू शव को नदी आदि में बहा देते हैं। अधिकांशतः हिन्दू शव को वेद की आज्ञानुसार जलाते हैं। (यजु० ४० १५ भस्मान्तं शरीरम्)

यदि यह पूछा जाए कि दोनों में से कौन उपयोगी है तो स्वास्थ्य एवं विज्ञान दोनों ही दृष्टियों में यह सिद्ध किया जा सकता है कि शव दाह अधिक उपयोगी है।

आजकल यूरोप के लोग भी हमारी शव दाह प्रणाली को स्वीकार करने लग गये हैं।

ये १६ संस्कार स्त्री-पुरुष सबके लिए अभिप्रेत हैं। मरे हुए पितरों को भोजनादि नहीं पहुंचता। उन्हें भोजनादि पहुंचाना अज्ञानता, अंध-विश्वास और ढोंग हैं।

आर्य समाज ने संस्कारों को शुद्ध किया है

आर्य समाज ने इन संस्कारों को सात्विक, शुद्ध और सरल बनाकर इनको बहुत लोकप्रिय बनाया है। विवाह जैसा पवित्र और महत्वपूर्ण संस्कार वेश्याओं के नाच रंग आदि की कुत्सित प्रथाओं से बहुत अशोभन बन गया था। आर्य समाज ने प्रारम्भ से ही विवाह आदि संस्कारों की फिज़ूल खर्चियों, गन्दगियों और रूढ़ियों पर प्रहार करने का सफल यत्न किया है।

यज्ञ

यूरोपियन लोग यज्ञ शब्द का अनुवाद बलि अर्थात् पशु-वध करते

हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। यज्ञ का अर्थ है वह अनुष्ठान जिसमें कर्त्ता की सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, शारीरिक, लौकिक और आध्यात्मिक अवस्था में सुधार हो। अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हुए अग्नि होत्रादि का अनुष्ठान और विद्वानों का संग करना यज्ञ कहलाता है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि अश्वमेध यज्ञ में घोड़े का और गोमेध में गऊ का वध किया जाता था परन्तु ऐसी बात नहीं है। वैदिक शब्दों का अर्थ न समझने से यह भ्रम उत्पन्न होता और फैलाया जाता है।

(देखें पं० विश्वनाथ विद्यालंकार कृत वैदिक पशु यज्ञ मीमांसा ग्रंथ वैदिक यंत्रालय, अजमेर)

यज्ञ के नाम पर पशु व नर हत्या करना घोर पाप है।

यज्ञ दो प्रकार के होते हैं:—

(१) नैत्यिक । (२) नैमित्तिक ।

ब्रह्मयज्ञ

प्रातः और सायंकाल दोनों समय वेद मन्त्रों से ईश्वरोपासना करना ।

देवयज्ञ

प्रातः और सायंकाल दोनों समय अथवा दोनों काल का एक समय उत्तम सामग्री और घृत से अग्नि होत्र करना ।

पितृयज्ञ

जीवित माता-पिता आदि की यथावत सेवा करना पितृ यज्ञ कहलाता है। यही श्राद्ध और तर्पण है।

बलिवैश्वदेव

गृहस्थ में जो अनजान में कीट, पतंगों की हिंसा होती है, उसके प्रायश्चित्त रूप में प्रतिदिन कृमि, पक्षी आदि के लिए भोजन से पूर्व

भोजन देना इस यज्ञ का उद्देश्य है ।

अतिथि यज्ञ

धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक पक्षपात रहित शान्त सर्व हितकारी विद्वानों की अन्नादि से सेवा करना ।

ये ५ यज्ञ गृहस्थ के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को नित्य प्रति करने चाहिए ।

नैमित्तिक

जो नित्य नहीं, कभी-कभी किए जाते हैं, इनमें मुख्य ये हैं :—

१. दर्श पूर्णमाशी—जो प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमा को नैमित्तिक यज्ञ के पश्चात् किए जाते हैं ।

२. नवसस्येष्टि—जब-जब नया अन्न आए तब-तब नवसस्येष्टि यज्ञ करना चाहिए । इसका मुख्य समय होली और दिवाली समझा जाता है ।

३. संवत् सरेष्टि—संवत्सर के आरंभ में किया जाता है ।

भक्ष्याभक्ष्य

स्वास्थ्य, प्रकृति और उपार्जन की दृष्टि से कोई पदार्थ भक्ष्याभक्ष्य होता है । जिन पदार्थों से स्वास्थ्य ठीक हो, रोग का नाश हो, बुद्धि, बल, पराक्रम और आयु में वृद्धि हो, उन पदार्थों का सेवन यथा योग्य पाक करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना भक्ष्य कहलाता है ।

जिन पदार्थों से तमोगुण दूर हो, रजोगुण नियमित हो और सतोगुण की वृद्धि हो वे पदार्थ भक्ष्य हैं । तम्बाकू खाना, पीना और सूँघना, मांग या शराब आदि मादक द्रव्यों का सेवन तमोगुण बढ़ाने वाले हैं । मांसादि का सेवन पाप और स्वास्थ्य विनाशक हैं ।

शूद्र के हाथ से बनाए व लाए जाने से भोजन अपवित्र नहीं हो

जाता । गन्दे शरीर से, गन्दे वस्त्र पहन कर, गन्दे स्थान में बैठकर खाने से घृणा और अरुचि होती है ।

इस समय हिन्दुओं के ऐसे भी सम्प्रदाय हैं जिनकी पूजा, उपासना मादक द्रव्यों के बिना पूरी नहीं होती । उनके मन्तव्यानुसार भगवान भैरव शराव पीते हैं । भगवान शिव भांग-धतूरा चाहते हैं । ये सब वेद विरुद्ध दुष्कर्म हैं ।

ग्रहों का फल

सूर्य, चन्द्र, मक्षत्रादि जड़ पदार्थ हैं । मनुष्य के कर्मों से इनका सम्बन्ध नहीं होता । गरीबी, अमीरी, सुख, दुःख, भोग ये कर्म के कारण होते हैं । कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति झूठी होती है । मंत्र सिद्धि की बात ढोंग है ।

सूर्य-चन्द्र ग्रहण

सूर्य अपनी कीली पर घूमता है । पृथ्वी अपनी कीली पर और सूर्य के चारों ओर घूमती है । चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है । जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच में आता है तब सूर्य ग्रहण और जब पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आती है, तब चन्द्र-ग्रहण होता है । राहु आदि द्वारा इनका ग्रसा जाना मिथ्या है और इनके शमन के लिए कुरुक्षेत्रादि में स्नान, दान-पुण्य आदि करना व्यर्थ और घोर अन्ध-विश्वास है ।

विविध विचार

धर्म

जो पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराक्षा वेदों से अविरुद्ध है वह धर्म, और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण

मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञा भंग वेद विरुद्ध है, वह अधर्म है ।

अर्थ

जो धर्म से प्राप्त किया जाए उसे अर्थ और जो अधर्म से प्राप्त किया जाए उसे अनर्थ कहते हैं ।

काम

वह जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाए ।

तीर्थ

सत्य भाषण, विद्या, सत्संग, योगाभ्यास, दान आदि शुभ कर्म ही तीर्थ हैं । जल-स्थल आदि जड़ पदार्थ नहीं ।

पुरुषार्थ

प्रारब्ध से बड़ा होता है । मनुष्य जो कर्म करता है वह क्रियमाण कहलाता है । फल के लिए जब कर्म पूरा हो जाता है तब उसका नाम संचित हो जाता है । उस संचित में से जिस कर्म का फल, मिलने लगता है, उसी को प्रारब्ध कहते हैं । प्रारब्ध पुरुषार्थ रूप कर्म का फल है और सदा कर्म के अधीन रहता है । इसलिए पुरुषार्थ की महिमा है । हमारा भाग्य हमारे पूर्व कर्मों का फल होता है । मुसलमान और ईसाई जिनका पूर्व जन्म में विश्वास नहीं होता यह मानते हैं कि भाग्य का मतलब है 'तकदीर' अर्थात् परमात्मा अपनी दया से हमें जो कुछ देता है वह तकदीर कहलाती है ।

उनसे यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि उसने जिसे अमीर बनाया उस पर दया क्यों दिखाई और जिसे गरीब बनाया उसके साथ निर्दयता क्यों की ? इस प्रकार हमारे मुसलमान और ईसाई बन्धु परमात्मा का अन्याय दिखाए बिना इस प्रकार के प्रश्नों का समाधान नहीं कर सकते ।

स्वामी दयानन्द कहते हैं कि “भाग्य से उद्योग ऊँचा होता है।” उद्योग से ही भाग्य बनता है। यदि उद्योग अच्छी दिशा में प्रेरित हो तो उसका फल शुभ होता है और यदि गलत दिशा में प्रेरित हो तो फल अशुभ होता है।

देव

विद्वानों को देव, अविद्वानों को असुर, राक्षस, पापियों को और अनाचारियों को पिशाच कहते हैं।

देव पूजा

विद्वानों, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा, धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पुरुष का सत्कार करना देव पूजा कहाती है।

जाति

जिनका जन्म एक समान हो यथा मनुष्य, गाय, भैंस, घोड़ा, मोर आदि-आदि पृथक्-पृथक् जाति हैं।

आर्य राष्ट्र

हमारा जातीय नाम आर्य है। हमारा वर्तमान नाम ‘हिन्दू’ फ़ारसी का शब्द है संस्कृत भाषा का नहीं। यह बुरे अर्थ में प्रयुक्त किया गया था।

यूरोप के इतिहासकार भी मानते हैं कि आर्य राष्ट्र का अस्तित्व मानव इतिहास के प्रारम्भ में ही था। उनकी यह भी अनुमति है कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी न थे अपितु मध्य एशिया से आये थे : स्वामी दयानन्द की स्थापना है और सही स्थापना है कि भारत के मूल निवासी आर्य ही थे।

भारत की सर्वोपरिता

हमारा देश सब देशों का शिक्षक रहा है ।

स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में लिखते हैं :—

“यह देश जिसे आर्यावर्त कहते थे प्राचीनकाल में इतना महान् था कि अन्य कोई देश इसकी बराबरी न कर पाता था । युधिष्ठिर के समय तक जब उन्होंने राजसूय यज्ञ किया था भू-मंडल में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था । हम महाभारत में पढ़ते हैं कि चीन का राजा भगदत्त, अमेरिका का राजा वन्नुवाहन, यूरोप का विडालाक्ष, ईरान देश का राजा शल्य तथा यूनान आदि विदेशस्थ राजाओं ने राजसूय यज्ञ में भाग लिया था और वे महाभारत के संग्राम में सम्मिलित हुए थे ।”

अपने देश से प्रेम करो

भारत हमारे पूर्वजों की भूमि है । अतः हमें इससे प्रेम करना चाहिए । स्वामीजी सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में लिखते हैं :—

“तुम्हें और हमें उचित है कि हम आपस में एक होकर देश को उन्नत करें ।”

यूरोपियनों से शिक्षा

स्वामी दयानन्द यूरोपियनों से पाठ ग्रहण करने का निम्नलिखित शब्दों में परामर्श देते हैं । “देखो कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आए यूरोपियनों को हुए हैं और आज तक ये लोग मोटे कपड़े पहिनते हैं जैसा कि (वे) सब स्वदेश में पहिनते थे । परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल-चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया । इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान ठहरते हैं । अनुकरण करना किसी बुद्धिमान का काम नहीं ।” (स० प्र० स० ११)

स्वामी जी हमें सावधान करते हैं कि हमें यूरोपियनों के सद्गुणों

का अनुकरण करना चाहिए न कि दुर्गुणों का, परन्तु हम इसके विरुद्ध आचरण करते हैं ।

यूरोपियन अपने देश से प्रेम करते हैं और अपने राष्ट्रीय उद्योग धन्धों और व्यापार को उन्नत करने के लिए अपने देश की वस्तुओं का उपयोग करते हैं । “हमें भी अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का उपयोग करना चाहिए ।” हमारे कांग्रेस के नेताओं ने स्वदेशी आन्दोलन को अपनाया जिसका लगभग सौ वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द ने संकेत कर दिया था ।

शासन

पक्षपातपूर्ण अंग्रेजों ने हम पर यह आरोप लगाया और कहा था कि भारत के लोग स्वशासन के अयोग्य हैं परन्तु स्वामी दयानन्द ने यह सिद्ध किया कि हमारे पूर्वजों ने यूरोपियनों के विधि विधान से श्रेष्ठ विधि विधान बनाया और व्यवहृत किया था ।

मनु महाराज कहते हैं कि :—

‘राजा को २, ३, ५ और १०० ग्रामों के मध्य प्रशासकीय कार्यालय रखना चाहिए जिसमें शासन को चलाने के लिए अपेक्षित संख्या में राजकर्मचारी नियुक्त रहें । उसे १ ग्राम के लिए १ प्रशासक दूसरा १० ग्राम के लिए, तीसरा २० ग्राम के लिए, चौथा १०० ग्रामों के लिए और पांचवा १०० ग्रामों के लिए नियत करना चाहिए । एक ग्राम का प्रशासक १० ग्रामों के प्रशासक को अपने इलाके के समस्त अपराधों की रिपोर्ट प्रतिदिन देता रहे और १० ग्रामों का प्रशासक २० ग्रामों के प्रशासक को और इसी प्रकार आगे के प्रशासकों को वह रिपोर्ट प्राप्त होती रहे ।’

(मनुस्मृति अ० ७, २६, ५)

पार्लियामेन्ट

स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि प्राचीन भारत में किसी एक

राजा का एकच्छत्र निरंकुश शासन न था अपितु संसदीय शासन था । वह लिखते हैं :—

‘एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति होता है तदाधीन सभा, सभाधीन राजा और सभा प्रजा के अधीन और प्रजा सभा के अधीन रहे । (अथर्व २६, ७, ५, ६)

राज कार्य तीन प्रकार की सभाओं के अधीन होना चाहिए—
विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा ।

यहां विद्वानों की विद्या सभा तथा अधिकारी धार्मिक विद्वानों की धर्म सभा अधिकारी और प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों की राजसभा के सभासद और जो उनमें सर्वोत्तम गुण, कर्म और स्वभाव युक्त महान् पुरुष हों उसको राजसभापति रूप मानकर सब प्रकार से उन्नति करें ।

तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के अधीन सब लोग बनें, सबके हितकारक कामों में सम्मति करें । सर्व हित करने के लिए परतन्त्र और धर्म युक्त कार्यों में अर्थात् जो निज के काम हैं उन-उन में स्वतन्त्र रहें । (स० प्र० स० ६)

बहुपक्ष

आजकल विद्वानों और अज्ञानियों दोनों के ही लिए वोटों का बहु-पक्ष स्वीकार किया जाता है । परन्तु स्वामी दयानन्द मनुस्मृति का उदाहरण देकर इस प्रथा को हानिकारक बताते हैं । (स० प्र० स० ६)
एक संन्यासी (महाविद्वान्) के निर्णय को प्रमाण मानना चाहिए । १०० अज्ञानियों का निर्णय प्रमाण नहीं हो सकता ।

निस्सन्देह साधारण और अज्ञानी जनों में से निर्वाचित व्यक्तियों का बहुपक्ष भयावह है । (स प्र० स० ११)

राज्य कब नष्ट होता है

“जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है

और जब दुष्टाचारी हो जाते हैं तब राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है ।”

(स प्र० स० १८)

“इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत साधन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष विषयाशक्ति और प्रमाद बढ़ता है । इससे देश में सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण, दुर्व्यसन बढ़ जाते हैं जैसे कि मद्य मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं और जब युद्ध विभाग में युद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है । जब यह दोष हो जाते हैं तब परस्पर में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे ।”

(स० प्र० स० ११)

क्या यह दिव्य वाणी आज के समृद्ध एवं संघर्षरत राष्ट्रों पर चरितार्थ नहीं हो रही है ?

शब्दि

आर्य समाज ने वैदिक धर्म के द्वार उन सबके लिए खोल दिए हैं जो उसे अपनाना चाहें ।

वैदिक धर्म दिव्य धर्म है । अतः इसके प्रसादों से कोई भी व्यक्ति वंचित न रखा जाना चाहिए ।

हमारे कट्टरपंथी हिन्दू भाई शुद्धि का विरोध करते रहे हैं परन्तु सनातनी कहे जाने वाले नेताओं तथा स्व० पं० मदनमोहन जी मालवीय आदि ने १९२४ में विधिमियों की शुद्धि को मान्यता दे दी थी ।

बहुत से हिन्दू भाई वहिन जो ईसाई या मुसलमान बन गए थे पुनः आर्य समाज द्वारा शुद्ध किए जाकर हिन्दू समाज में वापस आ गए हैं ।

जन्म के अनेक ईसाई और मुसलमान तक हिन्दू समुदाय में सम्मिलित किए जा चुके हैं ।

पंजाब एवं काश्मीर के ओड़ भेष रहितए आदि तथा आगरा और मथुरा के बहुत से मलकाने और राजस्थान के मेव भी पुनः अपने हिन्दू समुदाय में वापस आ गए हैं जिनके पूर्वज मुस्लिम काल में बलात् मुसलमान बना लिए गए थे ।

आर्य समाज, भारत धर्म महामंडल और हिन्दू महासभा उन्हें हिन्दू धर्म में वापस लाने के लिए उद्यत हैं । विश्व हिन्दू परिषद् भी यह कार्य कर रही है । अतः अब किसी भी हिन्दू को इसका विरोध न करके इसे सहायता देनी चाहिए ।

सन्तोष का विषय है कि शुद्धि का विरोध अब प्रायः नहीं रहा है और यह क्रम जारी है । इससे हिन्दू समाज बढ़ और संगठित होने लगा है ।

दलित वर्ग

वैदिक धर्म बलात् किसी को दलित बनाने की अनुमति नहीं देता पर प्रत्येक को अपना सुधार और उन्नति करने का समान रूप से अवसर प्रदान करता है ।

दलितों एवं अन्त्यजों के प्रति हिन्दुओं का दृष्टिकोण बदलने का आर्य समाज भरसक प्रयत्न कर रहा है । वह कह रहा है कि जन्म के आधार पर कोई अछूत नहीं होता । आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द उनको वेद पढ़ने का भी अधिकार प्रदान करते हैं । आर्य समाज उन्हें योग्य बनाकर ऊँचा उठाने का शानदार कार्य कर रहा है । उनकी शिक्षा की अवस्थाएं उत्पन्न करना, गुरुकुलों आदि में निःशुल्क शिक्षा की सुविधाएं देना, उनके साथ खान-पान आदि में समानता का व्यवहार करना, उनकी असुविधाओं को दूर करना, कराना, उन्हें नागरिक अधिकार दिलाना आदि-आदि आर्य समाज के वे कार्य हैं जिनसे उनकी दशा

बड़ी उन्नत हुई और वे मनुष्य समझे जाने लगे हैं ।

सरकारी जन गणना के अनुसार भारत में लगभग ६ करोड़ दलित कहे जाने वाले भाई हैं जिन्हें खा जाने के लिए विधर्मी मुंह खोले रहते हैं । ब्रिटिश काल में ईसाई मत की शरण में जाने वाले हिन्दुओं की प्रतिदिन की औसत संख्या ३०० थी । स्वराज्य के इन दिनों में ईसाई मिशन को खुली छुट्टी मिल जाने से यह संख्या दुगुनी-तिगुनी हो गई है । हिन्दुओ ! खबरदार हो जाओ । अछूतों से घृणा करना छोड़ने और उनकी रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो जाओ अन्यथा हिन्दू समाज को बड़ा गहरा धक्का लगेगा ।

महात्मा गांधी ने अपील की थी । “जब तक तुम हिन्दू अछूतों को अपना भाई न समझोगे तब तक स्वराज्य प्राप्त न कर सकोगे ।” गांधी जी ने अछूतोंद्वारा का उल्लेखनीय कार्य किया । भारत की स्वतन्त्र सरकार ने संविधान में अस्पृश्यता को अपराध उद्घोषित करके उन्हें आर्थिक स्थिति को ऊँचा करने की सुविधाएं प्रदान करके अस्पृश्यता निवारण की दिशा में क्रियात्मक पग उठाए हैं परन्तु जब तक हिन्दुओं का दृष्टिकोण नहीं बदलता और अछूतों के मन से हीन भावना दूर नहीं होती तब तक समस्या का हल संभव नहीं हो सकता । अछूतों की सामाजिक समानता स्वीकार करने, और अछूतों एवं सवणों के समस्त आर्यजनों में गुण क्रमानुसार पारस्परिक वैवाहिक या खान-पान के सम्बन्धों के स्थापित हो जाने पर ही समस्या का हल हो सकेगा और यह कार्य आर्य समाज और उसके गुरुकुल ही कर सकते हैं । आर्य समाज में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं । आर्य समाज में अछूतों के घरों में उत्पन्न ऐसे अनेक नर-नारी हैं जिनके रहन-सहन, आचार-विचार, शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक स्थिति को देखकर कोई भी यह नहीं समझ सकता कि वे अछूत घरों में उत्पन्न हुए होंगे । स्वयं वे भी हृदय से यह अनुभव न करते होंगे कि वे अछूत घरों में जन्मे थे । सरकार को गुरुकुलों में उनके पठन-पाठन के कार्य को भी प्रोत्साहित करना चाहिए ।

शिखा और सूत्र

प्रत्येक हिन्दू को चोटी रखनी होती है और प्रत्येक द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) का यज्ञोपवीत धारण करना धर्म होता है।

शिखा (चोटी) आर्यों का जातीय चिह्न है। इसका प्रयोजन है वैदिक सभ्यता की रक्षा में तन, मन और धन लगा देना। शिखा एक प्रकार का धर्म ध्वज है और प्रत्येक शिखाधारी सेना की ध्वज थामने वाला समझा जाता है।

यज्ञोपवीत तीन तार का धागा होता है। इन तीन तारों का प्रयोजन है, पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण से उऋण होना।

जो शूद्र उन्नति करके द्विज बन जाते हैं उन्हें यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी

हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है जो राजभाषा बनने की अधिकारिणी थी। हर्ष है यह स्वतन्त्र भारत की राजभाषा बन गई है।

स्वामी दयानन्द ने ऋषि जैसी अपनी दिव्य दृष्टि से यह अनुभव कर लिया था कि आर्य भाषा (हिन्दी) ही राजभाषा बनने के योग्य है। अतः उन्होंने जन्मना गुजराती होते हुए भी अपने ग्रन्थ हिन्दी में लिखे और आर्य समाज एवं उसके सदस्यों के लिए यह आवश्यक ठहराया कि वे अपनी-शिक्षा-दीक्षा, काम-काज और व्यवहार में हिन्दी को अपनाएं। गुजरात के दूसरे सुपुत्र महात्मा गांधी ने अपना मूल्यवान योग दिया और हिन्दी प्रचार को स्वराज्य योजना का अंग बनाया।

भारत के प्रमुख नेताओं ने भी यह अनुभव किया कि अंग्रेजी विदेशी भाषा है और राज्य और राष्ट्र के रूप में देश के जन-साधारण को एक करने की इसमें क्षमता नहीं है।

हिन्दी की लिपि देवनागरी है और यही लिपि संविधान में स्वीकार

की गई है। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और मराठी की लिपि भी देव-नागरी लिपि है। यह इतनी सुगम और वैज्ञानिक है कि एक सप्ताह में सीखी जा सकती है।

आर्य समाज राजनीतिक संस्था नहीं है

आर्य समाज सार्वभौम धार्मिक संस्था है। यह राजनीतिक संस्था नहीं है। अवश्य यह अपने धर्म प्रचार, धार्मिक एवं सामाजिक सुधार कार्य से देश विदेश की राजनीति को प्रभावित करता है।

भारत में ब्रिटिश सरकार को आर्य समाज के राजनैतिक संस्था होने का सन्देह हुआ था और यह सन्देह पर्याप्त समय तक रहा। इस सन्देह के वशीभूत हो पटियाला आदि में आर्यों पर राजद्रोह का अभियोग चलाया परन्तु यह सिद्ध न हो सका कि आर्य समाज राजनीतिक संस्था है। इस प्रसंग में ब्रिटिश कालीन जन गणना रिपोर्टों की साक्षी उल्लेखनीय है।

“यह सत्य है कि आर्यजन भावी राजनीतिज्ञ होंगे परन्तु वे आर्य समाज का सदस्य होने के नाते देश प्रेमी और राजनीति में रुचि रखने वाले हैं यह मान्यता संदिग्ध है। अवश्य आर्य समाज की शिक्षाएं देश प्रेम का पाठ पढ़ाती हैं।”

(उत्तर प्रदेश की जन गणना रिपोर्ट १८९१ पृ० ५१)

यह सत्य है कि आर्य जन मुख्यतः एक विशेष वर्ग से सम्बद्ध हैं और उनका संगठन पूर्ण और शक्तिशाली है। इसलिए उन पर (१०वें नियम के कारण) यह आरोप लगाया जाता है कि आर्य समाज सामूहिक रूप से अपने सदस्यों की राजनीतिक भावनाओं को प्रोत्साहन देता है परन्तु यह होते हुए भी आर्य समाज राजनीतिक संस्था नहीं है।

(पंजाब की जनगणना रिपोर्ट सन् १८९१, पृ० २, ४)

१९०२ में संन्यासी अलाराम सागर ने सत्यार्थप्रकाश से कुछ उदाहरण लेकर एक ट्रैक्ट लिखा और उसमें यह सिद्ध करने का यत्न

किया कि आर्य समाज एक पड़्यन्त्रकारी और राजद्रोही संस्था है। इलाहाबाद के जिला मजिस्ट्रेट मि० पी० हैरीसन की अदालत में मामला चला। मजिस्ट्रेट महोदय ने अपने निर्णय में स्वीकार किया कि जो उद्धरण संन्यासी अलाराम ने दिए हैं उनमें राजद्रोह की कोई गन्ध नहीं है। उनमें केवल इस बात पर दुःख प्रकट किया गया है कि कुछ धार्मिक तथा अन्य कारणों से भारतवासी पराधीन हो गए हैं। मजिस्ट्रेट महोदय ने अपने निर्णय में लिखा कि स्वामी दयानन्द के लेखों में सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने अथवा विदेशी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए प्रेरणा कहीं भी नहीं की गई। उसमें तो केवल इस प्रकार के सुधारों के लिए प्रेरणा की गई है जिससे हिन्दू भविष्य में शासन सँभालने के योग्य हो सकें। अन्ततः मुकदमा खारिज हुआ और संन्यासी अलाराम से जमानत मांगी गई।

निस्सन्देह आर्य समाज की शिक्षाएं देश प्रेम की प्रेरणा देती हैं। आर्य समाज ने देश को जितने देश भक्त दिए हैं उतने अन्य किसी समाज ने नहीं दिए। महर्षि की शिक्षाएं उदार एवं देश प्रेम से ओत-प्रोत हैं। भारत में राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने का सबसे बड़ा श्रेय आर्य समाज को प्राप्त है। कांग्रेस के जन्म से वर्षों पूर्व महर्षि ने स्वराज्य का मंत्र फेरा था। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में जेल जाने वालों की सबसे बड़ी संख्या आर्य समाजियों की थी। कांग्रेस के इतिहासकार ने कांग्रेस के इतिहास में इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा था कि यदि महात्मा गांधी राष्ट्र पिता हैं तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र पितामह हैं।

विदेश यात्रा

आर्य समाज विदेश यात्राओं पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता है। आर्य समाज के प्रचार से विदेश यात्रा के प्रतिबन्ध बहुत ढीले हो गए हैं।

जिस प्रकार खान-पान और संग दोषों से देश में बचे रहना आवश्यक है उसी प्रकार [विदेश में बचे रहना अनिवार्य है अर्थात् मद्य

मांसादि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन, खान-पान व्यभिचारादि के प्रलोभनों, दुष्कर्मों तथा अन्यान्य दुर्व्यसनों से पृथक् रहना । देश-देशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम और व्यवहार से उनकी अच्छी बातों को जानकर ग्रहण कर लेना उपयोगी है । धर्म आत्मा और कर्तव्यों के साथ होता है । चाहे देश में हों या विदेश में हमें बुरे कामों से बचना और अच्छे कामों में लगा रहना चाहिए ।

आर्य समाज के कार्य

वेदादि सत शास्त्रों से प्रेम करना

आर्य समाज ने वेदों और सत्शास्त्रों के नाम से सर्व साधारण जनता को परिचित कराया । उनकी उत्कृष्ट कोटि की व्याख्याएं और भाष्यादि करके उनके महत्व को प्रतिष्ठित किया । प्राचीन साहित्य निकम्मा और वेद गड़रियों के गीत समझे जाने लगे थे और देशवासी आंखें बन्द करके अंग्रेजी साहित्य पर मोहित होकर पाश्चात्य लोगों का अनुसरण करने में गौरव मानने लगे थे । आर्य समाज ने इस प्रवाह को बदला और स्वतन्त्र रूप से विचार पूर्वक सोचने की मनुष्य में क्षमता पैदा की ।

आर्य संस्कृति के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा

देश में प्राचीन वैदिक सभ्यता का मान घट चुका था और उसका स्थान पाश्चात्य सभ्यता विविध बुराइयों के साथ ले रही थी । आर्य समाज ने आर्य संस्कृति के गौरव की पुनः प्रतिष्ठा की ।

हिन्दी के गौरव की वृद्धि

आर्य भाषा हिन्दी का पढ़ना फैशन विरुद्ध बन गया था । इसीलिए हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी । सर्वत्र अंग्रेजी और उर्दू का बोल वाला था । महर्षि दयानन्द गुजराती थे, वे संस्कृत और गुजराती जानते थे

परन्तु उन्होंने कार्य क्षेत्र में उतर कर अपनी दिव्य दृष्टि से जातीय गौरव और एकता की रक्षार्थ हिन्दी को पुनः प्रतिष्ठित करना आवश्यक समझा और अपने लेख और भाषण का सब कार्य हिन्दी में किया। आज राष्ट्रीय सरकार ने भी इस आवश्यकता को अनिवार्य समझ कर हिन्दी को राज-भाषा का पद दिया है। यह आर्य समाज की अपूर्व विजय है।

कुरीतियों का निवारण

बाल विवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह आदि कुरीतियों के फैल जाने से देश का विशेषतः हिन्दू जाति का शारीरिक और चारित्रिक पतन हो रहा था। बाल विवाह पराकाष्ठा को पहुँच चुका था जिसके फलस्वरूप लाखों बाल विधवाएँ हिन्दू समाज के लिए अभिशाप बन गई थीं। भ्रूण हत्याएं, गर्भपात, नवजात बालक, बध इत्यादि-इत्यादि अनेक पाप हिन्दू समाज के लिए कलंक का टीका बन रहे थे। आर्य समाज ने इस कलंक को बहुत कुछ धो दिया है। बाल विवाहों और अनमेल विवाहों को रोककर और विधवा विवाह को प्रोत्साहित कर बहुत सी लड़कियों और नारियों का उद्धार कर उन्हें वेश्यावृत्ति करने व विधर्मी बनने से बचाया।

स्त्रियों के मान की रक्षा

स्त्रियों का मान बहुत घट चुका और नित्य घट रहा था। परिवार में कन्या का जन्म अशुभ माना जाने लगा था। बहुत सी अवस्थाओं में वे मार दी जाती थीं। लड़कों और लड़कियों के पालन-पोषण में अनुचित भेद-भाव की वृत्ति काम करती थी। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार न था। पत्नी पैर की जूती समझी जाने लगी थी। उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार होता था। आर्य समाज ने स्त्री की मान-मर्यादा कायम करके उन्हें सम्मानित स्थान प्रदान कराया। उनकी शिक्षा के लिए कन्या गुरुकुल और कन्या पाठशालाएँ खोलीं। उनके लालन-

पालन में भेद-भाव को मिटाया। माताओं, बहनों, बेटियों, पत्नियों और स्त्रियों के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव जगाए।

कर्म का आदर

कर्म के निरादर के भाव तथा विदेशी शासन के अभिशाप वश हिन्दू जाति की आर्थिक अवस्था खराब हो गई थी जिसके फलस्वरूप अनाथों और विधवाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी और वे विधर्मियों के चंगुल में फँसते चले जा रहे थे। उनकी रक्षा का प्रबन्ध न होने से उन्हें ईसाई और मुसलमान सहज ही अपने जाल में फँसा लेते थे। आर्य समाज ने कर्म के प्रति आदर का भाव जागृत किया, विधवाओं और अनाथों की रक्षार्थ अनेक विधवा आश्रम और अनाथालय खोलकर उनकी रक्षा की और उन्हें समाज का उपयोगी अंग बनाया।

हिन्दू जाति की एकता की रक्षा

जन्म-मूलक जाति प्रथा प्रचलित होने और खान-पान में छुआछूत की प्रवृत्ति बढ़ जाने से हिन्दुओं में परस्पर घृणा और पृथक्ता बढ़ गई थी। उच्च नीच की भावना फल-फूल रही थी। लोग अपने निजी या समुदायों के स्वार्थ को देखने लग गए थे और उनमें सामाजिक भावना नष्ट हो गई थी। आर्य समाज ने अन्तर्जातीय विवाहों को प्रचलित कर और खान-पान की दीवारों को तोड़कर सामाजिक दृष्टि से सोचना सिखाया और इस प्रकार हिन्दू जाति के विघटन को रोकने में सफलता प्राप्त की।

भूद्रों और दलितों के वर्गों के साथ उच्च मानी जाने वाली जातियों का व्यवहार असह्य और आक्षेपयोग्य बन गया था, इसी कारण दलित भाई ईसाई और मुसलमान बन रहे थे। आर्य समाज ने दलितों द्वारा और मुद्दि के कार्य के द्वारा उनके मानवीय अधिकारों की रक्षा की और उन्हें समाज का प्रतिष्ठित अंग बनाया।

निरक्षरता निवारण

निरक्षरता को मिटाने और आर्य समाज की शिक्षाओं को लोकप्रिय बनाने के लिए आर्य समाज ने अनेक शिक्षा संस्थाएं खोलीं जिनका जाल देश भर में फैला हुआ है।

प्राचीन शिक्षा पद्धति का प्रचार

प्राचीन शिक्षा पद्धति को प्रचलित करने के लिए गुरुकुल खोले जो बड़ी सफलता पूर्वक चल रहे हैं।

सार्वजनिक सेवा के भाव की उत्पत्ति

आर्य समाज के प्रादुर्भाव से पूर्व देश में सार्वजनिक सेवा का भाव प्रायः नहीं के बराबर था। आर्य समाज ने इस भाव को जागृत करके सार्वजनिक जीवन का सर्व प्रथम पाठ पढ़ाया, दान और निष्काम सेवा के महत्व को स्थापित किया।

प्रजातन्त्र प्रणाली

आर्य समाज ने अपने संगठन के द्वारा देश को विशाल प्रजा सत्तात्मक प्रबन्ध प्रणाली का व्यापक रूप में प्रारम्भिक पाठ पढ़ाया। उसके संगठन की दृढ़ता देश के शिक्षित वर्ग की प्रशंसा और स्पर्धा का विषय रही है और है।

राजनीति पर प्रभाव

आर्य समाज राजनीतिक संस्था नहीं है और न वर्तमान राजनीति से उसका सम्बन्ध है। फिर भी उसने देश प्रेम की भावना लोगों में भरी। इस मूल्यवान् सेवा के अतिरिक्त आर्य समाज ने उच्च कोटि के कई देश सेवक, देश के अर्पण किए अथवा देश सेवकों को प्रभावित किया।

हिन्दू समाज पर उपकार

हिन्दू समाज पर आर्य समाज के अगणित उपकारों को यदि एक शब्द में रखना हो तो श्री राजगोपालाचार्य के शब्दों में, 'आर्य समाज ने हिन्दू समाज को परिष्कृत कर उसे भले आदमियों के रहने के योग्य बनाया है ।'

आर्य समाज से आशाएं

आज संसार की शान्ति और सुख के लिए ऐसे धार्मिक पुरोगम की आवश्यकता और चाह है जो मनुष्य और समाज की सर्वांगीण समस्याओं का हल करने उनको समुन्नत करने और शान्ति रखने की क्षमता रखता हो । भौतिक विज्ञान और मजहब दोनों ही आजमाए जाकर फेल हो चुके हैं । भौतिक विज्ञान के द्वारा मनुष्य ने अपने बाहर तो विजय पाई परन्तु अपने ऊपर विजय प्राप्त न कर सका । ज्ञान का प्रसार हुआ परन्तु ज्ञान बुद्धिमत्ता में परिणत न हुआ । मजहब और विज्ञान लौकिक और पारलौकिक उन्नति को साथ-साथ न रख सके । इसीलिए विश्व में अशान्ति व्याप्त है । आर्य समाज बुद्धि और हृदय दोनों को अपील करने वाले लौकिक और पारलौकिक अभ्युत्थान की योजना विश्व को प्रस्तुत कर रहा है जिसमें संसार की शान्ति और सुरक्षा सन्निहित है ।

आर्य समाज का सार्वदेशिक रूप

आर्य समाज सर्वतन्त्र नित्य वैदिक सिद्धांतों का प्रचारक है । उसका कार्यक्षेत्र भारत तक सीमित नहीं है । सुदूर विदेशों में भी उसका सन्देश पहुंच चुका है और वह अपने स्वरूप के अनुसार धीरे-धीरे विश्व व्यापी धार्मिक आन्दोलन बनता जा रहा है । ये लक्षण बड़े शुभ हैं ।

आर्य समाज से आशाएं एवं उपलब्धियाँ

एक दृष्टि में

आर्य समाज की स्थापना द्वारा वैदिक धर्म प्रचारक संगठन की नींव रखी गई थी। सुधार का कल्पतरु आरोपित एवं आर्य जाति में नूतन जीवन जागृति उत्पन्न करने का साधन उपस्थित किया गया था। आर्य मान मर्यादा तथा आर्य गौरव-गरिमा की रक्षा के निमित्त एक सेवक संघ संगठित हुआ एवं सर्वसाधारण को सच्चा धर्म प्रदान करने के लिए सत्संग गंगा का स्रोत खुल गया और दीन दुखियों की सहायता के लिए सेवक समिति उपस्थित की गई। (दयानन्द प्रकाश)

महर्षि की आशाएं

आर्य समाज से महर्षि को कितनी बड़ी आशाएं थीं उसका किंचित दिग्दर्शन उनके उद्गारों से होता है :—

एक पत्र में उन्होंने लिखा था—

परन्तु स्वदेशादि सब मनुष्यों का निर्विघ्नहित आर्य समाज से ही यथार्थ होगा। (महर्षि का पत्र व्यवहार स० १९३३ चैत्र बदी ९)

एक दूसरे स्थल पर उन्होंने लिखा—

‘इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ

न लगेगा । जैसा आर्य समाज, आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है वैसे दूसरा नहीं हो सकता ।' (स० प्र० स० ११)

आर्य समाज अपने जन्म दिन से ही उपर्युक्त आशाओं की पूर्ति में सतत संलग्न रहा और उसे चामत्कारिक सफलता मिली । उसकी विविध उपलब्धियों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

१. धर्म को बुद्धि और आचरण का विषय बनाया जिसके फल-स्वरूप धर्म का रूप उज्ज्वल हुआ और लोगों का कल्याण हुआ । सत्ज्ञान और सत्कर्म की प्रेरणा प्राप्त हुई । न्याय और सत्य प्रतिष्ठित हुए । धर्म के नाम पर होने वाले पाखण्डों, अनाचारों और अत्याचारों का ह्रास हुआ ।

२. एक ईश्वर की पूजा का महत्व स्थापित हुआ । जड़, पूजा और पूर्ति पूजा की निस्सारता सुस्पष्ट हुई । मूर्ति पूजा और अवतारवाद के नाम पर होने वाली जनता और परमात्मा की दुर्गति रुकी । मौजिजे और चमत्कारों की पोल खुली । पैगम्बरों आदि के अंधविश्वासों पर जोर की टक्कर लगी ।

३. वेदों की प्रतिष्ठा स्थापित हुई और उनके बन्द द्वार मनुष्य मात्र के लिए खुले ।

४. ईश्वर की सर्वज्ञता और जीव की अल्पज्ञता का सिद्धान्त ग्राह्य हुआ और जीव तथा ब्रह्म एक हैं इस मान्यता की कलाई खुली ।

५. मुक्ति ज्ञान और सदाचरण से प्राप्त हो सकती है । धर्म और मुक्ति के नाम पर होने वाली अनर्गलताओं से नहीं ।

६. कर्मफल अवश्य मिलता है । फलित ज्योतिष की करामातों, जादू-टोना, भूत-प्रेत, पापों के क्षय के लिए गंगा आदि में नहाने, जप, पुरश्चरण, कीर्तन, तोबा, क्षमा आदि करने कराने से कर्मफल का क्षय नहीं होता । इस प्रकार की मिथ्या, धारणाओं का निराकरण हुआ ।

७. संसार को मिथ्या मानना और उसमें लिप्त हो जाना छुड़ाया गया । सत् पुरुषार्थ से ऐश्वर्य प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया । अर्थ

शुद्धि और उसके सदुपयोग पर और समाज की धरोहर के रूप में उसके प्रति भावना रखने पर बल दिया गया ।

८. दान-प्रणाली परिष्कृत की गई । सच्चे और झूठे साधुओं, महन्तों, महात्माओं और पुरोहितों में भेद करना सिखाया गया ।

९. स्वर्ग और नर्क का वास्तविक मर्म (सुख विशेष की अवस्था स्वर्ग और दुःख विशेष की अवस्था नर्क) बताकर लोगों को उनकी भूल भुलैयाँ से निकाला गया जिसके कारण बड़ी जीव-रक्षा आचार और धर्म की रक्षा हुई ।

१०. यज्ञों का सच्चा स्वरूप बताकर पशु बलि नर बलि आदि की क्रूरताएं और वीभत्सताएं रोकी गई और सच्चे यज्ञों का प्रचार बढ़ा ।

११. ब्रह्मचर्य पालन एवं परिपक्व आयु के विवाहों को प्रोत्साहित किया गया । बाल विवाह आदि का बलपूर्वक खंडन किया गया । विवाहों की कुरीतियां निरुत्साहित हो गई । वैदिक संस्कारों का प्रचलन कराके जाति का अमित उपकार किया गया ।

१२. अनाथों, असहायों और विधवाओं की रक्षा की गई । विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया गया । अनेक अनाथालय वनिताश्रम व विधवाश्रम खोले गये ।

१३. स्त्रियों की दुर्दशा पर प्रबल आघात कर उनका उद्धार किया गया । उनकी शिक्षा का मार्ग खोला गया । पर्दा आदि की दुष्प्रथाएं समाप्त की गई ।

१४. जन्म की जात-पाँत को मिटाते हुए लोक-परलोक के उत्थान की वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था की ओर संसार का ध्यान आकृष्ट किया गया ।

१५. जन्म और नस्ल पर आश्रित ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, काले-गोरे आदि के विभेदक एवं विनाशकारी भावों को मिटाने एवं दलितों और शोषितों को ऊपर उठाने का भरसक यत्न किया गया । सब एक ही प्रभु की सन्तान एवं परिवार के सदस्य हैं । उनके एक ही जैसे शारीरिक

अवयव हैं। सब में एक जैसी भावनाएं हैं। प्रजनन का ढंग एक सा है। आध्यात्मिक समानता है। उनकी आकृति आदि में जलवायु एवं यौन सम्बन्ध के कारण विभिन्नता होती और हो सकती है।

१६. शिक्षा प्रसार के लिए अनेक गुरुकुल, संस्कृत पाठशालाएं, स्कूल, कालेज आदि खोले गए।

१७. जीवित माता पिता की सेवा, पतिव्रत, और पत्नीव्रत धर्म की परिपाटी को परिष्कृत किया गया।

१८. निष्काम भाव से लोक सेवा का पाठ पढ़ाया गया।

१९. शराब, मांसादि, अभक्ष्य पदार्थों का सेवन और भक्षण छुड़ाया गया।

२०. गोरक्षा और निर्दोष पशु-पक्षियों की रक्षा का कार्य किया गया।

२१. शुद्धि, दलितोद्धार, अछूतोद्धार और अन्तर्जातीय गुण कर्मानुसार विवाहों आदि के द्वारा हिन्दू समाज को परिष्कृत करने के साथ-साथ संगठित एवं दृढ़ किया गया।

२२. लोगों को अपने देश की प्राचीन गौरव, गरिमा और सांस्कृतिक अनुपम सम्पदा एवं उत्तराधिकार का भान कराके उनके प्रति प्रेम उत्पन्न किया और यह भ्रम दूर किया गया कि भारत के मूल निवासी आर्यों के अतिरिक्त अन्य जन थे जिन्हें द्रविड़ आदि की शरारत पूर्ण संज्ञा दी जाती है। स्वराज्य प्राप्ति की प्रेरणा दी गई। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग में पहल की गई।

२३. देश को संगठित शक्ति का महत्व बताया और प्रजातन्त्र पद्धति पर संगठन का उत्तम पाठ पढ़ाया।

२४. सुराज्य स्वराज्य का विकल्प नहीं है' सर्व प्रथम यह घोषणा आर्य समाज के मंच से की गई।

२५. आर्य भाषा हिन्दी को अपना कर उसको राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किए जाने के अधिकार को स्वीकार किया और कराया।

२६. राजनैतिक योगक्षेम का आधार लोगों की आर्थिक, धार्मिक,

सामाजिक, और नैतिक उन्नति स्थिर करके देश और समाज को अनेक योग्यतम नेता और कार्यकर्ता प्रदान करने का श्रेय प्राप्त किया।

२७. धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक स्वस्थ नेतृत्व एवं मार्ग दर्शन के लिए प्रचुर मात्रा में विशिष्ट एवं सामान्य वर्ग दोनों के लिए साहित्य उत्पन्न किया। अनेक विद्वान शास्त्रार्थ महारथी, साहित्यकार, प्रचारक और योग्य कार्यकर्ता उत्पन्न किए।

२८. आर्य समाज ने जितने शहीद दिए उतने अन्य किसी समाज ने नहीं दिए। आर्य समाज के जीवित शहीदों की गिनती करना कठिन है।

२९. आर्य समाज के संगठन की दृढ़ता की समानता अन्य कोई संगठन नहीं कर सका। इसका संगठन लोगों की प्रशंसा और स्पर्धा का विषय रहा है।

३०. भ्रमवशात् आर्य समाज को शान्ति और सौहार्द का अग्रदूत समझने के स्थान में विघटनकारी एवं साम्प्रदायिक समझकर उसके अस्तित्व को मिटाने और उसे प्रभावहीन बनाने के लिए अनेक राजकीय व अराजकीय दुष्प्रयत्न हुए। वह परीक्षणों में से गुजरने के लिए विवश हुआ परन्तु यतः उसकी नींव सत्य पर रखी हुई है अतः सभी में विजयी रहा। पटियाला का अभियोग हैदराबाद का धर्मयुद्ध, सत्यार्थप्रकाश की रक्षार्थ सिन्ध सत्याग्रह आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

महापुरुषों द्वारा आर्य समाज का मूल्यांकन

आर्य समाज के उद्देश्य और कार्य का बाहर के विज्ञानों ने जिनमें बड़े-२ राष्ट्र-नायक, तत्ववेत्ता, इतिहासकार और पत्रकार सम्मिलित हैं, जो स्पष्टीकरण और मूल्यांकन किया है उसकी किंचित झांकी का उनमें से कुछेक की सम्मतियों के प्रकाश में दिग्दर्शन कराया जाना आवश्यक है :—

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के उद्धार और अपने देश को नैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में ऊंचा उठाने के लिए जो मूल्यवान योग दिया है उसका थोड़ी सी पंक्तियों में पूर्ण विवरण दिया जाना सम्भव नहीं है। उन्होंने जन्मना जात-पात का खण्डन करके जो उपलब्धि प्राप्त की है वह मुझे विश्वास है कि भारत की उन्नति और एकता के लिए राजमार्ग सिद्ध होगी।

उन्होंने (स्वामी जी ने) भारतीय पुनर्जागरण के आधार पर आर्य समाज नामक जिस संस्था की नींव खड़ी की थी वह अब भी और सदैव भारत की आत्म चेतना और राष्ट्र कल्याण की स्वाभाविक भावना के जागरण के उदाहरण के रूप में देखी जाती रहेगी।

रहीमजादा सफावी तेहरान (ईरान)

—वही सच्चा राजनेता है जो भविष्यत् के लिए नियम और विधान

बनाता है, जो उस शक्ति को उन्मुक्त करता है जो आने वाली पीढ़ियों के जीवन और विचारों को प्रभावित करती रहे। जब भारत के विकास का इतिहास लिखा जाएगा तब उपयुक्त उच्चतम स्थान नंगे फकीर दयानन्द को प्राप्त होगा। उसने हिन्दू धर्म के हृदय को क्षय रोग से मुक्त करके शाश्वत् उन्नति के साथ जोड़ दिया जिसका बाह्य जगत् में शासन है। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि आर्या वर्त के प्राचीन ऋषियों की वर्षाती में जो कुछ सर्वोत्तम और सत्यमय है वह निधि है जिस पर समस्त मानव समाज का अधिकार है और वह किसी द्विजन्मा जाति और पवित्र भूमि तक सीमित नहीं है।

प्रत्येक धर्म की सच्ची कसौटी वह प्रभाव है जो आचार-विचार पर पड़ता है। स्वामी दयानन्द का चर्च (आर्य समाज) इस कसौटी पर खरा उतरा है। आर्य समाज प्रत्येक वस्तु को सच्चाई और पवित्रता के अन्तर्गत रखता है और यह आवश्यक समझता है कि प्रत्येक कार्य परमात्मा के नियम और आदेश के अनुकूल होना चाहिए।

दयानन्द ने करनी और कथनी से यह प्रमाणित करते हुए कि कर्मण्यता, उन्नति और संघर्ष, हिन्दू धर्म की सच्ची भावना के विरुद्ध नहीं है ईश्वर की सन्तानों में पूर्ण एकता स्थापित की। जहां जहां आर्य समाज एक तथ्य है वहां वहां जन सामान्य का आश्चर्यजनक उत्थान हुआ है। यह प्रजातन्त्रात्मक धर्म है। इसका कार्य मध्यम और निम्न वर्ग के प्रयत्न और समस्त वर्गों के हार्दिक सहयोग का फल है।

आर्य समाज की शक्ति और उत्साह का बांध-शिक्षा, कष्ट निवारण, पिछड़े वर्ग के उद्धार व सुधार, शास्त्रीय विद्वतापूर्ण और प्रचारात्मक साहित्य की सृजना के विस्तृत किनारों को तोड़कर प्रवाहित हो रहा है।

नवभारत के बौद्धिक एवं आचारिक जीवन पर आर्य समाज का प्रभाव, जो संख्या की दृष्टि से छोटा है-विस्मयकारी रहा है।

अधिक समय नहीं बीता है जबकि हिन्दू समाज का एक भाग जिसे गलती से सनातन समाज कहा जाता था सर्वत्र आर्य समाज के पीछे लाठी

लिए फिरता देखा जाता था और आध्यात्मिक एवं धार्मिक प्रश्नों के निपटारों के लिए सनातन समाज तर्क के प्रकाश का नहीं अपितु लाठियों डंडों और फौजदारी की अदालतों का सहारा लेने में नहीं शिक्षकता था। वह स्टेज समाप्त हो चुका है। आर्य समाज ने देश और धर्म की सेवा से अपने अस्तित्व की रक्षा की है। आज पौराणिक समाज आर्य समाज को अपना सर्वोत्तम साथी मानता है।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार

—स्वामी दयानन्द भारत को राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक रूप से एक सूत्र में बांधना चाहते थे। भारत को एक राष्ट्र का रूप देने के लिए उन्होंने भारत को विदेशी शासन से मुक्त करना चाहा। सामाजिक दृष्टि से देशवासियों को एक करने के लिए उन्होंने जात-पात और वर्ग के भेद भाव को मिटाना चाहा। भारतीयों को एक ही धर्मावलम्बी बनाने के लिए उन्होंने प्रचलित मतों के स्थान में वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म को स्थान देने की कामना की थी। स्वामी दयानन्द को इन उद्देश्यों में सफलता मिली।

समाज सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज ने अद्भुत सेवा की है। अन्त्यजों का उद्धार करके इस धार्मिक संगठन ने अपने को समाज के सच्चे उद्धारक के रूप में प्रस्तुत किया है। इसने अन्तर्जातीय विवाहों को तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहन दिया और क्रियात्मक रूप से अपने अनुयायियों में विवाह की आयु बढ़ाई है। इसकी शिक्षा, अकाल पीड़ितों की सहायता और अनाथों की रक्षा सम्बन्धी प्रगतियाँ श्लाघनीय हैं। शायद स्वामी दयानन्द सरस्वती का विशुद्ध धार्मिक प्रचार कुछ नीचे पड़ गया है। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि आर्य समाज ने जन सामान्य में एकेश्वरवाद को लोक प्रिय बनाने में सफलता प्राप्त की है।

माडर्न रिव्यू के यशस्वी संपादक स्व० रामानन्द चटर्जी

आर्य समाज और थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रसार से सफेद जाति की वरीयता के विश्वास का उन्मूलन हुआ है ।

ऐनी बिसेन्ट

—आर्य समाज सब मनुष्यों एवं सब देशों के प्रति न्याय और स्त्री पुरुष की समानता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करता है । यह जन्मना जात-पात का खंडन करता और गुण कर्म व योग्यता के आधार पर वर्ण व्यवस्था को मानता है । इस विभाजन से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं होता । सबसे बढ़कर अस्पृश्यों की घृणित मौजूदगी को वह वर्दाश्त नहीं करता और स्वामी दयानन्द से बढ़कर उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही रक्षक और दूसरा नहीं हुआ । वह आर्य समाज में समानता के आधार पर प्रविष्ट किए जाते हैं क्योंकि आर्य कोई जाति नहीं है । आर्य श्रेष्ठ और उन्नतमना व्यक्ति को कहते हैं ।

स्त्रियों की दुर्दशा के निवारण के लिए दयानन्द ने बड़ी उदारता और वीरता के साथ कार्य किया ।

राष्ट्रीय पुनर्जागरण में जो इस समय भारत में देख पड़ रहा है दयानन्द ने सबसे प्रबल शक्ति के रूप में कार्य किया । उनके आर्य समाज ने इच्छा वा अनिच्छा पूर्वक बंगाल के १९०५ के विप्लव का मार्ग बनाया था । दयानन्द सदैव सार्वजनिक रूप से यह घोषणा करते थे कि उनका समाज अराजनीतिक है और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट का निर्णय इससे भिन्न रहा था । आर्य समाज अपने सदस्यों की तत्सम्बन्धी कार्यवाही से समझौता करता था । दयानन्द राष्ट्रीय संगठन और पुनर्निर्माण का सर्वाधिक उत्साही मसीहा था । मैं समझता हूँ कि उसी ने जागृति बनाए रखी ।

रोम्या रोलॉ

—आर्य समाज नैतिक मूल्यों, शान्तिवाद, शाकाहार और सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य पर आश्रित समाज निर्माण का पृष्ठ पोषक है ।

थियोसोफिकल न्यूज एण्ड नोट्स लंडन जून १९५५

—स्वामी दयानन्द की जीवित जाग्रत शिक्षाओं की जड़ें बहुत गहरी पहुंच गई है और आर्य समाज उनके फल-फूलों को बहुमात्रा में उपयोग कर रहा है। किन्हीं उन व्यक्तियों की जो आर्य समाजी नहीं हैं उन समस्त शिक्षाओं से सहमति नहीं भी हो तब भी यह स्वीकार करना होगा कि स्वामी दयानन्द ने वैदिक ऋषियों के अधिक मौलिक एवं पवित्र सिद्धान्तों को पुनरुज्जीवित करके उन्नति की दिशा में वह योग दिया है जिसकी बड़ी आवश्यकता थी। —ए-बीव लेथे (बेल्जियम)

—स्वामी दयानन्द ने जो मूल्यवान निधियां छोड़ी हैं, अस्पृश्यता का स्पष्ट विरोध निःसन्देह उनमें एक निधि है। —महात्मा गांधी

—मैं आधुनिक भारत के महान् पथ-प्रदर्शक स्वामी दयानन्द के प्रति श्रद्धांजलि प्रस्तुत करता हूं जिन्होंने मत मतान्तरों और अनुष्ठानों के बीहड़ जंगल में से जिसमें देश के गतन के काल में गहरी घास उग आई थी मार्ग को परिष्कृत किया ताकि हिन्दू लोग परमात्मा के प्रति निष्ठा और मानव-सेवा का सादा और विवेक पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें।

सत्य के अप्रतिम दर्शन और दृढ़ निश्चय एवं साहस के संबल से उन्होंने हमारे आत्म-सम्मान और हृदय को आलोकित करने के लिए जो कार्य एवं प्रचार किया उसकी आधुनिक काल की प्रगतिशील भावना से संगति विठाने के लिए हमें प्रयत्नशील होना चाहिए और साथ ही भारत के उस गौरवपूर्ण भूतकाल से सम्पर्क बनाये रखना चाहिए जबकि उसने अपने वजूद को विचार और कर्म की स्वतन्त्रता में और चमकती हुई अध्यात्म साधना में व्यक्त किया था। —रवीन्द्रनाथ टैगोर

—आर्य समाज ने लड़कों और लड़कियों की शिक्षा के प्रसार स्त्रियों की दशा के सुधार और दलितोंद्वारा का बहुत अच्छा कार्य किया है।

—पं० जवाहरलाल नेहरू

आर्य समाज मेरी माता है।

—ला० लाजपति राय

आर्य समाज का विस्तार

१—विश्व में लगभग ४००० आर्य समाजें हैं जिनमें ३५०० के लगभग भारत में हैं ।

२—२०० के लगभग प्रान्तीय व जिला उप सभाएं हैं ।

३—भारत, नेपाल, अफ्रीका, ट्रीनीडाड आदि-आदि में आर्य वीरदल की लगभग ५०० शाखाएं स्थापित हैं जिनमें हजारों नवयुवक धर्म और व्यायाम की शिक्षा पाते हैं ।

४—२०० के लगभग आर्य कुमार सभाएं हैं ।

५—५०० से अधिक कालेज और हाई स्कूल हैं । बालकों और बालिकाओं के लिए लगभग २००० प्राइमरी और मिडिल स्कूल हैं ।

६—६० बालकों और कन्याओं के गुस्कुल हैं ।

७—३०० संस्कृत विद्यालय और धर्मार्थ औपघालय हैं ।

८—४०० से अधिक अछूतों के लिए पाठशालाएं हैं ।

९—१२ से अधिक टेक्नीकल संस्थाएं हैं ।

१०—२०० से अधिक अनाथालय, बनिताश्रम और गौशालाएं हैं ।

११—५०० के लगभग अतिथि भवन, छात्रावास और व्यायाम-शालाएं हैं ।

१२—३०० के लगभग प्रेस, पत्र पत्रिकाएं वाचनालय और पुस्तकालय हैं ।

१३—१००० के लगभग संन्यासी, व्याख्याता, भजनोपदेशक प्रचार कार्य में संलग्न हैं ।

१४—आर्यों की संख्या लगभग २ करोड़ तथा रजिस्टर्ड सदस्यों की संख्या लगभग ५० लाख है ।

१५—आर्य समाज की संस्थाओं में ५ लाख से अधिक लड़के और लड़कियां शिक्षा पाते हैं और इन संस्थाओं पर प्रतिवर्ष ७ करोड़ से अधिक रुपया खर्च होता है ।

आर्य समाज का संगठन

आर्य समाज का सदस्य बनने की रीति

प्रत्येक मनुष्य आर्य समाज के दस नियमों तथा महर्षि दयानन्द की व्याख्यानानुसार वैदिक सिद्धान्तों को मानता और उन पर आचरण करता हुआ आर्य समाज का सदस्य बन सकता है। प्रविष्ट होने की तिथि से २ वर्ष पश्चात् तथा सदाचार पूर्वक रहने तथा अपनी आय का शतांश आर्य समाज को देने पर वह आर्य सभासद बनने के योग्य होता है। ६ आर्य सदस्य होने पर आर्य समाज स्थापित हो सकता है।

अधिकारियों तथा प्रबन्ध कारिणी का चुनाव

आर्य समाज प्रति वर्ष अपने में से प्रधानादि अधिकारी वर्ग तथा एक प्रबन्ध कर्तृ समिति का निर्वाचन करता है जो अन्तरंग सभा कहलाती है। एक वर्ष तक समस्त सामाजिक कार्यों का यथोचित प्रबन्ध करना इसका कर्तव्य होता है।

आर्य समाज व आर्यों की संख्या

इस समय भारत में तथा उससे बाहर लगभग ४००० आर्य समाजों और लगभग ५० लाख आर्य समाज के रजिस्टर्ड सभासद हैं।

साप्ताहिक सत्संग

प्रत्येक समाज अपना साप्ताहिक अधिवेशन करता है जो प्रायः रविवार को होता है। इन अधिवेशनों में हवन, ईश्वर प्रार्थना, वेद पाठ, भजन गान के अतिरिक्त अन्य उपयोगी ग्रन्थ पढ़े जाते एवं धार्मिक व सामाजिक विषयों पर व्याख्यान भी होते हैं।

प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाएं

एक प्रदेश के आर्य समाज मिलकर अपनी संघ शक्ति द्वारा "आर्य प्रतिनिधि सभा" की स्थापना करते हैं जो विविध समाजों के प्रतिनिधि सभासदों के द्वारा संगठित होती है। यह सभा अपने प्रान्त में उपदेश तथा अन्य धार्मिक कार्यों का प्रबन्ध करती है। इस समय देश और विदेश में २१ प्रतिनिधि सभाएं हैं :—

मुख्य स्थान

१. उत्तर प्रदेश	५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
२. पंजाब	होशियारपुर रोड, जालन्धर
३. बिहार	मुनीश्वरानन्द भवन, बांकीपुर पटना
४. बंगाल, आसाम	४२ शंकर घोष लेन, कलकत्ता
५. राजस्थान	दयानन्द मार्ग अलवर
६. मध्य प्रदेश	मंगल बारी सदर, नागपुर
७. मध्य भारत	इन्दौर
८. बम्बई	विठ्ठलमाई पटेल रोड, गिरगांम-बम्बई
९. हैदराबाद	आर्यसमाज सुल्तान बाजार, हैदराबाद-दक्षिण
१०. उड़ीसा	सम्बलपुर
११. काश्मीर	जम्मू
१२. दिल्ली राज्य	दिल्ली
१३. गुजरात	बड़ौदा
१४. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब	जालंधर

विदेश

१५. पूर्वी अफ्रीका	नैरोबी
१६. दक्षिण अफ्रीका	डरबन
१७. मारीशस	पोर्टलुइस
१८. फिजी	सूवा



१६. सुरीनाम डच गायना

पारामारिवो

२०. अमेरिकन आर्यन लीग

ज्योर्ज टाउन

२१. ब्रह्मदेश

रंगून

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

मुख्यतः प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं के प्रतिनिधि सभासदों द्वारा समस्त विश्व के लिए "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा" स्थापित है जिसका मुख्य स्थान ३।५ महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान नई दिल्ली है।

आर्य समाज के संगठन की विशेषता

आर्य समाज का संगठन नीचे से ऊपर को जाता है अर्थात् उसकी इकाई स्थानीय आर्य समाज है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि इस संगठन का छिन्न-भिन्न होना प्रायः असम्भव है। इसकी कमी यह है कि इसमें प्रतिनिधि सभाओं को अपनी बढ़ता के लिए आर्य समाजों पर और सार्वदेशिक सभा को प्रदेशीय सभाओं पर निर्भर रहना होता है। फलतः केन्द्र के सर्व प्रभुता सम्पन्न होने की बहुत कम गुंजाइश है।

अन्य सभाएं

उपर्युक्त सभाओं और समाजों के अतिरिक्त परोपकारिणी सभा भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् और सार्वदेशिक आर्य वीर दल भी हैं। परोपकारिणी सभा को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों को सुरक्षित रखने, वेदों का प्रचार करने आदि कार्यों के लिए स्थापित किया था। इसका मुख्य स्थान अजमेर है।

आर्य कुमारों को आर्य समाज के योग्य सभासद बनाने के उद्देश्य से आर्य कुमार परिषद् की स्थापना हुई थी। यह सिद्धान्त सरोज,

सिद्धान्त विशारद, सिद्धान्त शास्त्री परीक्षाओं की योजना करती रही है जो बड़ी लोकप्रिय रही है ।

आर्यों के क्षात्रधर्म को जागृत रखने एवं रक्षा तथा सेवा वार्यों के निमित्त “आर्य वीर दल” का संगठन हुआ था । गृह दल सार्वदेशिक समा के अधीन है ।

शुद्धि के कार्य को व्यवस्थित और अधिक से अधिक प्रसारित करने के उद्देश्य से स्व० धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अखिल भारतीय शुद्धि सभा की स्थापना की थी । दलितोद्धार सभा की भी स्थापना श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने १९२१ में की थी । इसका अपना भवन आर्य नगर पहाड़गंज दिल्ली में है । यह सार्वदेशिक समा से सम्बद्ध है ।

सुप्रसिद्ध संस्थाएं

प्रसिद्ध गुरुकुल—गुरुकुल कांगड़ी

पो०—गुरुकुल कांगड़ी

जि०—सहारनपुर

गुरुकुल वृन्दावन

(मथुरा)

कन्या गुरुकुल, देहरादून

कन्या गुरुकुल, हाथरस

पो०—कन्या गुरुकुल, (अलीगढ़)

कन्या महा विद्यालय, जालन्धर
 कन्या गुरुकुल, पोर बन्दर (सौराष्ट्र)
 कन्या महा विद्यालय, कारेली बाग बड़ौदा
 आर्ष गुरुकुल, एटा
 गुरुकुल, सिरसागंज (मैनपुरी)
 गुरुकुल, वैद्यनाथ धाम विहार
 गुरुकुल, अयोध्या
 कन्या गुरुकुल, (नरेला) दिल्ली
 गुरुकुल झज्जर

आर्य अनाथालय

१. दिल्ली (पटौदी हाउस) दरियागंज, दिल्ली
२. बरेली
३. लखनऊ
४. आगरा
५. फिरोजपुर
६. अजमेर

प्रेस

- (१) आर्य भास्कर प्रेस — ५ मीराबाई मार्ग लखनऊ
 (२) सार्वदेशिक प्रेस — पटौदी हाउस दरियागंज दिल्ली

वानप्रस्थाश्रमादि

- (१) आर्य वानप्रस्थ संन्यास आश्रम ज्वालापुर
- (२) तपोवन नाला पानी देहरादून

- (३) साधनाश्रम यमुना नगर (अम्बाला)
 (४) उपदेशक विद्यालय यमुना नगर (अम्बाला)

कालेज

- (१) दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज लाहौर (वर्तमान अम्बाला)
 (२) " " " कानपुर
 (३) " " " देहरादून
 (४) " " " चंडीगढ़
 (५) " " " जालन्धर
 (६) " " " होशियारपुर
 (७) राजाराम कालेज — कोल्हापुर
 (८) डी० ए० वी० कालेज — शोलापुर
 (९) " " — लखनऊ
 (१०) " " — अजमेर
 (११) आर्य कालेज — पानीपत (करनाल)

संस्कृत स्कूल व कालेज

- (१) दयानन्द साधु आश्रम आना सागर अजमेर
 (२) सर्वदानन्द साधु आश्रम पुल काली नदी अलीगढ़
 (३) महा विद्यालय ज्वालापुर (सहारनपुर)

हाई स्कूल

प्रयाग, बनारस, लखनऊ, कानपुर, देहरादून, अजमेर, पंजाब, उत्तर

प्रदेश, आदि-आदि प्रान्तों के प्रायः प्रत्येक जिले और बड़े नगर में ।

कन्या स्कूल

यू० पी०, पंजाब, बिहार, बंगाल, मध्य भारत, राजस्थान, बम्बई आदि-आदि प्रान्तों के प्रायः प्रत्येक जिले, कस्बे और बड़े नगर में ।

पत्र पत्रिकाएं

१. 'सार्वदेशिक' ३/५ दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१
२. आर्यमित्र, ५ मीराबाई मार्ग, लखनऊ
३. आर्य जगत, जालन्धर
४. आर्य गजट, दीवान हाल, दिल्ली
५. परोपकारी, अजमेर
६. आर्य सेवक, नागपुर
७. वैदिक लाइट अंग्रेजी मासिक, सार्वदेशिक आ० प्र० सभा, दयानन्द भवन, नई दिल्ली ।
८. आर्य मर्यादा, जालन्धर
९. वैदिक धर्म पारडी (सुरत)
१०. वेद वाणी, सौनीपत
११. सविता, दिल्ली

उप संहार

आर्यसमाज के मन्तव्यों और कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए आशा है कि सर्व साधारण जनता "आर्यसमाज" की महत्ता

को अनुभव करेगी क्योंकि आर्य समाज का एकमात्र उद्देश्य वैदिक सूर्य के प्रकाश द्वारा संसार में फैली अशान्ति, अविद्या और दुराचार के अन्धकार को दूर करना है। महर्षि दयानन्द का यही अभिप्राय था और इसी के लिए वे जिए और मरे।

परमात्मा करे उस आदित्य ब्रह्मचारी की साधना और मनो कामना पूरी हो। वेद का प्रचार हो, सत्य का प्रकाश हो, पाखंड का संहार और अवैदिक मतों का विनाश हो, विद्या का प्रचार हो, सदाचार की वृद्धि हो, वर्णाश्रम मर्यादा पुनः स्थापित हो और मनुष्यमात्र का हर प्रकार का उत्थान और कल्याण हो।

“सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे भवन्तु निरामयः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥”

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

THE FIRST PART OF THE HISTORY OF THE
 LIFE OF THE LATE KING OF SWEDEN
 BY THE SAME AUTHOR

THE SECOND PART OF THE HISTORY OF THE
 LIFE OF THE LATE KING OF SWEDEN
 BY THE SAME AUTHOR

THE HISTORY OF THE LATE KING OF SWEDEN
 BY THE SAME AUTHOR

THE HISTORY OF THE LATE KING OF SWEDEN

आर्यसमाज
और उसका संदेश
परिशिष्ट भाग

बालमहाराज

वर्तमान राजाज्य राजा

राजा जगदीश

आर्यसमाज के हुतात्मा

महर्षि दयानंद सरस्वती

जन्म—१८२४ टंकारा (मोर्वी स्टेट)

निर्वाण—१८८३ अजमेर ३०-१०-१८८३

राजाओं के सुधार कार्य में निमग्न महर्षि दयानंद को जोधपुर में एक वेश्या के कुचक्र से विष दिया गया क्योंकि उन्होंने महाराजा जोधपुर का मन अपनी शिक्षाओं के द्वारा उस वेश्या की ओर से हटा दिया था ।

पं० लेखराम जो आर्य पथिक

जन्म—८ चैत्र सम्वत् १९१५ वि० सैदपुर (सीमा प्रान्त)

शहादत—६ मार्च १८९७ ई० लाहौर

पंडित जी के शास्त्रार्थों में पराजित होकर तथा शुद्धि कार्य से त्रस्त मतान्ध मुसलमानों के कुचक्र से शहीद हुए ।

पं० तुलसीराम जी

जन्म—१८७१ ग्राम रूखा (गुरुदासपुर)

शहादत—१९०३ फरीदकोट स्टेशन

ये स्टेशन मास्टर थे । सितार बजाते हुए ही मुख्य रूप से प्रचार करते थे । भावड जैनियों के षडयंत्र के शिकार होकर अमर पद को प्राप्त हुए ।

वीर रामचन्द्र

जन्म—१९ आषाढ़ सं० १८५३ रियासत जम्मू जि० कठुआ तह-
सील हीरानगर

शहादत—२० जनवरी १९२३ ई० जम्मू के राजकीय हस्पताल में मेघो (दलितो) द्वार के कार्य में निमग्न रहने के कारण जन्म जात्याभिमानी राजपूतों के हाथों शहीद हुए ।

स्वामी श्रद्धानंद जी

जन्म—फाल्गुन कृ० १३ संवत् १९१३ वि० २५-२। १८५७ ई०
ग्राम तलवल (जालंधर)

शहादत—२३ दिसम्बर १९२६ ई० दिल्ली

हिन्दू जाति के संगठन एवं उसे दृढ़ बनाने तथा शुद्धि के कार्य में लगे हुए इन महात्मा को एक मतान्ध मुस्लिम ने गोली का शिकार बनाया ।

ला० नंदलाल जी

जन्म—३-११-१९०८ लाहौर

शहादत—१२-११-१९२७

उत्साही नवयुवक थे । कुरान शरीफ का मनन पूर्वक अध्ययन किया था । फेरी द्वारा कपड़ा बेचते थे । मुसलमानों को कई बार धर्म चर्चा में परास्त किया । फेरी से लौटते हुए किसी मतान्ध ने गला घोटकर हत्या कर दी :

मं० राजपाल जी

जन्म—५ आसाढ़ स० १९४२ वि० अमृतसर

शहादत—६ अप्रैल १९२९ ई० लाहौर

आर्य समाज के सुप्रसिद्ध साहित्य प्रकाशक थे । १९२४ में कादिया-नियों ने १९ वीं सदी का महर्षि नामक एक घोर आपत्ति जनक पुस्तक छापी । उसी साल महाशय जी के सरस्वती पुस्तकालय से उसके उत्तर में रंगीला रसूल पुस्तक छपी । मुसलमानों ने कोर्ट में केस चलाया उसमें

महाशय जी बरी हो गए परन्तु एक मतान्ध मुसलमान ने उनकी दूकान पर ही हत्या कर दी ।

श्री परमानन्द

जन्म—७-४-१९२० डेरा गाजीखां

शहादत—२६-३-१९४४ लाहौर

गुरुकुल बट सोहनी में ५ वर्ष तक शिक्षा ग्रहण की । लाहौर जाकर बुक वाइंडिंग की दूकान खोली । उर्दू सत्यार्थ प्रकाश के फार्मों में आग लगाने से अपने मुस्लिम कारीगरों को रोकते हुए एक कारीगर के छुरे से आहत होकर शहादत प्राप्त की ।

नाथूराम जी

जन्म—६-४-१९०८ हैदराबाद सिंध

शहादत—२०-६-१९३४

अपने माता पिता के इकलौते बेटे थे । १९२७ में आर्य समाज में प्रविष्ट हुए । माता-पितादि रुष्ट हुए परन्तु परवाह न की । पौराणिकों एवं मुसलमानों को बहस में परास्त किया करते थे । १९३१ में अहमदी फिरके की एक अंजुमन बनी : इसने हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओं के पुस्तकों पर आघात आक्षेप करते हुए कई इश्तिहार छापकर बांटे । नव युवक नाथूराम ने उत्तर में 'तारीखे इसलाम' नामक पुस्तक का सिंधी में अनुवाद करके छपा और बांटा और इश्तिहारों के जवाब में एक ट्रैक्ट प्रकाशित किया । इन पर अभियोग चलाया गया । सेशन कोर्ट ने ११ वर्ष की कैद तथा १००० जुर्माने की सजा दी । इस फैसले के विरुद्ध चीफ कोर्ट करांची में अपील की गई । जिस दिन इस अपील का फैसला सुनाया जाने वाला था उसी दिन कोर्ट में पास में बैठे एक मुसलमान ने छुरा मारकर हत्या कर दी । हत्यारा पकड़ा गया और उसे फांसी की सजा हुई : उस दिन कचहरी में फैसला सुनने के लिए भारी जनसमूह

उपस्थित था। वहां से ही वीर की अर्थी निकाली गई थी। चीफ जस्टिस ने माथा झुकाकर वीर के प्रति सम्मान प्रकट किया था।

मेघराज जी

जन्म—सम्बत् १९३८ नारायण गढ़ (इन्दौर)

शहादत १९३८ ई०

अछूत कहे जाने वाले भाइयों को मन्दिर प्रवेश के नागरिक अधिकारों का उपभोग करने में मदद करते हुए जात्माभिमानी हिन्दुओं की मारपीट से आहत होकर शहीद हुए।

लाला बद्रीशाह

लाला जी बहराइच (उ० प्र०) में आर्य समाज का कार्य बड़े उत्साह से करते थे और उस इलाके के सुप्रसिद्ध आर्य थे। शुद्धि कार्य में बड़ा भाग लेते थे। एक दिन सायंकाल को जबकि वह अकेले इक्के में जा रहे थे मुसलमानों ने इन्हें मार डाला।

हैदराबाद धर्म युद्ध के हुतात्मा

नाम	जन्म स्थान	शहादत स्थान
१ श्री पं० श्यामलाल	भाल की ग्राम जिला बीदर १९०३ ई०	बीदर १६-१२-१९३८
२ श्री स्वामी सत्यानंद	शाहजहांपुर के जिले में १८६०	चंचल गुडा जेल २७-४-१९३९
३ श्री परमानन्द	हरिद्वार	गुलवर्गा जेल १-४-१९३९
४ श्री विष्णु भागवंत	तांडूर कस्बा	गुलवर्गा २-५-१९३९
५ श्री छोटेलाल	अलालपुर जि. मैनपुरी मार्गशीर्ष	गुलवर्गा ३-५-१९३९

शु. १० शनिवार सं० ११६१ वि.

६ श्री नन्हूसिंह	अमरावती	चंचल गुडा २६-५-१९३६
७ श्री माधवराव सदाशिवराव	उस्मानाबाद जिलान्तर्गत लातूर	गुलबर्गी २६-५-१९३६
८ श्री पांडुरंग	उस्मानाबाद	गुलबर्गी २७-५-१९३६
९ सुनहरासिंह	बुढाना (रोहतक)	औरंगाबाद ८-६-१९३६
१० श्री फकीरचंद	ग्रास सेरघा तहसील कैथल जि. करनाल	औरंगाबाद १-७-१९३६
११ श्री मलखान सिंह	ग्राम रामपुर रुड़की (सहारनपुर)	चंचलगुडा १-७-१९३६
१२ श्री स्वा. कल्याणानन्द जी	ग्राम किनीनी डा. बघरा (मुजफ्फरनगर) सन् १८७४	गुलबर्गी ८-७-१९३६

१३ श्री शान्तिप्रकाश

ग्राम कलानीर अकवरी जिला

उस्मानाबाद २७-७-१९३६

गुरदासपुर पौष सं. १९७८

१४ श्री वदनसिंह

मुजफ्फराबाद (सहारनपुर)

बारंगल २४-८-१९३६

जुलाई १९२१

१५ श्री ताराचंद

ग्राम लम्ब (मेरठ) श्रावण वदि

हैदराबाद सेन्ट्रल जेल में बीमारपड़े

११ सं० १९७३

२-६-१९३६

१६ श्री अशरफी लाल

नर कटिया गंज (चंपारण)

हैदराबाद सेन्ट्रल जेल १६-८-१९३६

(घातक रोग से पीड़ित होकर छूटे थे)

१७ श्री ब्र० रामनाथ (गु. कांगड़ी)

ग्राम असाखा निकट अहमदाबाद

बारंगल जेल में पीड़ित ८-६-१९३६

१६-६-१९१७

१८ श्री सदाशिवराव पाठक

तदोला ग्राम शोलापुर

हैदराबाद १३-८-१९३६

१९ श्री गोविन्दराव

नलगीर जि. बीदर

हैदराबाद सेन्ट्रल जेल

२० श्री मातुराम

मिलिन्दपुर (हिसार)
सम्बत् १९४६

औरंगाबाद २८-७-१९३९
(जेल से बाहर)

२१ श्री महारेव

ग्राम निवाडे

गुलवर्गा

२२ श्री रतीराम

ग्राम सांपला (रोहतक)

हैदराबाद २५-८-१९३९

२३ श्री अरूड़ामल

सरगोधा

गुलवर्गा (जेल से रुणावस्था में
निकाले गए) १-८-१९३९

२४ श्री पुरुषोत्तम ज्ञानी

बुरहानपुर (म० प्र०)

२५ श्री ब्र. दयानन्द

सासा जि. हरदोई (उ० प्र०)
पौष १९१९

हैदराबाद सेन्ट्रल जेल में रहे
९-३-४० को शहादत (जेल में
घातक रोग से पीड़ित होकर)

२६ श्री बैजनाथ जी

नरकटिया गंज (चंपारन)

गुलवर्गा रुणावस्था में जेल से छूटे
२५-६-१९३९

(विस्तृत विवरण के लिए सार्वदेशिक आ० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित आर्य समाज के महाधन पुस्तक देखें ।)

हैदराबाद राज्य के आर्य वीर जिन्होंने अपने बलिदान से हैदराबाद सत्याग्रह का मार्ग प्रशस्त किया

श्री वेदप्रकाश

गुंजोटी पायगा

आर्य समाज का कार्य ३० साल पूर्व से करने से मुस्लिम गुंडे चिढ़ गए। कई बार घातक आक्रमण हुए। एक बार १०० गुंडों ने घेर कर कहा मुसलमान हो जाओ पर यह वीर तैयार न हुआ। मार्ग शीर्ष ४ सं० १९६४ वि० को हत्या कर दी गई।

श्री धर्मप्रकाश

कल्याणी ग्राम

हिन्दुओं को मुसलमानों के आततायीपन से रक्षा करते हुए २७-२-१९३८ को हुतात्मा हुए।

श्री महादेव

अकुलणगा

इनके प्रचार से मुसलमानों के हितों को ठेस लगी १४-७ १९३८ को एक मुस्लिम गुंडे ने छुरे से हत्या कर दी।

श्री रामकृष्ण जी

तावसी ग्राम के एक अछूत
कहे जाने वाले परिवार में

पठानों द्वारा हिन्दू मंदिर के तोड़े जाने पर मंदिर की
रक्षार्थ आग में कूदे। पठानों को मार भगाया। उस्माना-
बाद के हस्पताल में मृत्यु हुई।

२००

श्री सीमाराव जी

इनके घर पर मुसलमानों ने आक्रमण किया क्योंकि उन्होंने
एक मुस्लिम बनी हिन्दू महिला की शुद्धि की थी। गोली
मार कर हत्या कर दी।

श्री माणिकराव जी

इस वीर ने अपनी बहिन को मुसलमान बन जाने पर शुद्ध
कर लिया था। इसी लिए इन्हें भी गोली का निशाना
बनाया गया।

श्री सत्यनारायण जी

यह वीर आर्य समाज के कामों में भाग लिया करता था
जिसके कारण स्थानीय मुसलमान इससे चिढ़ने लगे। एक
आततायी मुस्लिम गुंडे ने तलवार का वार करके इन्हें
घायल कर दिया हस्पताल पहुंचने पर देहान्त हो गया -

श्री अर्जुनसिंह

यह वीर सिक्ख थे। तालुका कन्नड़ जि. औरंगाबाद के
निवासी तथा हैदराबाद के दयानंद मुक्तिदल के दलपति

थे । आषाढ़ शु. ११ शके १८६१ को जब वह विठोबा की यात्रा का प्रबन्ध करके लौट रहे थे मार्ग में सशस्त्र मुसलमानों ने आक्रमण करके घायल कर दिया । हस्पताल में वीर गति को प्राप्त हुए ।

श्री राधाकृष्ण

निजामाबाद का. शु. ३

सं. १९५३

१९३४ से आर्य समाज के सदस्य बनकर उसकी प्रगतियों में बढ़ चढ़ कर भाग लेने लगे । पं० नरेन्द्र जी मंत्री आ. प्र. सभा हैदराबाद स्टेट ने १९३५ में निजामाबाद समाज की स्थापना की और नियमित प्रचार की व्यवस्था कर दी । श्रीराधाकृष्ण पर पुलिस ने झूठा केस चलाया । १ वर्ष के लिए २००० रु० के भुचलका लेकर छोड़ दिए गए । परन्तु प्रचारकार्य पूर्ववत् करते रहें । हैदराबाद सत्याग्रह के लिए तन मन धन से कार्य किया । पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी आग बबूला हो गए । २-८-३९ को पुलिस स्टेशन के सामने एक धम्मन्धि अरब द्वारा इनका कत्ल करवा दिया गया ।

३ मार्च १९१६ दुवलगुडी
पायगा ग्राम

आर्य समाज में प्रविष्ट होकर यज्ञोपवीत धारण किया ।
श्री पं० नरेन्द्र जी ने इनकी कार्य कुशलता तथा सदाचरण
पर मुग्ध होकर इन्हें आर्योपदेशक बनने के लिए प्रेरित
किया । इन्होंने यह बात स्वीकार करके प्रचार कार्य
प्रारंभ कर दिया । हुम्नावाद सदाशिव पेठ आदि स्थानों
पर जहाँ मुसलमानों का प्रावत्य था समाज तथा पाठशा-
लाएं खोलीं : फलतः मुसलमान द्वेष करने लगे । ३-३-४२
को होली के अवसर पर लक्कि आ. स. हुम्नावाद का
जलूस निकल रहा था मुस्लिम गुंडों ने पुलिस की सहायता
से बन्दूकों से आक्रमण कर श्री शिवचन्द्र जी के साथ श्री
लक्ष्मण राव, श्री राव जी राव, इंगड़े तथा श्री नरसिंह
राव को गोली का निशाना बनाया । ये तीनों व्यक्ति भी
आर्य समाज के विशेष भक्त थे ।

आर्य समाज की नींव के कुछ पत्थर

लक्ष्मणराव शर्मा इन्दौर राज्य के पुलिस इन्स्पेक्टर जनरल के कार्यालय में हेड एकाउण्टेंट थे। उन्होंने आर्य समाज के प्रधान की हैसियत से आर्य समाज के नगर कीर्तन के लिए मजिस्ट्रेट से आज्ञा ली। उत्सव २२ और २३ जून १९०७ को मनाया गया था। यह वही साल था जब श्रीयुत ला० लाजपतराय जी का निर्वासन हुआ था और सरकारी क्षेत्रों में आतंक छाया हुआ था। पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल को ज्यों ही यह पता लगा कि लक्ष्मणराव का आर्य समाज के साथ सम्बन्ध है त्यों ही उन्होंने राव महाशय को अपने कमरे में बुलाकर उनसे बात की जो इस प्रकार हुई :—

इ० ज०—क्या तुम आर्य समाजी हो ?

लक्ष्मणराव—जी हां।

इ०—क्या तुम आर्य समाज में सक्रिय भाग लेते हो ?

लक्ष्मणराव—मैं २९ वर्ष से समाज का प्रधान हूँ।

इ०—क्या तुम नगर कीर्तन की अनुमति के लिए मजिस्ट्रेट के पास गए थे ?

लक्ष्मणराव—जी हां।

इस बातचीत के दौरान इन्स्पेक्टर जनरल ने राव महाशय को उपदेश दिया कि यह आर्य समाज से अपना सम्बन्ध तोड़ दें। साथ ही वेतन और पदवृद्धि के अनेक प्रलोभन भी दिए। लक्ष्मणराव ने इन्स्पेक्टर जनरल से बार-बार पूछा कि क्या उन्हें आर्य समाज के विरुद्ध कोई शिकायत मिली है। उन्होंने अपने विचार में कहा कि आजकल यूरोपियन अफसरों को मारने का कुचक्र चल रहा है। इन्स्पेक्टर ने कहा—तुम्हारे

सम्बन्ध में मेरी सम्मति बहुत अच्छी है और तुम्हारे विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। आर्य समाज जैसी राजद्रोहात्मक सोसाइटी में भाग लेने से मैं तुमसे बहुत नाराज हूँ। यह कहकर जनरल महोदय ने पायोनियर के एक लेख का अंश पढ़ा जिसमें लिखा था कि पंजाब सरकार आर्य समाज को राजद्रोही समाज मानती है। अन्त में जनरल महोदय ने लक्ष्मणराव का अन्तिम निर्णय मांगा। उन्होंने कहा, मेरी आत्मा यह नहीं कहती और जहां तक मेरा ज्ञान है उससे भी यही ज्ञात होता है कि आर्य समाज राजनीतिक संस्था नहीं है। मैं इसे विशुद्ध धार्मिक संस्था मानता हूँ। आर्य समाज का प्रधान होते हुए इस समय आर्य समाज से पृथक् हो जाना मेरे लिए बड़ा अपमान जनक होगा। आप इस समय मुझे भाग लेने की अनुमति दें बाद में आपके आर्डर का पालन करने पर विचार करूंगा।

गोरे साहब ने प्रार्थना स्वीकार न की और कहा, 'तुम आर्य समाज में भाग नहीं ले सकते। यदि तुमने भाग लिया तो नौकरी से अलग कर दिये जाओगे?' लक्ष्मणराव ने कोई विकल्प न देखकर कहा :—

“मैं प्रत्येक मूल्य और खतरे पर नगर कीर्तन में भाग लूंगा। मैं रोटी की खातिर अपनी आत्मा को और आर्य समाज को धोखा नहीं दे सकता।”

परिणाम जो होना था वही हुआ। लक्ष्मणराव अपनी नौकरी से वंचित हो गए।

अवकाश लेने पर सर्विस से पृथक्

पं० इन्द्रजीत शाहजहांपुर की जिला कचहरी में काम करते थे। बड़े परिश्रमी और कर्तव्य परायण थे। रिश्वत को हाथ न लगाते थे। आर्य समाज का कार्य बड़े उत्साह से करते थे।

उन्होंने रोगग्रस्त होने के कारण अवकाश लिया। उनके अफसर ने उन्हें बुलाकर कहा, “तुम आर्य समाज के काम में सरगर्म हिस्सा लेते

हो जो एक बड़ा अपराध है। या तो आर्य समाज की सेवा करो या सरकार की। वोलो दोनों में से कौन-सी चुनते हो?"

पं० इन्द्रजीत ने बड़े गर्व के साथ कहा, "मैं दोनों में से आर्य समाज की सेवा को चुनता हूँ।" फलतः वह सविस से निकाल दिये गये।

...

...

...

मुसलमान जमादार

एक फौजी अंग्रेज कैप्टेन की एक मुसलमान जमादार से किसी विषय पर वहस हुई और वह अंग्रेज हार गया। उस अंग्रेज ने अपने बड़े अफसर से उसकी उद्दण्डता की शिकायत कर दी। एक गोरे अंग्रेज अफसर का काले हिन्दुस्तानी के द्वारा अपमानित होना क्या छोटी बात थी? वहस में अंग्रेज अफसर का हार जाना ब्रिटिश वर्चस्व पर क्या छोटा आघात था? बड़े अफसर ने जमादार को बुलाया और कहा, "बदमाश आर्य समाजी! तुम अपने साहब से गुस्ताखी से पेश क्यों आया है?" जमादार ने कहा, 'जनाव मैं मुसलमान हूँ' "साहब ने अपनी दृष्टि में अपने को ठीक करते हुए कहा, "तब तुम मुसलमान आर्य समाजी हो?"

पं० भगवानदीन जी

उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री स्व. पं. भगवानदीन जी (हरदोई) सरकारी नौकरी में थे। उनका सब कार्य अत्यन्त सन्तोषजनक था। सभी सम्बद्ध अधिकारियों ने उनकी प्रशंसा की थी। परन्तु जब सरकार घबरा गई तब आफिसर ने पंडित जी से यह आश्वासन लेना चाहा कि वे आर्य समाज का कोई काम न करेंगे। पंडित जी के ऐसा आश्वासन न देने पर उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। यहां तक कि उन्हें छुट्टी से भी इन्कार कर दिया गया। इस पर असन्तुष्ट होकर

पंडित जी ने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और स्वतन्त्र होकर पूर्ण रूप से आर्य समाज की सेवा में लग गये ।

गुलाबचन्द्र

गुलाबचन्द्र एक सिक्ख रेजीमेंट में लेखक थे । वह कर्त्तव्यपरायण, लोक प्रिय और परिश्रमी थे । वह अधिकारियों को सही कार्यवाही का निर्देश देने में निर्भीक थे । पहले तो उनकी इस बात की प्रशंसा होती थी परन्तु बाद में उनका यह गुण कांटे की तरह चुमने लगा और उन्हें इसलिए पृथक् कर दिया गया कि यह आर्य समाजी हैं ।

महात्मा नारायण स्वामी

स्व० पं० तुलसीराम जी की मुंशी नारायण प्रसाद (म० नारायण स्वामी जी) से बड़ी प्रीति थी । उन्होंने एक निजी पत्र में उन्हें लिखा कि पेंशन जो कुछ मिले लेकर आर्य प्रतिनिधि सभा का काम करना चाहिए । इस प्रस्ताव की पूर्ति में मुंशी जी के सामने एक बड़ी कठिनाई थी । पेंशन केवल उसी दशा में मिल सकती थी कि जब सिविल सर्जन सर्टिफिकेट दे दें कि वह काम करने के अयोग्य (Invalid) हैं । सर्टिफिकेट लेना कुछ कारणों से उचित न था । कारण ये हैं :—

१—१९१० में काम के अयोग्य होने का तो कोई प्रश्न ही न था जबकि स्वामी जी १९४१ में भी काम के अयोग्य न थे ।

२—वह सदैव ऐसे पदों पर रहे जहां हजारों रुपए रिश्तत मिल सकती थी परन्तु दृढ़ आर्य होने के नाते उन्होंने रिश्तत लेना सदैव पाप समझा । पी० हैरिसन जिन्होंने इलाहाबाद में मजिस्ट्रेट की हैसियत से स्वा० अलाराम सागर संन्यासी से इस बात के लिए जमानत ली थी कि वह भविष्य में आर्य समाज पर राजद्रोह का इल्जाम न लगाने पावें मुरादाबाद के कलक्टर थे । मुंशी नारायण प्रसाद उन्हीं की पेशी में काम किया करते थे । उन्होंने जिला छोड़ते समय उनके काम की प्रशंसा

करते हुए अन्त में लिखा था कि मुंशी नारायण प्रसाद ईमानदारी के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं। मुंशी नारायण प्रसाद ने सोचा कि जब उन्होंने कभी प्रजा से वेईमानी करके धन नहीं लिया तो गवर्नमेन्ट से वेईमानी करके धन (पेंशन) क्यों लें ?

आर्य समाजी की पहचान

आर्य समाजस्थ सरकारी कर्मचारी की कार्य कुशलता, कर्तव्य-परायणता के विषय में अमेरिकन विद्वान डेविस के उद्गार ध्यान देने योग्य है। उन्होंने एक जगह कहा और लिखा भी था कि :—

“यदि तुम किसी रेल के स्टेशन पर जाओ और खिड़की में बैठे हुए टिकिट बाबू को देखो और यदि उसकी आंखों से तुम्हें सहानुभूति प्रकट हो, वह तुम्हारा काम शीघ्रता और प्रेम से कर दे और एक दो शिक्षाप्रद बात भी कह दे तो समझ लेना वह आर्य समाजी है।

...

...

...

आर्यकुमार का आदर्श

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी अमर हुतात्मा रामप्रसाद विस्मिल छात्रावस्था में अपने साथी छात्रों के साथ कहीं रेल की यात्रा करके गए। उन सबने टिकिट तीसरे दर्जे का लिया परन्तु यात्रा ड्योढ़े बर्जे में की। गन्तव्य स्टेशन पर उतरकर रामप्रसाद जी को अपना यह व्यवहार वेईमानी का व्यवहार जंचा।

वे सीधे स्टेशन मास्टर के पास गए और उसे यह बात बता दी। इतना ही नहीं, अपने सब साथियों से अधिक किराया वसूल करके स्टेशन मास्टर को सौंप दिया।

आर्य व्यवसायी की साख

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का पूर्व नाम कृपाराम था। जब वह आर्य समाज में प्रविष्ट नहीं हुए थे तब एक घटना ने उन्हें आर्य समाजी बना दिया था। उन्होंने अपनी माता एवं पत्नी को एक बजाज की दूकान से कपड़ा क्रय करने के लिए भेजा। दोनों देवियां भाव ज्ञात करके बिना कपड़ा क्रय किए घर लौट आईं। तीसरे चौथे दिन पं० कृपाराम ने अपने किसी परिचित को उसी दूकान पर उन्हीं कपड़ों का भाव ज्ञात करने के लिए भेजा। उस परिचित ने वापस लौटकर जो भाव बताया वे वही भाव थे जो बजाज ने पंडित जी की माता को बताया थे। इससे पंडित जी बड़े प्रभावित हुए और कपड़ा क्रय करने के लिए माता जी को पुनः भेजकर कह दिया वह आर्य समाजी है उसने झूठ नहीं बोला। उसके यहां से ही कपड़ा क्रय करना। कपड़ा खरीदा जाकर घर पर आया और कृपाराम जी आर्य समाज में प्रविष्ट हो गए।

...

...

...

डिप्टो कलक्टर का काया कल्प

एक बड़े डिप्टी कलक्टर थे। मांस-मदिरा से परहेज नहीं करते थे। एक बार वे अपनी ससुराल के ग्राम में गए। निकटवर्ती एक समाज के अधिकारियों ने जब उनके आने की खबर सुनी तो उन्होंने अपने समाज का उत्सव उन्हीं दिनों में रख लिया। डिप्टी साहब के आ जाने पर वे लोग एक शिष्ट मंडल के रूप में उन्हें आमन्त्रित करने के लिए उनके पास गए और उनसे एक व्याख्यान देने की प्रार्थना की। डिप्टी साहब ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए क्षमा मांगी, परन्तु शिष्ट मंडल ने स्वीकृति प्राप्त करके ही लौटने का निश्चय किया हुआ था। जब उनका अनुरोध अपरिहार्य हो गया और उनकी ससुराल वालों ने भी उन्हें प्रबल प्रेरणा की तो वे जल्से में सम्मिलित होने और व्याख्यान देने के लिए

राजी हो गए। नियत दिन नियत समय पर वह उत्सव पंडाल में पहुंचे। उपस्थित जन समूह ने करतल ध्वनि से उनका अभिनव स्वागत किया। सभा प्रधान की घोषणा और आह्वान पर डिंटी साहब मंच पर चढ़े और कहा, “भाइयो ! मैं शराब पीता और मांस खाता हूँ। अतः इस पवित्र वेदी पर चढ़ने का अधिकारी नहीं हूँ। मैंने आपके मन्त्री व प्रधान से अपनी विवशता जाहिर कर दी थी परन्तु उनके प्रबल अनुरोध को मैं टाल नहीं सका अतः यहाँ उपस्थित हो गया। बस, मेरा व्याख्यान यही है कि मैं आज से मदिरा मांस का परित्याग करने का व्रत लेता हूँ।” यह कहकर वह मंच से उतर गए। सभा में सन्नाटा छा गया। वह सीधे अपने श्वसुर के घर पहुंचे और उनके स्वागतार्थ शराब की जो बोतलें मंगाई गई थीं उन्हें उन्होंने फिकवा दिया। और निरामिष भोजन तैयार करने का आदेश दे दिया। डिंटी साहब ने आजन्म अपने इस व्रत की रक्षा की और आर्य समाज की जो सेवा बन पड़ी की।

डाकू का हृदय परिवर्तन

वह मुजफ्फर नगर का कुख्यात डाकू था। उसके विरुद्ध कत्ल और डाकेजनी के कई केस अदालतों में चल रहे थे। वह फरार था। उसकी गिरफ्तारी के निमित्त कई हजार रुपए के इनाम की घोषणा की जा चुकी थी। दैवयोग से उसे एक रात को एक आर्य संन्यासी का व्याख्यान सुनने का अवसर मिल गया जिसमें चोरी-डकैती की भी निन्दा की गई थी। व्याख्यान का सुनना था कि उसका दिल बदल गया। दूसरे दिन वह पिस्तौल से लैस हुआ अंग्रेज कलक्टर के बंगले पर पहुंचा। उसे अनायास अपने पास आया देखकर कलक्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, “क्या तुम...हो?”

उत्तर—जी हां मैं...हूँ।

प्रश्न—तुम स्वयं ही मेरे पास क्योंकर आ गए ?

उत्तर—जनाब ! मुझे अपने कृत्यों और इस पेशे पर दुःख है ?

प्रश्न—तुम्हारा हृदय कैसे पलटा ?

उत्तर—एक आर्य समाजी संन्यासी का लैक्चर सुनने पर ।

प्रश्न—ओह ! यह बात है तो तुम्हें माफ कराया जाएगा । पर हाँ, आइन्दे तो इस काम को नहीं करोगे ?

उत्तर—जनाब यह सच्चे दिल का पश्चात्ताप है । इस काम को करना तो दूर कमी सोचूंगा भी नहीं ?

कलक्टर ने जाबते की कार्यवाही करने के बाद उस डाकू को क्षमा-दान दिया ।

पाँच हजार वर्ष के सोने वालो जागो

वह चौकीदार था, नाम था निहालसिंह, विजनौर में तैनात था । वह रात को पहरा देते हुए आवाज लगाया करता था 'पाँच हजार वर्ष के सोने वालो जागो' लोगों को यह आवाज विचित्र लगती और जो भी इसका कारण और मतलब पूछता उससे वह चौकीदार १।) लेकर कह देता कि ७-८ दिन के बाद इसका मतलब ज्ञात कराया जायगा ।

श्री निहाल सिंह वैदिक प्रेस अजमेर को वह पैसा भेजकर सत्यार्थ प्रकाश की कापी पैसा देने वालों के पास सीधे भिजवा दिया करते थे । इस प्रकार उन्होंने सैकड़ों सत्यार्थ प्रकाश मंगवाकर लोगों को दिए । उन्हें आर्य समाज की ओर आकृष्ट किया और आर्य समाज विजनौर की स्थापना कराई ।

सामाजिक कष्टों के शिकार

मोखासिंह आर्य समाज नगीना (विजनौर) के समासद और गोरक्षिणी समा के उपदेशक थे। जिस मकान में वह रहते थे उस मकान से इनके पौराणिक रिश्तेदारों ने बाहर निकलवा दिया परन्तु उन्होंने आर्य समाज में आना जाना न छोड़ा। इसके अलावा भी पौराणिकों ने बहुत से कष्ट दिए जिनका वर्णन बड़ा रोमांचकारी है। परन्तु इस वीर ने पौराणिकों का काबू अपने ऊपर न चलने दिया। परन्तु एक विशेष कष्ट उन दुष्टों ने इस वीर को दिया। इनके सात वर्ष के पुत्र को किसी बहाने से पेड़ों में जहर देकर मार डाला। पुत्र वियोग का दारुण दुःख तो उन्हें हुआ परन्तु उन्होंने अपनी दृढ़ता को न छोड़ा और इसका कुछ ख्याल न किया। बेटे को मरे आठ दिन भी न हुए थे कि रामलीला में लगभग तीस हजार के जन समूह के समक्ष उन्होंने आर्य समाज और गोरक्षा पर व्याख्यान दिया। गोरक्षा का इनका विशेष कार्य हरिद्वार में हुआ जहां यजमान पंडों को गऊ दान में देते थे। वे आवारा घूमती या पंडे लोग उन्हें ज्वालापुर के कसाइयों के हाथ बेच देते थे। पंडे इस कार्य में कोई बुराई न समझते थे और मोखासिंह के गोरक्षा के यत्नों का न केवल मजाक ही उड़ाते वरन् उन्हें अपमानित व तंग करने में भी न चूकते थे। उनके यत्न से गौशालाएं स्थापित की गईं और दान की उन गऊओं की रक्षा की गई।”

दृढ़ता

कपूरथला राज्यान्तर्गत पं० कृपाराम ने जो आ० स० फीरोजपुर के सदस्य थे अपनी पुत्री का विवाह वैदिक रीति से करने का निश्चय

किया। पं० कृपाराम दो पंडितों को साथ लेकर ला० मुंशीराम प्लीडर जालंधर (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द) के पास गए जो विवाह संस्कार में सम्मिलित होने के लिए अपने कई आर्य समाजी साथियों के साथ मुलतानपुर गए हुए थे। कृपाराम जी उनकी तसल्ली विवाह कर्म के बारे में कराना चाहते थे, क्योंकि जनता में मशहूर हो रहा था कि आर्य सिर्फ हमाल बदल करके विवाह कर देते हैं। जब पंडितों ने संस्कार विधि की क्रिया सुनी तो अपनी पद्धति से मिलाकर उसे बहुत उत्तम बताया। शहर में धूम मची हुई थी। स्त्रियां वैदिक विधि का विवाह देखने के लिए लालायित थीं। रात के १० बजे २१-४-१८८६ सब भाई बन्धु कपूरथला समाज के कुछ सदस्यों के साथ पं० कृपाराम के स्थान पर पहुंचे और पं० जी ने यज्ञशाला की रचना शुरू की और उसे खूब सजाया गया। यज्ञ का सब सामान तैयार हो जाने पर वर को बुलाने के लिए आदमी भेजा गया। उस समय गिरधारी नाम का एक ब्राह्मण राक्षस वृत्ति वाला शराब के नशे में चूर लंगोट बांधकर आ पहुंचा। नगर का एक बड़ा गिरोह उसके साथ था। बाहर धर्म पर जोन देने वाले धर्म सभा के संरक्षक के नौकर गिरधारी ब्राह्मण की मुसलमान वेश्या शराब के नशे में धुत अपने प्रेमी को बुला रही थी। उस राक्षस ने ठीक वैसा ही पिशाच कर्म किया जैसा कि विश्वामित्र के यज्ञ में मारीच असुर ने किया था। पं० कृपाराम ने पुलिस की मदद मांगी कि गिरधारी के अनुचित हस्तक्षेप को रोकने के लिए उसे गिरफ्तार करे। लेकिन पुलिस का सारजेन्ट मय सिपाहियों के टलकर बाहर निकल गया। उसकी गतिविधि से मालूम होता था कि पुलिस पहले ही किसी बड़े राज्याधिकारी की सिखाई-पढ़ाई है। सारजेन्ट ने सांफ जवाब दे दिया कि जब कोई कत्ल होगा तब हम दस्तन्दाजी करेंगे। करीब दो बजे गिरधारी खुद व खुद चला गया। अब लड़के वालों की यह कैफियत कि वे अक्रड़ गए। लड़के के चाचा को कुछ ऐसी शह मिली कि वह वैदिक रीति के विवाह से बिल्कुल इन्कारी हो गए और बहाना किया

कि बिना नाई हम हरगिज न जाएंगे। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि नाई, धीवर तथा अन्य लोग भी पं० कृपाराम का साथ छोड़ गए थे। पं० कृपाराम खुद बुलाने गये। लेकिन लड़के के चाचा ने नवग्रह पूजन का हठ किया। पं० कृपाराम ने कहा “यदि नवग्रहों की पूजा पर आपको इसरार (हठ) है तो मैं हरगिज शादी न करूंगा।” यह तो मामूली वयान है लेकिन पं० कृपाराम की शान्ति और कुर्वानी का वे अन्दाजा लगा सकते हैं जिन्होंने उनको गिरधारी की गालियों का सहज स्वभाव से जवाब देते और वावजूद अपनी माता और बहिन के करुण क्रन्दन के अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने में दृढ़ देखा था। उस समय ठीक दृश्य एक सच्चे आर्य की जिन्दगी का दिखाई देता था। जब पांच वजने का वक्त हुआ, आर्य भाई लाचार वापस आ गये। दिन चढ़ने पर कुछ और ही गुल खिला हुआ था। लड़के वाले चलने को तैयार और शहर वाले उन्हें रोकने पर आमादा। लेकिन फिर भी पं० कृपाराम ने हिम्मत नहीं हारी। कुल जेवर उनके खाना कर दिए। तब तो शहर के ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने आकर जबरदस्ती पं० कृपाराम के मकान पर अपना कब्जा कर लिया। सच है, जब घर में फूट पड़ जाय तो इन्सान क्या कर सकता है। पं० कृपाराम की माता और बहिन विरोधियों को बुला करके उनके दूसरे भाई के जरिए से शादी कराने पर तुल गई। परन्तु पं० कृपाराम ने अपने हाथ से न कोई पूजन किया और न कन्यादान किया। अपने सत्य को कायम रखा। विवाह संस्कार के मध्य एक और ऐसी घटना हुई कि जिसने स्पष्ट कर दिया कि सत्य का बीज जहाँ बोया जाय वह जरूर असर पैदा करता है। पं० कृपाराम की पुत्री ने जिसका विवाह हो रहा था नव ग्रह पूजन से साफ इन्कार कर दिया। पं० कृपाराम जी को तो अलहदा कर दिया गया था, लेकिन अब विरादरी की अकल भी चक्कर में आ गई। अगर लड़की को भी इलहिदा कर देते तो विवाह किसके साथ होता। लाचार पौराणिकों ने फतवा दे दिया कि यदि लड़की नवग्रह पूजन न करे तो कोई हर्ज

नहीं है। इसके बाद कुल कार्यवाही वाकायदा होती रही। विरादरी ने हजार तरह धोखे से पं० कृष्णाराम जी को इस कार्यवाही में शरीक करना चाहा लेकिन उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा को न तोड़ा और न वह किसी काम में शरीक हुए।”

...

...

...

अन्तर्जातीय विवाह का विरोध

आर्य समाज के प्रधान के ज्येष्ठ पुत्र ने जिसकी शिक्षा गुरुकुल वृन्दावन में हुई थी अपना रिश्ता महात्मा नारायण स्वामी जी तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की सहमति से येवला (नासिक) की जानकी वाई नामक एक कन्या के साथ जो कन्या गुरुकुल हाथरस में शिक्षा प्राप्त कर रही थी तय किया। लड़का जन्मना ब्राह्मण और उत्तर प्रदेश का निवासी था और कन्या वैश्य कुलोत्पन्ना गुजरात प्रान्त की थी। परिवार और विरादरी के लोगों ने इसका घोर विरोध किया। विरोध की उस आंधी में माता-पिता के पैरों का उखड़ जाना अप्रत्याशित न था। उन्होंने पुत्र को इस रिश्ते को छोड़ देने का परामर्श दिया परन्तु लड़का तैयार न हुआ। माता-पिता के आशीर्वाद के साथ मथुरा के आर्य समाज में एक भारी जनसमूह की उपस्थिति में जिसमें महात्मा नारायण स्वामी जी, श्री स्व. पं० घासीराम जी, श्री स्व. मदन मोहन सेठ जी, कुंवर हुक्मसिंह जी आदि-आदि उच्च कोटि के नेता सम्मिलित थे १९१६ में विवाह संस्कार हुआ। पिता तथा घर के अन्य सदस्यों का परिवार के अन्य जनों तथा विरादरी ने वहिष्कार कर दिया। कुछ समय के बाद विरादरी ने पिता के पास यह शर्त भिजवाई कि “यदि लड़के तथा पुत्र वधू से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाए तो विरादरी में पुनः वापस लिए जा सकते हो।” लड़के के पिता ने इस शर्त को ठुकराते हुए कहला भेजा, “पिता पुत्र से मानसिक रूप से कभी भी पृथक्

नहीं हो सकता। वे दोनों मेरे घर में न आएँ यह न संभव है और न उचित ही है। रही बच्चों की शादियों की बात, यदि वे योग्य होंगे तो उनकी शादियाँ रुक न सकेंगी। यदि वे अयोग्य हुए तो उनकी शादी करना भूल होगी।”

कालान्तर में हवा बदली। उनके बच्चों की शादियाँ अच्छे कुलीन एवं शिक्षित घरों में हुईं। पुत्र और पुत्र वधू घर और समाज में घुल-मिल गए।

इन प्रधान जी का नाम पं० लालमणि शर्मा (सिवहारा, बिजनौर) लड़के का नाम पं० शंकरदेव पाठक (सत्यार्थ प्रकाश के संस्कृत अनुवादक, (श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक के बड़े भाई) था।

श्रीमती जानकी देवी के दोनों बड़े भाई गुरुकुल वृन्दावन में पढ़े थे। एक का नाम सत्यव्रत तथा दूसरे का नाम मेधाव्रत कविरत्न था (जिन्होंने दयानन्द दिग्विजय, कुमुदिनी चन्द्र दयानन्द लहरी आदि श्रेष्ठ रचनाएँ समाज को दीं)। इस परिवार को भी विरादरी ने कड़ा दंड दिया था परन्तु यह भी इस दंड के प्रभाव से ऊपर रहा।

म० रामलाल

म० रामलाल आर्य समाज बहादुरावाद के उपमन्त्री और स्कूल टीचर थे। आर्य समाज और शुद्धि का कार्य बड़े उत्साह से करते थे। ईसाई मिशनरियों ने छावनी के एक ईसाई कप्तान कर्नल गफ से शिकायत की। कर्नल गफ ने आर्य समाज मन्दिर पर आक्रमण करके ओ३म् का झंडा उतार कर फाड़ डाला (नवम्बर १९३०) तथा म० रामलाल को आर्य समाज का काम छोड़ देने की चेतावनी दी। म० रामलाल के इन्कार करने पर उन्हें बुरी तरह से पीटा। उनके शरीर पर चूना मल-कर नहर में गोने दिए। इस घटना से आर्य जगत् में सनसनी फैल गई। सार्वदेशिक सभा ने मामला अपने हाथ में लिया। राज्याधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करके कर्नल को समुचित सजा देने की मांग की गई।

उत्तर प्रदेश की गवर्नमेंट ने रक्षा विभाग के सहयोग से मामला मुलझाया । कर्नल गफ़ ने म० रामलाल से लिखित क्षमा मांगी और २००६० मुआवजा दिया, इतना ही नहीं अपने खर्च से ओ३म् का झंडा वनवाकर दिया जो उत्तर प्रदेश के चीफ सेक्रेटरी श्री कुंवर जगदीश प्रसाद जी ने महात्मा नारायण स्वामी जी को भेंट करके प्रार्थना की कि वह उसे प्रशासन की ओर से लगा दें ।

आर्य समाज के दीवाने

आर्य समाज जालंधर का नगर कीर्तन था, बड़े जोर का नगर कीर्तन था । बीच-बीच में ला० देवराज आदि बोलते जाते थे । पर कोई स्टूल या कुर्सी साथ ले जाना भूल गये । दिक्कत होने लगी । तब भक्तराम बैरिस्टर सामने आये और झुक गए और बोले, मेरी पीठ पर चढ़कर बोलो । ऐसा ही किया गया । बैरिस्टर भक्तराम इस प्रकार वक्ताओं को एक मील तक बराबर अपनी पीठ पर बुलवाते रहे और इस कार्य में अपना गौरव अनुभव करते रहे ।

लाहौर में

वच्छो वाली और अनारकली आर्य समाजों के नगर कीर्तन बड़े जोर से निकला करते थे । उस समय महात्मा मुंशीराम और महात्मा हंसराज भण्डली बांधकर स्वयं भजन गाते थे और सैकड़ों आर्यों की टोलियां भजन गाते-गाते चलती थीं ।

आर्य मुसाफिर पं० लेखराम जी

एक उत्सव में पं० लेखराम जी का व्याख्यान था । व्याख्यान के पूर्व पंडित जी के पेट में बड़ा दर्द उठा । उधर पंडित जी का भाषण सुनने के लिए वच्छो वाली समाज में जनता उमड़ पड़ी । लोगों ने पंडित जी के

पेट में दर्द की बात जब सुनी तब निराश होकर लौटने लगे । पंडित जी को इस बात का पता चला कि लोग निराश होकर लौट रहे हैं तो एक-दम खड़े हो गए, प्लेटफार्म पर पहुंचे और “भाइयो मैं आ गया हूँ, जरूर बोलूंगा” कहकर भाषण प्रारम्भ किया और आश्चर्य और परमाश्चर्य कि बायें हाथ से पेट को दबाकर कोई ३॥ घंटे तक धारा प्रवाह बोलते रहे और जब उनका व्याख्यान समाप्त हुआ तब उनका पेट दर्द भी बन्द हो गया ।

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

बुखार में खाट पर पड़े हुए हैं । लगभग १०४॥ डिग्री बुखार चढ़ा हुआ और पादरी ज्वालासिंह आर्य समाज के जलसे में आ धमके । आर्यों में खलबली पड़ गई, अब क्या होगा, कौन उत्तर देगा । स्वामी दर्शनानन्द जी विजली की तरह उठे और प्लेटफार्म पर जा खड़े हुए और पादरी ज्वालासिंह को ललकारा । ३॥ घंटे तक शास्त्रार्थ रहा । ऐसे शास्त्रार्थ भी किसी ने देखे होंगे ?

एक बार

इसी प्रकार गांव में शास्त्रार्थ करने का अवसर आया । शायद सहारनपुर के एक गांव में । पुस्तकें तो शहर समाज में थीं, इतनी पुस्तकों को दस मील तक कौन ढोवे । स्वामी दर्शनानन्द उठे और जितनी पुस्तकें वे उठा सकते थे, सिर पर संभाल सकते थे, उठाई और गांव की ओर चल पड़े । इस बात को देखकर आर्य लोग भी जुट गए और पुस्तकें सिर पर लेकर ग्राम में पहुंचे । एक विचित्र उत्साह था । शास्त्रार्थ सुनने के लिए ग्राम में दस सहस्र लोग पहुंचे । बड़े जोर का शास्त्रार्थ रहा ।

पं नन्दकिशोर देव शर्मा

स्व० पं० नन्दकिशोर देव शर्मा महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा

संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) को कौन भुला सकता है। वे अपने हाथ से ही अपना भोजन बनाया करते थे। महाविद्यालय ज्वालापुर के महोत्सव पर ईसाइयों के साथ शास्त्रार्थ रखा गया था। ईसाई पादरी श्री तिवारी जरा विलम्ब से पहुँचे पर तत्काल शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पंडित जी भोजन बना रहे थे इसलिए किसी की हिम्मत न पड़ी कि उनसे कोई कहता कि भोजन बनाना छोड़ कर सभा में चलें। इसलिए पादरी साहब के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए रुड़की के प्रसिद्ध मास्टर हरिद्वारीसिंह तथा महाविद्यालय के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता को खड़ा किया गया। मास्टर जी ईसाई साहित्य के पंडित थे और वे योग्यता पूर्वक उत्तर देते जा रहे थे। परन्तु जनता उनके उत्तरों से सन्तुष्ट न हुई। वह तो चाहती थी कि पादरी तिवारी जी को (जो मुरादाबाद से आये थे) खूब रगड़ दिया जाये। किसी मुंहफट आर्य ने जाकर पं० नन्दकिशोर जी से कहा कि 'क्या पूरी तल रहे हो उधर आर्य समाज को नीचा देखना पड़ रहा है चलिए। पंडित जी एकदम उठे और आटे से सने सनाए हाथों से ही सभा के मंच पर जा पहुँचे और पादरी को ऐसा छकाया, ऐसा छकाया कि जनता मुग्ध हो गई। सभा में जाते समय एक शिष्य से कह गये कि रसोई को देखते रहो। मैं अभी आ रहा हूँ। शिष्य ने कहा, यह जो पूरियां कढ़ाई में डाल रखी हैं ये जलने लगी तो क्या करूँ।' पंडित जी मुस्कराकर बोले कि तुम छूना छुवाना नहीं, खाली देखते रहो मैं अभी आ रहा हूँ। शिष्य का छुटकारा तब हुआ जब पंडित जी पादरी तिवारी की रगड़ी पट्टी कर आए। आते ही शिष्य से पूछा कि तुमने छूआ तो नहीं? जब शिष्य ने कहा कि नहीं! तब स्वयं पूरियां तलने लगे।

जिन्होंने पंडित जी को आटे से सने सनाए हाथ मंच पर देखा उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा।

ऐसे ही खुर्जा (बुलन्दशहर) में एक प्रतिभा सम्पन्न प्रसिद्ध दार्शनिक स्वर्गीय पंडित चण्डीप्रसाद जी न्यायोपाध्याय के साथ शास्त्रार्थ में किया।

वस्तुतः आर्य समाज की नींव ही ऐसे लोगों ने, महारथियों ने दृढ़ की ।

ऐसे ही स्व० पंडित गणपति शर्मा ने महाविद्यालय ज्वालापुर में रेवरेण्ड फ्रेके के शास्त्रार्थ में और काश्मीर में पादरी जानसन् को परास्त करने में अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया । महाराज कश्मीर ने इनसे पूछा कि क्या आप आर्य समाजी हैं ? पंडित जी ने मुस्कराकर कहा कि “महाराज हम सब इस आर्यावर्त देश के निवासी ही आर्य हैं, आप भी आर्य हैं, मैं भी आर्य हूँ” । महाराज बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि खेद है कि पं० गणपति जैसे पंडित पौराणिकों में नहीं हैं । आज मेरे काश्मीर में गणपति न होते तो मेरा काश्मीर शास्त्रार्थ में जानसन से हार ही खा जाता—

ऐसे ही शास्त्रार्थ महारथियों ने आर्य समाज की नींव को दृढ़ किया ।

स्व० पंडित मुरारीलाल शर्मा

सिकन्दराबाद के स्व० शर्मा जी को कौन नहीं जानता । उनको भुला भी कौन सकता है ? संस्कृत कम ही जानते थे पर पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण प्रतिभा इतनी तीव्र थी कि अपने समय में ईसाई, मुसलमान तथा पौराणिकों से सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और जनता में आर्य समाज का प्रचार करना इनका ही काम था ।

॥ ओ३म् ॥

आर्य-समाज

रामगोपाल शालवाले

(यह ट्रेक्ट अत्यन्त लोकप्रिय बना हुआ है)

॥ ५२५ ॥

आर्य-संस्कृत

आर्य-संस्कृत

(११५५) (११५५) (११५५)

आर्य समाज

संवत् १९३२ विक्रमी चैत्र शुक्ला १ शनिवार को बम्बई नगर के गिरगांव मुहल्ले में डा० माणिकचन्द की वाटिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती के कर कमलों द्वारा प्रथम आर्य समाज की स्थापना की गई।

वेद धर्म-प्रचारक सभा की नींव रखी गई। कुरीतियों से जकड़ी हुई आर्य जाति के सुधार का कल्पतरु आरोपित किया गया। भारतवर्ष में नूतन जीवन जागृति उत्पन्न करने का सफल साधन उपस्थित किया गया। आर्य जाति की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए धर्म-प्रचारकों की वेष-भूषा में सैनिक संगठन का प्रादुर्भाव हुआ। गोरे अंग्रेजों की प्रभुता के वक्षस्थल पर गहरी चोट करने तथा अपने देश में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए क्रान्तदर्शी दयानन्द ने धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्रान्तिकारियों की अद्वितीय टोली का निर्माण किया।

पतनोन्मुख भारत

आर्य समाज की स्थापना से पहले भारतवर्ष विशेषकर हिन्दू जाति अनेक प्रकार की कुरीतियों में पड़ी जर्जरीभूत हो रही थी। ७०० वर्ष के मुसलमानी राज्य एवं १७५ वर्ष की अंग्रेजी गुलामी के कारण अपना धर्म देश तथा जातीय गौरव अत्यन्त हीन अवस्था को प्राप्त हो चुका था, तेजी के साथ हिन्दू मुसलमान हो रहे थे, समूचे भारत में प्रतिदिन १४४ हिन्दू राम और कृष्ण के पवित्र धर्म को त्याग कर मुसलमान हो जाते थे। ईसाई पादरी बड़ी शीघ्रता के साथ लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष चोटीधारी हिन्दुओं को ईसा की भेड़ों में शामिल कर लिया

करते थे यहां तक कि एक प्रसिद्ध ईसाई पादरी ने काशी के महामहोपाध्याय पं० नीलकंठ शास्त्री को शास्त्रार्थ में हराकर ईसाई बना लिया। उनके ईसाई बनने के अनन्तर देश के अनगिनत ब्राह्मणों को ईसाई बनाया गया। सरकारी सहायता से करोड़ों रुपया खर्च करके दासता की कड़ियों को पक्का करने के निमित्त भारतवासियों के हृदयों को भारतीयता से शून्य कर केले अंग्रेजों का निर्माण करने के लिए लार्ड मेकाले की स्कीम के अनुसार सेकड़ों स्कूल कालेज और गिरजाघर खोल कर हिन्दू जाति के बालकों की अधःपतन रूपी वध शालाएं तैयार की गईं।

बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाहों की महापतनशालाएं विधवाओं की संख्या बढ़ने का कारण बन रही थीं और क्रमशः २५ हजार की संख्या में प्रतिवर्ष मुसलमानों के घर बसाने का कारण बनती थीं। किसी के हाथ का छुआ अन्न खा लेने मात्र से हजारों हिन्दुओं को अपने भाई बन्धुओं द्वारा ही जाति बहिष्कार करके मुसलमान ईसाई बनने के लिए विवश किया जाता था।

मूर्तिपूजा, मृतक-श्राद्ध, अवतारवाद एवं गुरुद्वय के मिथ्या विश्वास, ईश्वर पूजा के स्थान पर जड़ पूजा, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि मत मतान्तरों की वृद्धि, जातीय संगठन के सूत्रों को तोड़-तोड़ कर हिन्दू धर्म को कच्चे सूत के धागे की उपमा दिलवाने का कारण बन रहे थे। भैरों के नाम पर शराव, देवी के नाम पर मूक पशुओं का वध, शिव के नाम पर भंग, महात्मा कृष्ण जैसे अद्वितीय चरित्र-नायक का नाम लेकर भागवत की कल्पित गाथाओं के आधार पर रासलीला तथा चरित्र-हीनता के दृश्य अपने पूर्व पुरखाओं की गौरव गरिमा को मिट्टी में मिलाने का कारण बन देश में भयानक भ्रष्टाचार फैला रहे थे।

मुसलमान और अंग्रेजी सरकार के एजेन्ट ईसाई पादरियों की ओर से, सीता का छिनाला रंगीला कृष्ण जैसे २३४ छोटे-बड़े गन्दे ट्रैक्ट प्रकाशित हो चुके थे किन्तु गाढ़-निद्रा में सोई हुई हिन्दू जाति में कोई

इन घृणित आक्षेपों का उत्तर देने वाला न था। मानवीय मार्ग के महान् स्रोत भगवान् वेद को तो ऋषि सन्तान सर्वथा भूल चुकी थी।

ऐसी महान् गम्भीर एवं भयानक परिस्थिति में भारतवर्ष तथा आर्य जाति विदेशी मृत्यु का ग्रास बनकर सदैव के लिए प्राचीन पूर्वजों की पवित्र धरोहर अपना धर्म और संस्कृति को बाहरी रंग में रंगने की मूर्खतापूर्ण तैयारी कर रही थी।

महर्षि दयानन्द ने ऐसी भयानक स्थिति में जब अन्दर और बाहर के शत्रु हर प्रकार से आर्य जाति को पूर्ण रूप से नष्ट करने की योजना बना चुके थे, आन्तरिक कुरीतियों तथा बाहरी आक्रमणों के बचाव के लिए लुप्तप्राय प्राचीन वैदिक धर्म के उत्थान के लिये 'आर्य समाज' की स्थापना की।

आर्य समाज ने इस सम्बन्ध में कहां तक सफलता प्राप्त की, निम्न सूत्र रूप से लिखे वाक्यों पर ध्यान दीजिये। आर्य वीरों ने किस प्रकार चौमुखी लड़ाई लड़ी, इतिहास इसका साक्षी है।

(१) सर्वप्रथम आर्य समाज के प्रवर्तक ने ही सन् १८७५ में सत्यार्थप्रकाश द्वारा अपने देश में अपने राज्य की घोषणा कर स्वराज्य शब्द द्वारा विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने का प्रबल प्रयास किया था। भारतीय तत्व ज्ञान तथा परम्परा की रक्षा तथा विदेशी विचार-धारा का उन्मूलन ही आर्य समाज का प्रधान ध्येय रहा। इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में एक अंग्रेज ह्यूम महोदय द्वारा भारत में अंग्रेजी शासन को बलवान बनाये रखने के लिये हुई थी। उस समय पूर्ण स्वराज्य का स्वप्न तक कांग्रेस के सामने नहीं था। केवल कुछ साधारण सुधार और पदों की मांग की जा रही थी।

(२) ईसाई मुसलमानों से हिन्दू जाति की रक्षा के लिये निमित्त शुद्धि आन्दोलन का श्रीगणेश कर आर्य समाज के नेता अमर हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भारत भर में फैले हुए इस्लाम और ईसाइयत का मुंह मोड़

दिया था ।

आर्य समाज के विरोधी भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते हैं कि आर्य समाज ने ही मुसलमान व ईसाई प्रचारकों से प्रबल शास्त्रार्थ-समर में विजय पाकर धर्म और जाति की भारी सेवा की है ।

अपने निधन से २१ दिन पूर्व सरदार पटेल ने दिल्ली के रामलीला ग्राउण्ड में ऋषि निर्वाणोत्सव के दिन भाषण करते हुए कहा था कि 'आर्य समाज ने केवल हिन्दू से मुसलमान बनने वालों को ही वापस नहीं लिया, अपितु जन्म के मुस्लिम और ईसाइयों को भी आर्य धर्म की दीक्षा देकर मूल को व्याज समेत लेने का शानदार काम किया है । भारत दयानन्द के अहसान भुला नहीं सकता । बूढ़े सरदार ने आज की समस्या का हल करने के लिए भी आर्य समाज को प्रेरणा दी थी ।

(३) छूतछात का निवारण, अछूतोद्धार के प्रबल आन्दोलन का सूत्रपात करके आर्य समाज ने जाति के कटते हुए पैरों की सुरक्षा कर हिन्दू जाति को लंगड़ा होने से बचा लिया । मौ० मुहम्मद अली और ख्वाजा हुसन निजामी के ७ करोड़ अछूतों को बांट लेने अथवा मुस्लिम बना लेने के घृणित स्वप्नों पर भारी तुषारपात किया । इस सम्बन्ध में कितने बलिदान हुए, कितने आर्य वीरों को जाति बहिष्कार के दुःख उठाने पड़े—यह तो, तत्कालीन इतिहास के विद्यार्थी ही जानते हैं । 'यथेमा वाच कल्याणी' का वैदिक नारा लगाकर स्वामी दयानन्द ने चारों वर्णों को समान रूप से वेदाधिकार देने की पुनीत घोषणा की थी ।

(४) भगवान कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानने वालों ने भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराणों में अनेकों चरित्र सम्बन्धी घृणित लांछन लगाकर महाभारत के चरित्र नायक को अपनों और परायों की दृष्टि में इतना गिरा रखा था जिसको महर्षि दयानन्द सहन नहीं कर सके । इस प्रकार के लांछनों का निराकरण करते हुए महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं :—

“देखो श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है । उनका

गुण कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त किया हो ऐसा नहीं लिखा, और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। यह भागवत न होती तो श्रीकृष्ण जी सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?”

अंग्रेजी सरकार का कोप

अंग्रेजी सरकार के एजेन्ट भी आर्य समाज की गतिविधि से अपरिचित न थे। किसी न किसी प्रकार से वे जागृति के इस आन्दोलन का दमन करने की तैयारी कर रहे थे। सर्वप्रथम पटियाला नरेश जो भारत में अंग्रेजों का प्रधान पिटू था आर्य समाज के दमन के लिये चुना गया।

रातों-रात पटियाला के ७० आर्य वीरों को राजद्रोह का आरोप लगा कर गिरफ्तार कर लिया गया। इसी प्रकार धौलपुर रियासत में आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं पर अभियोग लगाकर मुकद्दमे चलाये गये। इलाहाबाद हाईकोर्ट में आर्याभिविनय के चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने के प्रार्थना मन्त्रों पर आपत्ति उठाकर आर्य समाज को अदालतों में घसीटा गया। ला० लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह देवता स्वरूप भाई परमानन्द आदि अनेकों आर्य कार्यकर्त्ताओं को देश निकाला तथा आजन्म कारावास की घोर यातनाएं दी गईं। ऐसी परिस्थिति में आर्य वीरों ने ‘ओ३म् वन्दे मातरम् पार्टी’ नामक क्रान्तिकारी दल की स्थापना कर दी।

क्रान्तिकारियों के परमगुरु श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा थे जो स्वामी दयानन्द के प्रथम कोटि के शिष्यों में से एक थे जिन्हें छात्रवृत्ति दिलाकर इंग्लैंड भेजा गया, जिनके प्रयत्नों से ही विदेशों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन हो सका, जिनके हजारों शिष्यों ने भारत में क्रान्तिकारियों का अद्वितीय संगठन स्थापित कर रखा था जिनके प्रधान शिष्य श्री दामोदर सावरकर बड़े गौरवपूर्ण शब्दों में अपने आपको स्वामी दयानन्द का पटशिष्य कहते रहे। इसी प्रकार काकोरी केस के

अभियुक्त श्री रामप्रसाद विस्मिल, श्री मदनलाल ढींगरा, श्री गेंदालाल दीक्षित, श्री रोशनसिंह आर्य सरदार भगतसिंह आदि अनेकों आर्य युवकों ने सशस्त्र क्रान्ति कर विदेशी सत्ता से भारत को मुक्त कराने के लिये प्रसन्नता पूर्वक फांसी के तख्तों का स्वागत किया। सरदार भगतसिंह ने अपने चचा सरदार अजीतसिंह की भांति विधि पूर्वक श्री पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति से यज्ञोपवीत एवं गायत्री मन्त्र की दीक्षा ली थी।

इस प्रकार अंग्रेजी प्रभुता को नीचा दिखाने का सर्वप्रथम कार्यक्रम आर्य समाज द्वारा ही प्रारम्भ किया गया।

विदेशी शिक्षा का बहिष्कार

ईसाई पादरी शिक्षा के नाम पर भारतीय शिक्षित युवकों को धड़ा-धड़ ईसाई बना रहे थे। सरकारी खजाने तथा विदेशों से करोड़ों रुपयों की सहायता शिक्षा के नाम पर ईसाई मिशन को मिल रही थी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने अपना घरबार त्यागकर गंगा तट पर गुरुकुल विश्वविद्यालय के नाम से धार्मिक विद्यापीठ की सुस्थापना कर दी। आश्चर्य की बात है कि इतने बड़े विश्वविद्यालय का संचालन अंग्रेजी सरकार से बिना एक पैसे की सहायता के सफलता पूर्वक किया गया। भारतीय युवकों में वैदिक धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था उत्पन्न करने और स्वाभिमान एवं जागृति का वातावरण उपस्थित करने के लिए आर्य समाज के निर्धन कार्यकर्त्ताओं ने इस प्रकार के सैकड़ों स्वतंत्र गुरुकुलों की देश के विभिन्न भागों में स्थापना कर दी। यह गौरव केवल आर्य समाज को ही प्राप्त है कि इन गुरुकुलों के लिये एक पैसा भी विदेशी सरकार से नहीं लिया गया।

ब्रिटिश सरकार ने भी इस महत्वपूर्ण योजना को विफल करने के कई ढंग चलाये। अन्त में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के प्रधान सदस्य श्री रेमजे मैकडानल्ड की प्रधानता में एक जांच कमीशन गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों को राजद्रोहात्मक शिक्षा देने की पड़ताल करने के लिये

इंग्लैंड से भारत भेजा गया ।

उधर स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् ला० लाजपतराय और महात्मा हंसराज ने ईसाई कालिजों का प्रतिकार करने के लिये डी० ए० बी० कालिजों एवं स्कूलों का सारे देश भर में जाल बिछा दिया ।

इन डी० ए० बी० कालिजों ने हिन्दू नवयुवकों को शिक्षा की रीति-नीति से ईसाइयत के भ्रमजाल से निकालने का कैसा शानदार काम किया यह भारत के तत्कालीन इतिहास के वेत्ता जानते हैं ।

“स्त्रीशूद्रौ नाऽधीयताम्” जैसे वेद-विरुद्ध वाक्यों का उन्मूलन करने के लिये भारत भर में सर्वप्रथम जालन्धर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना ला० देवराज जी द्वारा की गई । कन्या गुरुकुल देहरादून, कन्या गुरुकुल सासनी आदि अनेकों कन्या विद्यालयों का संचालन कर आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा का कार्य हजारों वर्षों के पश्चात् किया ।

साम्प्रदायिकता से घोर युद्ध

ईसाई पादरियों, मुसलमान मौलवियों और प्रचारकों तथा पाँगापंथी पण्डितों तथा जैनी आचार्यों ने आर्य समाज की सुधार योजना का भरोसा विरोध किया ।

भारत भर में साम्प्रदायिक संस्थाओं ने दयानन्द के दीर सैनिकों से शास्त्र समर में जूझने की प्रबल तैयारियां कर ली थीं । पंजाब में मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी ने, उधर दक्षिण की मुसलमानी रियासत हैदराबाद के सिद्दीक दीनदार नामक मौलवी ने चन्द्रशेखर अवतार अपने आपको घोषित कर हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का पूर्ण प्रयास किया था, सर आगा खाँ, ख्वाजा हसन निजामी अपनी दीनी फौज को लेकर अछूतों तथा सवर्ण हिन्दुओं को पतित करने की दिल्ली में योजना बना रहे थे । मौलाना मुहम्मदअली स्वराज्य के लोभ में सात करोड़ अछूतों को आधा-आधा बांट लेने के प्रस्ताव कांग्रेस के खुले अधिवेशनों में रखने की हिम्मत कर रहे थे । ऐसी विषम स्थिति में अमरोहा के पं० कानूराम

शास्त्री, कविरत्न अखिलानन्द एवं नवनिर्मित सनातन धर्म सभा के वेतन-भोगी उपदेशक, जैनी जियालाल आदि समयकी चाल को न समझ कर मूर्खतावश आर्य समाज के धार्मिक प्रवाह पर बाँध लगाने में मुसलमान और ईसाई तथा विदेशी शासकों का साथ दे रहे थे ।

तिमिर नाश अथवा ज्ञान का प्रकाश

मिर्जा कादियानी का स्वाभिमान तो धर्मवीर पं० लेखराम ने उनके घर कादियान में जाकर ही चूर-चूर कर दिया था । कादियानी षड्यंत्र-कारियों ने युक्ति का उत्तर छुरे से देकर धर्मवीर को धर्म के इतिहास में भ्रमर बना दिया । स्वामी श्रद्धानन्द ने शुद्धि के सुदर्शन चक्र को चलाकर ख्वाजा हसन निजामी और मौलाना मोहम्मदअली के होश ठिकाने लगा दिये । पुरानी धार्मिक असहिष्णुता की पुनरावृत्ति कर दिल्ली में स्वामी श्रद्धानन्द की छाती पर तीन गोलियां दाग कर ओ३म् के तीन अक्षरों को लिख दिया गया । इसी प्रकार शास्त्र समर के प्रसिद्ध सेनानी श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, पं० मुरारीलाल शर्मा, पं० धर्मभिक्षु पं० रामचन्द्र देहलवी आदि अनेकों आर्य वीरों ने विदेशी धर्मों की भ्रम-मूलक विचारधारा का जिस विद्वता और वीरतापूर्ण ढंग से प्रतिकार किया, उस त्याग, तपस्या और जीवन की बाजी लगा देने का शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता । आर्य समाज के विद्वानों ने आर्यसिद्धान्तों का प्रचार तथा शास्त्रार्थों में विजय प्राप्त कर विरोधी दल पर अपनी विद्या की धाक बिठा दी । हैदराबाद में माननीय पं० रामचन्द्र जी देहलवी के प्रचार से जनता में वह जागृति और चेतना उत्पन्न हुई जिसे देखकर निजाम उसमानअली घबरा गया और हैदराबाद में आर्य समाज पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । पं० रामचन्द्र देहलवी गिरफ्तार कर बन्दी बना लिये गये । इस समाचार से समग्र भारत में असन्तोष की लहर दौड़ गई । निजामी शासन की कूटनीति का प्रतिकार करने के लिए सार्व-देशिक सभा के प्रधान महात्मा नारायण स्वामी जी के नेतृत्व में १८

हजार आर्य वीरों की प्रबल सत्याग्रही सेना ने घोर शारीरिक यातनाएं उठाकर निजामी जेलों को भर दिया। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने जिस योग्यता से आर्य वीरों का सैन्य संचालन किया उसे भुलाया नहीं जा सकता। ३१ आर्य वीरों का बलिदान निजाम की सख्तियों के कारण जेलों में हो गया। इसी प्रकार लोहारू के नवाब ने भी आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं पर क्रूरतापूर्ण आक्रमण कराये। कराची में लीगी मन्त्रिमण्डल ने सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगा दिया जिसके विरुद्ध महात्मा नारायण स्वामी ने दूसरी बार आर्य वीरों को सत्याग्रह के लिये आह्वान किया। मुस्लिम लीगी मन्त्रिमण्डल ने अपनी भूल स्वीकार कर प्रतिबन्ध हटा लेने की घोषणा की। इस प्रकार की अनेक घटनाएं हैं जिनका विस्तार भय से यहां वर्णन नहीं किया जा सकता। सन् १८७९ में प्रथम गोशाला का शिलान्यास रिवाड़ी में श्री स्वामी दयानन्द जी द्वारा किया गया।

आर्य समाज के मन्तव्य

- १—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। अन्य ग्रन्थ वेदानुकूल होने से प्रमाण कोटि में आ सकते हैं।
- २—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, सर्वव्यापक, अनादि, सृष्टिकर्त्ता आदि गुणयुक्त तथा प्रत्येक कल्प में वेद द्वारा ज्ञान का प्रसारक एवं मनुष्यमात्र का उपास्य देव है। सच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म के स्थान में जड़ प्रकृति एवं ज्ञान रहित मूर्तियों की पूजा त्याज्य तथा वेद विरुद्ध हैं।
- ३—जीवित माता-पिता की सेवा में तत्पर रहना धर्म है और मृत पितरों के नाम पर श्राद्ध करना मूर्खता तथा वेद विरुद्ध है।
- ४—ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों नित्य पदार्थ हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का ईश्वर निमित्त कारण और जीवात्मा साधारण कारण है।
- ५—वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से यथा शूद्र विद्या पढ़कर ब्राह्मण

बन सकता है और विद्याविहीन ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। जन्म से नकोई ब्राह्मण होता है न शूद्र। गीता में कहा है :—
चातुर्वर्ण्यम् मया सृष्टिं गुणकर्मविभागशः ।

६—ईश्वर का अवतार नहीं होता, परब्रह्म परिपूर्ण परमात्मा जो नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है—को नाशवान शरीरधारी मानना उसके दिव्य गुणों को न समझना है ।

७—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए । परमात्मा और उसका पवित्र ज्ञान वेद और सृष्टि-क्रम सत्य है इसलिए मानव मात्र को सत्य का धारण और असत्य का त्याग कर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होना चाहिए ।

८—जलों में तीर्थ मानना धर्म के विरुद्ध है । सत्य का आचरण, इन्द्रियों का दमन, परोपकार, दया आदि ही सच्चे तीर्थ हैं ।

९—प्रारब्ध पुरुषार्थ का ही फल है अतः पुरुषार्थ अत्यन्त आवश्यक है ।

१०—आर्य संस्कृति का आदि स्रोत वेद है अतः प्राचीन संस्कृति सभ्यता की रक्षार्थ वेद की रक्षा करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्त्तव्य है ।

११—गोवंश की रक्षा तथा वृद्धि एवं भूल से जो भाई मुसलमान अथवा ईसाई बन गये हैं उनको पुनः शुद्ध कर भारतीय स्वराज्य की नींव सुदृढ़ करना प्रत्येक देशभक्त का प्रथम कर्त्तव्य है ।

प्रवेश पद्धति

श्रीमद्दयानन्द जन्म शताब्दी समा ने जो प्रवेश (शुद्धि) पद्धति विद्वानों से निर्माण कराई है, उसे नीचे लिखते हैं। उसी के अनुसार प्रवेश (शुद्धि) संस्कार करना उचित है। जिस जन्म के वैदिक धर्म को न मानने वाले पुरुष व स्त्री को आर्यसमाज यानी आर्य जाति में प्रवेश करना हो, उसको अग्ने-अपने देश में प्रचलित रीति से हजामत कराके (यदि स्त्री हो तो क्षौर न करावें) खूब भलीभांति स्नान कराके (स्त्री हो तो सिर सहित स्नान करावें) बिल्कुल स्वच्छ वस्त्र पहना के, वेदी (यज्ञ करने के लिये यजमानादि के बैठने का स्थान) पर विठाएं उससे नीचे के मन्त्रों का पाठ कराया जाय और अर्थ भी सुना दिया जाय। ये ही मन्त्र बोल कर आचार्य उसके ऊपर कुछ जल का छीटा भी दे दे। वे मन्त्र ये हैं :—

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि माः ॥

यजु० १६ । ३६ ॥

(देवजनाः) हे सब विद्वान और श्रेष्ठ पुरुषो ! आप (मा) मुझे (पुनन्तु) पवित्र कीजिये। आप (मनसा) मन के साथ (धियः) बुद्धियों या कर्मों को भी अब (पुनन्तु) पवित्र कीजिये (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी अर्थात् पुरुष-स्त्री आपकी कृपा से मुझे (पुनन्तु) पवित्र करें, (जातवेदः) हे ज्ञानी आचार्य ! आप भी (मा) मुझे इन सब के सामने (पुनीहि) पवित्र कीजिये।

पवित्रेण पुनीहि मा, शुक्लेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतून् मनु ॥
यजु० १६ । ४० ॥

(देव) हे शुभगुणयुक्त (अग्ने) हे ज्ञान के प्रकाशकारक आचार्य ! आप (दीद्यत्) देदीप्यमान होते हुए (शुक्लेण) शुक्र (पवित्रेण) पवित्र कर्म से (मा) मुझे (पुनीहि) पवित्र करें। (ऋतून् मनु) और मेरे मंत्रों को ध्यान में रख कर (ऋत्वा) यज्ञकर्म से मुझको पवित्र कीजिये।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु माम् ॥
यजु० ६ । ४१ ॥

(अग्ने) हे ज्ञान के तेजस्वी आचार्य ! (ते) आपकी (अर्चिषि) अग्नि की लपट के तुल्य चमकदार बुद्धि के (अन्तरा) अन्दर (यत्) जो (पवित्र) शुद्ध (ब्रह्म) वेदज्ञान (विततं) फैला या भरा है (तेन) उससे (माम्) मुझे (पुनातु) पवित्र कीजिये अर्थात् उसका उपदेश कीजिये, ताकि अपना आचरण वेदानुकूल कर सकूँ।

पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता सः पुनातु मा ॥
यजु० १६ । ४२ ॥

(पवमानः) वेद का उपदेश करके पवित्र करने वाला (विचर्षणिः) किये तथा न किये हुए सब को जानने वाला है (सः) वह परमात्मा (अद्य) आज (नः) हमें या मुझे (पवित्रेण) हमेशा पवित्र कर्म करने के उपदेश से (पुनातु) पवित्र करे। और (यः) जो (पोता) स्वभाव अर्थात् विना स्वार्थ वाले कारण से ही पवित्र करने वाला है (सः) वह परमात्मा (मा) मुझे पवित्र करे अर्थात् आज मैं सब के सामने परमात्मा से यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी वेदविरुद्ध कार्य न करूंगा, जिससे कि अपवित्र होऊँ।

इन मन्त्रों के पाठ के बाद वेदी में आसन पर बैठकर आचार्य 'शन्नो देवी०' मन्त्र से उसे आचमन करावे और 'यज्ञोपवीत' पहनावे तथा 'गायत्री मन्त्र' का उच्चारण करावे, संक्षेप में अर्थ भी सुना देना उचित है। फिर यथाविधि प्रार्थना मन्त्र, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ और सामान्यप्रकरण के सम्पूर्ण हवन को समाप्त करके पूर्णाहुति "सर्व

व पूर्णं ॐ स्वाहा" से पहले नीचे के मन्त्रों से आहुति देनी चाहिये ।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चक्रमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ॐ हसः ॥

(देवाः देवासः) हे विद्वानो ! (वयं) हमने (यत्) जो (देवहेडनं) विद्वानों का अपराध (चक्रमा) किया है । (अग्निः) यह यज्ञ की भौतिक अग्नि या ज्ञानी आचार्य या प्रकाशरूप परमात्मा (तस्मात्) उस (पापात्) पाप से (मा) हमें या मुझे (मुञ्चतु) छुड़ावे और (विश्वात्) समस्त (अहसः) पाप से छुड़ावे ।

यदि दिवा यदि नक्तमेना ॐ सि चक्रमा वयम् ।

वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ॐ हसः ॥२॥

(यदि) अगर (दिवा) दिन में (यदि) अगर नक्तं रात में (वयं) हमने (एनांसि) पाप (चक्रम) किये हैं तो (वायुः) भौतिक वायु और अपने ज्ञान से सर्वत्र पहुंच सकने वाला आचार्य और ईश्वर मुझे पाप से मुक्त करे ।

यदि जाग्रद यदि स्वपन् एना ॐ सि चक्रमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ॐ हसः ॥३॥

(यदि) (जाग्रत) जागते हुए (यदि) (स्वप्न) सोते हुए (वयं) एनांसि चक्रमा) हमने पापाचरण किये हैं तो (सूर्यः) भौतिक सूर्य, ज्ञान का प्रकाशक आचार्य और परमात्मा मुझे इस पापाचरण से दूर करे ।

यत ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ! यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चक्रमा वयं यदेकस्याधिधर्मणि, तस्यावयजनमसि ॥४॥ यजु० २० । १७ ।:

(यत्) जो (ग्रामे) गाँव में (यत्) जो (अरण्ये) जंगल में (यत्) जो (सभायां) सभा में परनिन्दा (यत् इन्द्रिये) परनारी दर्शनादि (यत् शूद्रे) शूद्र सम्बन्धी (यत् अर्ये) जो स्वामी के प्रति (एनः) पाप (वयं) हम (चक्रमा) कर चुके हैं । एकस्य) स्त्री-पुरुष दोनों में से एक

के भी (अधि धर्मणि) कर्त्तव्य के विघ्न करने में (तस्य) उस पाप के हे आचार्य ! आप (अवयजन) नाशक (असि) हो ।

अगर कोई जन्म से वेदविरोधी न हो, किसी कारणवश पतित (वेदविरोधी ईसाई, यवन आदि मत में प्रविष्ट) हो गया हो और वह वैदिकधर्मियों में पुनः प्रविष्ट होना चाहे तो उससे नीचे के मन्त्र का पाठ भी कराया जाय । हमारी सम्मति में जन्म के पतित से भी इस मन्त्र का पाठ कराना अनुचित नहीं ।

यद् विद्वांसो यद्विद्वांस एनांसि चक्रुमा वयं : यूयं नः तस्मान्मुञ्चत विश्वे देवाः सजोषसः :

अथर्व० ६ : ११५ । १ ::

(विद्वांसः अविद्वांसः) जान बूझ कर या विना जाने मूर्खता से (वयं) हमने (यत् यत्) जो-जो (एनांसि) पाप (चक्रुमा) किये हैं । (यूयं) आप (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् पुरुष (सजोषसः) प्रीति के साथ (तस्मात्) उस पाप समुदाय से (नः) हमको (मुञ्चत) प्रथक् कर दो ।

इसके बाद अर्थ सहित गायत्री का जाप भी उससे कराना चाहिये । फिर नीचे के मन्त्रों से एक आहुति देकर पूर्णाहुति (ओं सर्व वै पूर्णं ॐ स्वाहा) करा दी जाय ।

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् : इदमहम-
नृतात्सत्यमुपैमि : । यजु० १ : ५ ::

(व्रतपते' अग्ने) व्रतों के पालक हे विद्वद्गण या ईश्वर ! मैं (व्रतम्) प्रण या व्रत का (चरिष्यामि) पालन करूँगा (तत्) में उसको करने में (शकेयं) समर्थ होऊँ (मे) मेरा (तत्) वह व्रत (राध्यतां) पूरा हो (अहं) मैं (अनृतात्) झूठ से (इदं सत्यं) इस सत्य को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ ।

सत्यार्थ प्रकाश

सत्यार्थ-प्रकाश—आर्यसमाज-प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती की लोक विख्यात रचना है जो १४ समुल्लासों में विभक्त है। प्रथम भाग में पहले दस समुल्लास और दूसरे में अन्तिम चार समुल्लास सम्मिलित हैं। प्रथम संस्करण में अन्तिम दो समुल्लास और अन्त में दिये गये स्वामीजी के 'मन्तव्य अमन्तव्य' छपने से रह गये थे। वे दूसरे संस्करण में सम्मिलित कर दिये गए !

प्रथम समुल्लास में ओ३म् आदि ईश्वरीय नामों की व्याख्या की गई है। दूसरे समुल्लास में संतान के पालन व पोषण का वर्णन है। तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पाठ्य व अपाठ्य पुस्तकों के नाम और पढ़ने और पढ़ाने की विधि अंकित है। चतुर्थ समुल्लास में गृहस्थ का वर्णन है। पंचम समुल्लास में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम के नियम लिखे हैं। षष्ठ समुल्लास में राजधर्म का उल्लेख है। सप्तम समुल्लास में वेद और ईश्वर विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अष्टम समुल्लास में सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है। नवम समुल्लास में विद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या है। दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय हैं। एकादश समुल्लास में आर्यावर्तीय मतमता-न्तर का खण्डन मण्डन विषय है। द्वादश समुल्लास में चार्वाक बौद्ध और जैनमत का विषय है। त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का वर्णन है। और चौहदवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय है और अन्त में आर्यों के सनातन वेद विहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है जिसको ऋषि भी मानते थे।

पुस्तक रचना का उद्देश्य—लेखक के अपने शब्दों में यह है, "मेरा

इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्यासत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है; इसलिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश या लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ, दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रंथ में ऐसी बात नहीं रखी है और न ही किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें; क्योंकि सत्य उपदेश के बिना कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।” (भूमिका)

ऋषि दयानन्द पक्षपात रहित थे—ऋषि दयानन्द भूमिका में लिखते हैं :—“यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ, वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे

मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता' परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं ।”

सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने से पूर्व—लेखक की यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि, “जो कोई इसे ग्रंथकर्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा, क्योंकि वाक्यार्थ बोध में चार कारण होते हैं—आकांक्षा, योग्यता, आसक्ति और तात्पर्य । जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रंथ को देखता है, तब उस ग्रंथ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है । ‘आकांक्षा,—किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है । ‘योग्यता’ वह कहती है कि जिससे जो हो सके जैसे जल से सींचना । ‘आसक्ति’—जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसी के समीप उस पद का बोलना व लिखना । ‘तात्पर्य’—जिसके लिए वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन व लेख को युक्त करना । बहुत हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेष कर मत वाले लोग । क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फँस जाती है ।”

स्व० पं० गुरुदत्त एम० ए० के शब्दों में ‘यदि सत्यार्थ प्रकाश की एक प्रति का मूल्य एक हजार रु० होता तो भी उसे सारी सम्पत्ति बेच कर खरीदता”

ऋषि दयानन्द का स्वाध्याय कितना विस्तृत था इसका अनुमान इस बात से लग सकता है कि वह ३ हजार ग्रंथों को प्रामाणिक मानते हैं । इनके अतिरिक्त न जाने उन्होंने अपनी छोटी आयु में और कितने सहस्र ग्रन्थ पढ़े होंगे । केवल सत्यार्थ प्रकाश से हमें निम्न ग्रन्थों के प्रमाण इस प्रकार मिलते हैं:—

सत्यार्थप्रकाश में अन्य पुस्तकों के प्रमाण ऋक् ३०, यजु ४१, अथर्व १५, साम १, शतपथ २०, तै० ब्राह्मण १, छान्दोग्योपनिषद २३,

बृहदारण्यक उपनिषद् ३, तरीयतै उपनिषद् १८, कठ ६, माण्डूक्य २, मुण्डक ८, केन ४, श्वेतां ५, मनु ४०८, महाभाष्य २, वेदान्त २०, योग १३, सांख्य १७, वैशेषिक ४६, न्याय १४, पूर्व मीमांसा १, गीता ५, बाल्मीकि रामायण १, महाभारत १३, व्याकरण भाष्य १, अष्टाध्यायी पाणिनि १, निरुक्त ७, चाणक्यनीति २, विदुर नीति १, पं० चाणक्य ३, श्रौत सूत्र १, सुश्रुत ४, पाराशर ५, शेखरबोध ८, ब्रह्मापुराण २, आपस्तम्भसूत्र ३, यजु० ब्र० १, न० शारीरिक १, शारीरिक भाष्य १, तैत्थ्य शाखा १, प्र० सूत्र १, गौ० पाद कारिका २, शा० सूत्र १, शारंग-धर १, ब्राह्मण १, श्रा० पाण्डव गीता १, कालीतन्त्र १, क० तंत्र १, महानिर्माण १, ज्ञानसुखी मन्त्र २, रु० तन्त्र २, का० र० तन्त्र २, भाग-वत पुराण ३, वृत्ति प्रभाकर १, रामानुज पटल पद्धति २, गृहलाघव १, दयाल सहस्र नाम १, सिद्धान्त रहस्य १, सन्तदास का वचन. १, राम-चरण का वचन १, जपजी २, सुखमनी २, वोपदेव प्र० स्क० १, नव-ग्रह मं० ६, गंगा माहात्म्य १, गुरु माहात्म्य १, भर्तृहरि १, दीपवंश २, बुद्धमत संग्रह २३, दोष संग्रह १४, विषयक ४६, अन्यसूत्र व चरणी निरुक्त भाष्य कुल ४६ पुस्तकों के प्रमाण, बौद्ध चार्वाक और जैनियों के विषय में हैं। इनके अतिरिक्त अमरकोष, प्रकरण रत्नाकर, सारतत्व विवेक जिनदत्त सूरी आदि के लगभग १५० प्रमाण हैं। ईसाइयों की पुस्तकों के प्रमाण ये हैं, पैदायश की किताब ३६, अखवार की किताब ५, खरुज की किताब १०, गिनती की किताब २, अंजील १, सलातीन की दूसरी किताब १, तारीख की पहली किताब १, स्वरुज की किताब १, वाइज की किताब २, मिती की इंजील ३०, मरकस की इंजील २, लूका की इंजील २, यूहन्ना की इंजील ५, यूहन्ना की शकाफात की किताब। कुल २६० पुस्तकों के प्रमाण दिये हैं। प्रमाणों की योग संख्या १८८६ है।

ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त—जिनका उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश में है, ये हैं, (१) ईश्वर (२) वेद (३) धर्म (४) जीव (५) जीव और

ईश्वर का सम्बन्ध (६) ईश्वर जीव और प्रकृति (७) प्रवाह से अनादि (८) सृष्टि की उत्पत्ति (९) सृष्टि का प्रयोजन (१०) सृष्टि सकर्तृक (११) बन्ध (१२) मुक्ति (१३) मुक्ति के साधन (१४) अर्थ (१५) काम (१६) वर्णाश्रम (१७) राजा (१८) प्रजा (१९) न्याय कारी (२०) देव असुर (२१) देव पूजा (२२) शिक्षा (२३) पुराण (२४) तीर्थ (२५) पुरुषार्थ और प्रारब्ध (२६) मनुष्य (२७) संस्कार (२८) यज्ञ (२९) आर्य दस्यु (३०) आर्यावर्त (३१) आचार्य (३२) शिष्य (३३) गुरु (३४) पुरोहित (३५) उपाध्याय (३६) शिष्टाचार (३७) आठ प्रमाण (३८) आप्त (३९) परीक्षा (४०) परोपकार (४१) स्वतन्त्र परतन्त्र (४२) स्वर्ग (४३) नरक (४४) जन्म (४५) मृत्यु (४६) विवाह (४७) नियोग (४८) स्तुति (४९) प्रार्थना (५०) उपासना (५१) सगुण निर्गुण स्तुति प्रार्थनोपासना पर प्रकाश डाला गया है।

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्म-तिथि

सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा का निर्णय

सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग द्वारा २ अप्रैल १९६७ को स्वीकृत

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

धर्माधिकारी

सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा

१९३३

विद्यार्थी-संघ

कि

प्रीति-संघ

प्रीति-संघ

प्रीति-संघ

विद्यार्थी-संघ

प्रीति-संघ

प्रीति-संघ

महर्षि दयानन्द जन्म-तिथि

सार्वदेशिक सभा का निर्णय

कुछ वर्षों से यह चर्चा चालू हुई है कि बोधरात्रि आदि की मांति महर्षि की जन्मतिथि भी मनाई जाया करे। कई आर्य समाजों ने अपनी मानी हुई तिथियों के अनुसार महर्षि का जन्मदिन मनाना भी प्रारम्भ कर दिया है। इस सभा का ध्यान कतिपय आयों की ओर से इस तरफ आकृष्ट किया गया। साथ ही यह भी अभ्यर्थना की गई कि सभा महर्षि की जन्मतिथि भी घोषित करे जिससे आर्य समाजों और आर्यजन उसी को महर्षि की वास्तविक जन्मतिथि समझें और इस विषय में जो अस्थिरता वा अव्यवस्था है वह दूर हो। इसी दृष्टि से यह प्रयास किया जा रहा है।

इतिहास

सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की २६-५-५५ की बैठक में महर्षि की जन्मतिथि का विचार विचारणीय रूप में प्रस्तुत हुआ। कुछ विचार-विमर्श के उपरान्त निश्चय हुआ कि यह विषय अगले अधिवेशन में विचारार्थ पुनः लाया जाये। २७-१-५७ की धर्मार्य सभा की द्वितीय बैठक में यह विषय पुनः विचारार्थ प्रस्तुत हुआ और निश्चय हुआ कि निम्न विद्वानों की एक उपसमिति बना दी जावे जो इस विषय की सामग्री संग्रह करके और परस्पर विचार करके अगले अधिवेशन में प्रस्तुत करे :—

१—श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री—संयोजक

२— „ „ भगवद्दत्त जी बी० ए०, रिसर्च स्कालर

३— „ „ इन्द्रदेव जी पीलीभीत

४— „ ऋषिमित्र जी बम्बई

५— „ धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड

२०-६-५८ की द्वितीय बैठक में इस विषय पर धर्मार्थ सभा इसलिए विचार न कर सकी कि उपसमिति की रिपोर्ट नहीं आ सकी थी। धर्मार्थ सभा की २३ जुलाई १९६० की बैठक में यह विषय पुनः प्रस्तुत होकर निर्णीत हुआ जो इस प्रसंग में आगे चलकर दिया जावेगा।

विचार के बिन्दु और आधारभूत सामग्री

महर्षि की जन्मतिथि के विषय में विद्वानों के विभिन्न मतों का परीक्षण करना और पुनः उस पर यथोचित निर्णय लेना आवश्यक था। अतः धर्मार्थ सभा ने तदनुरूप ही इसका विचार किया। एतद्विषयक विद्वानों के मत निम्न प्रकार थे जो सभा के समक्ष प्रस्तुत हुए :—

१—श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री—

संवत् १८८१ फाल्गुन वदी दशमी, १२ फरवरी १८२५।

२—श्री पं० इन्द्रदेव जी जतीपुरा, पीलीभीत—

फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा, १९ फरवरी १८२५।

३—श्री पं० अखिलानन्द जी—

भाद्र शुक्ला नवमी, २ सितम्बर १८२४।

४—श्री जगदीशसिंह जी गहलोत ने बताया कि जोधपुर नगर आर्य समाज की दीवार पर तिथि है—

१० फरवरी १८२५।

५—श्री पं० भगवद्दत्त जी को जैश्रीराम, मेरठ ने जो तिथि बताई—

आश्विन वदी सप्तमी, १५ सितम्बर १८२४।

इन तिथियों का विचार धर्मार्थ सभा ने किया। जहाँ तक ऊपर की पहली संख्या में वर्णित तिथि का सम्बन्ध है उसे ही धर्मार्थ सभा

ने ठीक और प्रामाणिक माना ।

संस्था २ में वर्णित श्री पं० इन्द्रदेव जी द्वारा मानी गई तिथि में कई विरोध आते हैं—

१—महर्षि का बालपन का नाम दयाल जी ठहरता है जो तथ्य के विपरीत है—क्योंकि उनका बचपन का नाम मूलशंकर वा मूल जी ही था और यही प्रमाणित भी है ।

२—इससे महर्षि के स्व-कथित जीवन के तथ्यों का विरोध पड़ता है । महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने अति संक्षिप्त आत्मचरित में कहते हैं :—

“संवत् १८८१ के वर्ष में दक्षिण गुजरात प्रान्त, देश काठियावाड़... मौरवी राज्य में...मेरा जन्म हुआ था । इस प्रकार १४वें वर्ष की अवस्था के आरम्भ तक यजुर्वेद की संहिता सम्पूर्ण और कुछ २ वेदों का भी पाठ पूरा हो गया था और शब्द रूपादली आदि छोटे-छोटे व्याकरण ग्रन्थ भी पूरे हो गये थे ।

(१८९४) जहां-जहां शिव पुराण आदि की कथा होती थी वहां पिता जी मुझको पास बैठा कर सुनाया करते थे ।.....मेरे पिता ने माता के मना करने पर भी पवित्र पूजन का आरम्भ करा दिया था ।

(मेरे पिता ने इस वर्ष मुझे शिवरात्रि व्रत रखने को कहा परन्तु मैं उद्यत न हुआ) जब शिवरात्रि आई तब (पिता ने) १३ त्रयोदशी के दिन कथा का महात्म्य सुना । शिवरात्रि के व्रत करने का निश्चय करा दिया था ।”

ऋषि के इस संदर्भ से शिवरात्रि की घटना १८९४ संवत् की ठहरती है और यह समय १४वें वर्ष की अवस्था के प्रारम्भ का ठहरता है । इस प्रकार ऋषि के १४वें वर्ष का प्रारम्भ संवत् १८९४ शुक्ला १ (रविवार २५-२-१८३८ को हुआ और उनके १४वें वर्ष की शिवरात्रि संवत् १८९५ फाल्गुन बदी १३ भौमवार (१२-२-१८३९) को आई । इस मत के अनुसार ऋषि के १४वें वर्ष का अन्त १४-२-३९ को हो जाता है और

शिवरात्रि उनके १४वें वर्ष के आरम्भ में नहीं अवसान में है। इस प्रकार आत्मचरित्र से स्पष्ट विरोध होने से यह मत समुचित नहीं।

तीसरा मत श्री पं० अखिलानन्द जी का है जो उनकी पुस्तक दयानन्द दिग्विजय से प्रकट होता है। यह मत कवि की अन्य कल्पनाओं की भांति कल्पना का तो हो सकता है परन्तु कोई प्रमाण इसमें उपलब्ध नहीं है। साथ ही इसका भी पूर्वोक्त आत्मचरित से विरोध ही पड़ेगा। केवल यह कहना कि श्री टीकाराम जी को स्यात् वह महर्षि से मालूम पड़ा हो और उनसे श्री अखिलानन्द जी को ज्ञात हुआ हो केवल कल्पित अनुमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है।

चौथा मत ऐसा है कि जिस पर कोई सामग्री नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त प्रथम मत से इसका एक दो दिन का ही अन्तर पड़ता है जो गणना की दृष्टि से सम्भव है। ऐसी स्थिति में इस पर कोई आधार बनाया नहीं जा सकता है।

पांचवां मत एक सुनी-मुनाई बात पर आधारित है जिसका इतिहास और अनुसंधान में कोई मूल्य नहीं है। यह भी तीसरे मत से कुछ सीमा तक मिलता जुलता है।

इस विषय के विपरीत एक बात और भी पाई जाती है कि इस मत के मानने वाले व्यक्ति की सम्मति अन्यत्र इसके विपरीत पाई जाती है। जहां उन्होंने अपने एक ग्रंथ में ऐसा माना है वहां “आत्मचरित” के संपादक के रूप में टिप्पणी देते हुए पृष्ठ १८ पर लिखा है। सो उनका जन्म अनुमान से संवत् १८८१ के अन्त में हुआ होगा अर्थात् उसका एक आध या कुछ दिन शेष होंगे। माघ या फाल्गुन होगा। ऐसा निश्चित होता है।” इस प्रकार उक्त मत का विरोध स्वयं लेखक के ही विचार से हो जाता है। चूंकि यह टिप्पणी आत्मचरित के उपर्युक्त वाक्य पर है जिसका उद्धरण पूर्व दिया जा चुका है अतः यह इस पूर्व मत को सर्वथा निर्मूल बना देती है।

संख्या एक में वर्णित श्री भीमसेन जी शास्त्री के मत को धर्मार्थ

सभा ने क्यों स्वीकार किया ? इसके निम्न हेतु हैं :—

१—यह तिथि आत्मचरित से घटनाओं का मिलान करने और परीक्षण करने पर ठीक उतरती है ।

२—महर्षि के शिष्य श्री पं० ज्वालादत्त ने महर्षि के नाम और जन्म के नक्षत्र के विषय में एक श्लोक लिखा है, जिसका उद्धरण श्री पं० भीमसेन जी शास्त्री ने दिया है। भारत सुदशा प्रवृत्तक पत्र में महर्षि की एक दिनचर्या छपी थी। इस दिनचर्या के अन्त में श्लोक छपा है :—

क्षोणी माहीन्दुभिरयुते वैक्रमे वत्सरे यः,
प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणे देशवर्ये ।
मूले नासौ जनन विषये शंकरेण परेण,
ख्याति प्रापत् प्रथमवयसि प्रीतिदां सज्जनानाम् ॥

अर्थात् (स्वामी दयानन्द सरस्वती उत्तम देश दक्षिण में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में सं० १८८१ में प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने जन्म कालिक नक्षत्र के कारण वाल्यावस्था में मूलशंकर नाम पाया जो सत्पुरुषों को अतीव हर्षप्रद है।

निर्णय

धर्मार्थ सभा की २६-४-५६ की बैठक में जो रविवार प्रातः ७ बजे श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में हुई थी, श्री पं० भीमसेन शास्त्री जी ने विचार की निम्न पार्श्वभूमि उपस्थित की थी :—

“महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने संक्षिप्त आत्मचरित में अपनी जन्मभूमि काठियावाड़ तथा जन्म संवत् १८८१ का वर्णन करने के अनन्तर विद्यारम्भ संवत् १८८६ तथा उपनयन संवत् (१८८६) के समय अपने वय का निर्देश किया है। इसके उपरान्त उन्होंने शिवपूजा के प्रारम्भ का प्रकार, चौदहवें वर्ष के प्रारम्भ में स्वविद्या सम्बन्धी योग्यता

आदि के विषय में जो कुछ लिखा है वह सब उनके बाल्यकाल की महत्तम घटना है अर्थात् शिवरात्रि जागरण की भूमिका है। इस आत्मचरित की लेखनशैली के विश्लेषण तथा इस स्थल के सावधान मनन से यह निश्चित परिणाम निकलता है कि ऋषि ने वह शिवरात्रि जागरण अपने १४वें वर्ष के प्रारम्भ में किया था एवं इस वर्णन से यह निश्चित ज्ञात होता है कि शिशु दयानन्द के जीवन में प्रथम वर्ष के प्रारम्भ में ही शिवरात्रि थी। दूसरे शब्दों में ऋषि का जन्म (संवत् १८८१ में) शिवरात्रि के कुछ ही समय पूर्व हुआ था।

इसी प्रकार महर्षि के उपर्युक्त आत्मचरित के गृहत्याग प्रकरण की पर्यालोचना से यह स्पष्ट है कि इस वार १॥ मास से अधिक टंकारा नहीं रहे। वे संवत् १९०२ में टंकारा आये थे और संवत् १९०३ में घर छोड़ा था। इस डेढ़ मास का कुछ भाग १९०३ में भी है पर यदि इस सम्पूर्ण डेढ़ मास को सं० १९०२ में ही रख लें तो भी वे संवत् १९०२ की माघ पूर्णिमा के अनन्तर ही पाठशाला ग्राम से टंकारा आये थे। वहां यह भी वर्णित है कि वे घर आने से कुछ दिन पश्चात् २१ वर्ष के हुए थे। इससे ज्ञात हो जाता है कि श्री मूलशंकर की जन्मतिथि संवत् १८८१ में माघ पूर्णिमा के पश्चात् थी।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं के वर्णन से यह निश्चित ज्ञात हो जाता है कि ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि संवत् १८८१ में माघ पूर्णिमा तथा शिवरात्रि के अन्तराल में है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में प्राणजीवनदास को स्वयं अपना नाम मूलशंकर बताया था। महर्षि के कथन से ही उनके कुछ अन्य भी भक्तों तथा शिष्यों को उनका नाम मूलशंकर तथा जन्म मूल नक्षत्र में होना विदित था। इस प्रकार उनके जन्म नक्षत्र का भी हमें निःसंशय ज्ञान है।

अब उपर्युक्त जन्म सीमाओं में मूल नक्षत्र फाल्गुन बदी दशमी तथा एकादशी में था। दशमी में वह अतिस्वल्पकाल था तथा एकादशी में वह

५/७ घटिका था । इस प्रकार महर्षि का जन्म संवत् १८८१ फाल्गुन वदी ११ में हुआ था । पर व्यावहारिक सूर्योदय तिथि १८८१ फाल्गुन वदी १० शनिवार (१२-२-१८८५ ई०) थी इसे ही दाक्षिणात्य माघ वदी १० कहते हैं । एवं महर्षि की जन्मतिथि फाल्गुन वदी दशमी है ।

सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा के २३ जौलाई १९६० को यमुना नगर में हुए अधिवेशन का निश्चय :—

“गत दो वर्षों से ऋषि जन्मतिथि तथा आर्य समाज स्थापना दिवस के विषय में विचार चल रहा है । श्री पं० विजयशंकर जी बम्बई और श्री इन्द्रदेव पीलीभीत आदि के साथ भी इस सम्बन्ध में विचार हुआ । इन दोनों विषयों पर समस्त ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया और श्री पं० इन्द्र जी द्वारा लिखित “आर्य समाज का इतिहास” ग्रंथ के प्रकरण भी विचारे गये । इस सबके उपरान्त धर्मार्थ सभा इस परिणाम पर पहुँची है :—

ऋषि की जन्म तिथि सं० १८८१ फाल्गुन वदी दशमी [१२ फरवरी १८८५] शनिवार है ।

इसकी पुष्टि सार्वदेशिक अन्तरंग सभा ने सर्व सम्मति से २ अप्रैल १९६७ को की ।

॥ औ३म् ॥

आर्यसमाज-स्थापना-तिथि

(चैत्र शुक्ल प्रतिपदा बुधवार सम्बत् १९३१ विक्रमोय
तदनुसार ७ अप्रैल सन् १८७५ ई०)

आचार्य वेद्यनाथ शास्त्री
धर्माधिकारी

सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा दिल्ली

श्री श्री गणेशाय नमः

प्रमाणं ॥ ३९ ॥ गणेशाय नमः ॥ गणेशाय नमः ॥
(०३ ५५५५५ ॥ गणेशाय नमः ॥ गणेशाय नमः ॥)

गणेशाय नमः ॥
गणेशाय नमः ॥

गणेशाय नमः ॥ गणेशाय नमः ॥

आर्य-समाज स्थापना-तिथि

आर्यों की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा सन् १९७५ में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी वम्बई में मनाने जा रही है। यह आयोजन बहुत विशाल और विराट रूप का होगा और सभा अभी से इस योजना के कार्यान्वयन में लग गई है। इस आयोजन के प्रसंग का अभी आरम्भ ही हुआ था कि आर्य समाज स्थापना तिथि के विषय में कुछ लोगों ने विवादात्मक लेख लिखे। यह कोई नई बात नहीं है क्योंकि कई लोगों के कुछ इस प्रकार के विचार पहले से ही चले आ रहे हैं। इन सब का निराकरण यथास्थान इस लेख में आगे दिया जाएगा। यहाँ पर संक्षेप में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा इस विषय में पर्याप्त सहायता मिलेगी।

यद्यपि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ही स्वीकार कर चुकी थी फिर भी चैत्र शुक्ल पंचमी वाले पक्ष के विषय में तथ्य का निर्णय करने का प्रयत्न उसने चालू रखा था। सन् १९६४ में गुजरात प्रान्त के भड़ौच नगर में सरकार की तरफ से एक भागवत केस चला। यह केस ऐतिहासिक था। यह आर्यसमाज की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया था। अन्तोगत्वा इसमें आर्यसमाज की विजय हुई। सभा के अनुरोध पर इस विवाद में विशेषज्ञ साक्षी के रूप में मुझे जाना पड़ा था। मैंने जो कुछ किया और जो कुछ परिणाम उसका आर्यसमाज की विजय के रूप में निकला, आर्य जगत को उसकी सूचना समय पर दी जा चुकी है। इसी विवाद में आर्यसमाज का कड़वाड़ी वम्बई के पुरोहित स्वर्गीय श्री पं० ऋषिमित्र जी शास्त्री मेरे निशान लगाए पुस्तकीय प्रमाणों को पुस्तक खोल कर मेरे कहने पर

कोर्ट में उपस्थित करने के कार्य में सहयोगी के रूप में, अन्य कई सहयोगियों के साथ कार्य कर रहे थे। केस के दौरान मैंने महाराज लायबल केस का वर्णन किया था। यह गुजराती में छपी पुस्तक और एक मराठी कोष के आधार पर था। परन्तु फैसले की प्रति भुके भी उपलब्ध नहीं थी। केस के समाप्त होने पर मैंने श्री शास्त्री जी को कहा कि महाराज केस फैसले की कापी प्राप्त करनी चाहिए। उन्होंने यह कार्य करना स्वीकार किया। इधर समा इस विषय में पूरा यत्न करती रही कि कार्य हो जावे। प्रयत्न चलता रहा और परिणाम यह हुआ कि महाराज लाइबल केस का फैसला प्राप्त हो गया और उस पर प्रतिक्रिया के रूप में जो दूसरी पुस्तक लिखी गई वह भी प्राप्त हो गई। दोनों ही पुस्तकें *Maharaj Libel Case* और *Sect of Maharajas or Vallabhacharyas* आज सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में सुरक्षित हैं। आर्य-समाज बम्बई के अधिकारियों ने उन्हें सभा को दे दिया है।

यह वही केस है जो सन् १८६२ में प्रारम्भ हुआ था और १०-१२ वर्षों तक चलता रहा। इस केस में गोस्वामी जी की असफलता ने तात्कालिक सुधारवादी जनता में एक प्रकार का विद्रोह उत्पन्न कर दिया था। ठीक उसी समय सन् १८७० ईस्वी में महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ और भाषण काशी आदि स्थानों में हो रहे थे। बम्बई के लोगों के आग्रह पर महर्षि दयानन्द १८७४ ईस्वी के अक्टूबर में बम्बई पधारे। इस काल में गोस्वामी जी के पुरस्कर्ता पंडितों ने शास्त्रार्थ भी किए परन्तु स्वामी जी महाराज की युक्तियों एवं तर्कों का जनता और विद्वन्मण्डली पर अमिट प्रभाव पड़ा और आर्यसमाज की स्थापना का विचार बम्बई में प्रबल हुआ।

सभा का प्रयत्न और मेरी बम्बई यात्रा

सभा ने चैत्र शुक्ल पंचमी को आर्यसमाज की स्थापना के पूर्वपक्ष को लेकर 'टाइम्स आफ इंडिया' के सन् १८७५ के रेकार्ड को देखने के

लिए पत्र-व्यवहार किया। 'टाइम्स आफ इंडिया' के सम्बद्ध अधिकारियों ने बड़ी उदारतापूर्वक इसे स्वीकार किया। दि० ७-१०-१९७१ को इन पंक्तियों का लेखक बम्बई में 'टाइम्स आफ इंडिया' के रेकार्ड को देखने पहुंचा। साथ में सभा के मंत्री श्री ओ३म् प्रकाश जी त्यागी भी थे। रेफ-रेन्स आफिसर ने सुविधा प्रदान की और तीन घन्टे के सहयोग से इसका प्रमाणीकरण किया और १० अप्रैल १८७५ ईस्वी शनिवार के प्रभात संस्करण के पृष्ठ ३ कालम ३ पर नीचे लिखी सूचना मुद्रित मिली—

"A meeting will be held at 5-30 P.M today in the Girgam Back Road, in the Bungalow belonging to Dr. Maneck JI Aderjee, when Pandit Dayanand Saraswati Swami will Perform the ceremonies for the formation of Arya Samaj. All well-wishers of the cause are invited to attend."

इस यात्रा में जहां अन्य कार्यों के साथ इस प्रमाणीकरण का कार्य किया वहां मैंने तीन-चार दिन लगाकर आर्यसमाज स्थापना तिथि के विषय में आर्यसमाज काकड़वाड़ी के कागजाज और शिलालेखों का पर्य-वेक्षण किया। मेरे साथ इस कार्य में श्री पं० दयाशंकर जी शर्मा आयो-पदेशक बम्बई ने बड़ा ही परिश्रम किया। वे बड़े ही उद्योगी व्यक्ति हैं और तत्स्वभावानुसार ही उन्होंने सराहनीय कार्य किया। आर्यसमाज के अधिकारियों का भी सहयोग रहा। उस प्रसंग में कुछ सामग्री को देखने और प्राप्त करने का अवसर मिला जिसका विवरण निम्न प्रकार है :—

१. आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों की कार्यवाही का रजिस्टर सन् १८७८ से १८८३ तक का। इस रजिस्टर को स्वर्गीय श्री पं० ऋषिमित्र जी शास्त्री ने ढूँढ निकाला था और इसका मुझे पता था। उनकी मृत्यु के उपरान्त यह रजिस्टर आर्यसमाज काकड़वाड़ी में नहीं था। यह आर्यसमाज के पुराने मंत्री श्री सभाजित मिश्र के पास सुरक्षित था। मेरे कहने पर उन्होंने मुझे सहर्ष यह रजिस्टर दिया और मैंने इसे

सार्वदेशिक सभा में लाकर इसका फोटो कराया। ये फोटो तथा मूल रजिस्टर सभा की सम्पत्ति हैं और सभा में सुरक्षित हैं।

इस रजिस्टर के पन्नों का कागज बहुत प्राचीन हो गया है। कहीं-कहीं पर कीटदण्ट भी है। परन्तु अक्षर बहुत स्पष्ट हैं और गुजराती भाषा में है। इसमें सभी कार्यवाहियों में देशी तिथि, सम्बत् तथा अंग्रेजी तारीख और सन् दिये हैं। कार्यवाही के अन्त में कई पृष्ठों पर प्रा० का० उपमन्त्री अथवा प्रा० का० ये हस्ताक्षर भी हैं। इसमें पैसिल से लिखे गये २१ सितम्बर १८७६ के अंग्रेजी पत्र की प्रतिलिपि भी चस्पा है जो मन्त्री आर्यसमाज लाहौर को लिखा गया था तथा आर्यसमाज के अधिकारियों का उसमें उल्लेख किया गया है। रजिस्टर में कार्यवाही की जो भाषा लिखी गई है वह बहुत ही अच्छी और पूर्णतः उस समय की साक्षी देती है। स्वामी जी के व्याख्यान भी कार्यवाही में उल्लिखित हैं। विविध विषयों पर व्याख्यानों का भी उल्लेख है। प्रार्थना भजन करने वाले के लिए गवैया पद का प्रयोग है जो मथुरा में महर्षि के रहने और वहां की भाषा को ग्रहण कर प्रयोग में लाये जाने की साक्षी दे रहा है। इस रजिस्टर में ७वीं अप्रैल १८७८ से २६वीं अगस्त १८८३ ई० तक की कार्यवाहियां अंकित हैं।

अधिवेशन की सूचना पूर्व से पत्रों में प्रकाशित की जाती थी। ऐसा प्रत्येक कार्यवाही से प्रकट होता है। १८वीं मार्च १८८५ की कार्यवाही में "इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रबोचम्" मन्त्र का हवाला दिया गया है और मन्त्र स्वरसहित सुन्दर हस्तलेख में अंकित हैं।

इसी रजिस्टर में चैत्र शुक्लपक्ष ७मी वार रवि संवत् १९३८ तारीख २६वीं मार्च सन् १८८२ अंग्रेजी की कार्यवाही अंकित है यह कार्यवाही नये खरीदे मकान में हुई थी। इस पूरी कार्यवाही का उल्लेख बाद में किया जाएगा। यह रजिस्टर बहुत ही उपयोगी है।

२. 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' नाम की एक पुस्तक भी आर्य-समाज के अधिकारियों की उदारता से प्राप्त की। यह पुस्तक गुजराती

भाषा में है और यह विक्रम सम्वत् १९८९ दयानन्दाब्द १०९, सन् १९३३ में प्रकाशित हुई थी। इसमें भी आर्यसमाज मुम्बई के रजिस्टर आदि के हवाले से उक्त आर्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है।

३. आर्यसमाज मन्दिर में लगे हुए कुछ शिलालेखों का अवलोकन कर उनकी कापी स्वयं लिखी जो इस प्रकार है :—

१—क—हिन्दी अक्षरों में

भानुशालिवंशोद्भव श्रेष्ठ पुरुषोत्तम भगवानदासे पोतानी स्वर्गवासी पत्नी शिव कुंवरवाईना स्मरणार्थ आ कुवो धर्मार्थ रु० १५०० खर्ची बंधावी आप्योछे।

सेवकलाल कृष्णदास

मंत्री—आर्यसभाज

ता० १८मी जानेवरी ई० १८९०

इसका भाषानुवाद इस प्रकार है :—

भणशाली वंश में उत्पन्न श्रेष्ठ पुरुषोत्तम भगवान दास ने अपनी स्वर्गवासी पत्नी शिव कुंवर वाई के स्मृत्यर्थ इस कुवें को धर्मार्थ रु० १५०० खर्चकर बंधवाकर दिया है।

सेवकलाल कृष्णदास

मंत्री—आ० स०

ता० १८मी जानेवरी ई० १८९०

नोट—यह कुंवा अब बन्द कर दिया गया है।

१—ख—

आर्य स्थान

श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी के सदोपदेश से सज्जन

आर्य वैदिक जनों ने वेदानुकूल व्याख्यान और पठन-पाठनादि कार्य करने के लिए यह स्थान बना के आर्यसमाज के अधिकार में रखा है। मिति फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८ ।

१—ग—

भानुशालि वंशोद्भव श्रेष्ठ छबीलदास लल्लुभाई पोतानी स्वर्गवासी पत्नी वृजकुंवर बाईना स्मरणार्थे यज्ञमंडपना अपूर्ण काम करवा माटे रु० २००० आप्योछे ।

ता० ३० मी एप्रिल

सन् १८९०

मुम्बई

सेवकलाल कृष्णदास

मंत्री

आर्य समाज

भाषानुवाद—

भणशाली वंश में उत्पन्न श्रेष्ठ छबीलदास लल्लुभाई ने अपनी स्वर्गवासी पत्नी वृजकुंवर बाई के स्मृत्यर्थे यज्ञ मंडप के अपूर्ण काम के सम्पूर्ण करने के लिए रु० २००० दिया है ।

ता० ३० मी एप्रिल

सन् १८९०

मुम्बई

सेवकलाल कृष्णदास

मंत्री

आर्य समाज

१—घ—

आर्यसमाज मुम्बई सम्बत् १९३१ स्थापित हुआ ई० सन् १८७५ चैत्र शुक्ल १ ता० ७ अप्रिल बुधवार

१—ङ—

आर्य स्थान

श्री मत्पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीना सदोपदेश थी सज्जन

आर्य वैदिक जनो ये वेदानुकूल व्याख्यान अने पठन पाठनादि कार्य करवाने आ आर्य स्थान बनावी आर्यसमाज ना अधिकार मां आप्युछे ।
त० १८ फेब्रुआरी सन् १८८२ ।

नोट—यह शिलालेख १—ङ आर्यसमाज की छत से लगी दीवाल में है । श्री पं० दयाशंकर शर्मा ने इसको साफ कर बड़ी कठिनाई से मेरे सहयोग से पढ़ा और अंकित किया । यह शिलालेख गुजराती में है परन्तु भाव इसका वही है जो शिलालेख १—ख में है । शिलालेख १—ख की तिथि फाल्गुन सुदि १ शनिवार १९३८ है और इस गुजराती शिलालेख की तारीख अंग्रेजों है जो तारीख १८ फेब्रुवरी सन् १८८२ है ।

स्थापना तिथि संबंधी विचार

यह हुआ एक छोटे से प्रयत्न का मूल्यांकन । अब प्रस्तुत विषय पर कुछ लिखना उचित है । आर्यसमाज की स्थापना तिथि के विषय में जो विचार पाये जाते हैं यहां पर सर्वप्रथम उनका उल्लेख किया जाता है । पुनः उन पर विचार किया जायेगा ।

१. चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् १९३१ विक्रम बुधवार ७ अप्रैल १८७५ ईस्वी को आर्यसमाज की स्थापना हुई—इसपक्ष में नीचे लिखे विचार पाये जाते हैं :—

अ—आर्यसमाज मुम्बई का शिलालेख ।

आ—सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि समा, दिल्ली का दिनांक २७ जनवरी १९४० का निर्णय ।

इ—श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा बंगला में लिखित दयानन्द चरित ।

ई—बम्बई आर्यसमाज की रिपोर्ट आदि ।

उ—पं० ऋषिमित्र शास्त्री पुरोहित आर्यसमाज बम्बई का आर्यसमाज बम्बई के ६३वें वार्षिक महोत्सव की स्मारिका का लेख ।

२. चैत्र शुक्ल पंचमी १९३१ वि० १० अप्रैल शनिवार १८७५ को आर्यसमाज की स्थापना हुई । इस पक्ष में निम्न विचार पाये जाते हैं :—

(क) 'टाइम्स आफ इण्डिया' के १० अप्रैल १८७५ ईस्वी के प्रभात संस्करण में प्रकाशित सूचना ।

(ख) 'जामये जमशेद' और 'बाम्बे गजट' में छपी सूचना ।

(ग) श्री पं० लेखराम जी द्वारा लिखित ऋषि का जीवन चरित्र ।

(घ) श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक का लेख ।

(ङ) ऋषि का पत्र व्यवहार जिसका उल्लेख श्री मीमांसक जी ने किया है ।

इस प्रकार संक्षेप में दोनों ही पक्ष समक्ष उपस्थित हैं । प्रथम पक्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का है जो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्णीत पक्ष है । अतः उसे स्थापित मानकर ही चलना श्रेयस्कर है । ऐसी स्थिति में चैत्र शुक्ल पंचमी वाले पक्ष पर ही पूर्व विचार किया जाता है । यदि यह पक्ष ठीक सिद्ध हो जाए तो स्थापित पक्ष स्वयं गिर जायेगा । यदि यही गलत सिद्ध हुआ तो उसकी स्थापना सिद्ध ही रहेगी ।

चैत्र शुक्ल पंचमी वाला पक्ष अधिकांश में 'टाइम्स आफ इण्डिया' आदि में छपी सूचना के आधार पर आधारित है । मैं इस लेख के पृष्ठ ३ पर उक्त सूचना को उद्धृत कर चुका हूँ और ७-१०-१९७० को

‘टाइम्स आफ इण्डिया’ के मेक्रो फिल्म रेकाड से मैं इसे प्रमाणित कर चुका हूँ। यह स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। “जामये जयशेद” और “वाम्बे गजट” देखने को नहीं मिले। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि जो सूचना “टाइम्स आफ इण्डिया” में छपी है वही इन पत्रों में भी प्रकाशित हुई। इन दोनों का भी यदि अवलोकन करने को मिल जाता तो इस सूचना की प्रामाणिकता और भी पुष्ट हो जाती। परन्तु आर्यसमाज की स्थापना तिथि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि सूचना तो एक ही है और उसी पर चैत्र शुक्ल पंचमी का पक्ष स्थापित है।

‘टाइम्स आफ इण्डिया’ की यह सूचना वस्तुतः आर्यसमाज की स्थापना की सूचना नहीं है। इसकी स्थापना-तिथि से कोई सम्बन्ध नहीं मानूँ पड़ता है। यह सूचना आर्यसमाज के प्रथम साप्ताहिक अधिवेशन की है जो शनिवार १० अप्रैल १८७५ को हुआ था। उस समय प्रार्थना समाज का अधिवेशन रविवार को प्रातःकाल होता था अतः आर्यसमाज का अधिवेशन शनिवार को किया जाता था। बाद में यह रविवार को होने लगा। परन्तु पहले शनिवार के सायंकाल को ही होता था। “Pandit Dayananda Saraswati Swami will perform the ceremonies for the formation of Arya Samaj” इस वाक्य में formation पद सामान्यतः आर्य समाज के प्रथम अधिवेशन की ही सूचना देता है। इसमें foundation की झलक नहीं मालूम पड़ती है। अतः इस सूचना से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि आर्यसमाज बम्बई का सर्वप्रथम साप्ताहिक अधिवेशन १० अप्रैल शनिवार १८७५ को हुआ और उस समय देशी तिथि चैत्र शुक्ल पंचमी सम्बत् १९३१ विक्रमीय थी। श्री देवेन्द्र बाबू से ज्ञात होता है कि गलती से अधिवेशन की इस तिथि को ही जीवन चरित्र में स्थापना की तिथि मान लिया। स्वर्गीय पं० लेखराम जी को भी स्यात् कुछ ऐसी ही सूझ आ गई होगी।

महर्षि के द्वारा चैत्र शुक्ल ६ सम्बत् १९३१ विक्रमीय को श्री गोपाल-राव हरि देशमुख को लिखे गये पत्र का जो हवाला दिया जाता है वह भी इस पूर्वोक्त साप्ताहिक अधिवेशन का ही उल्लेख करता है। उसका वाक्य निम्न प्रकार है—“आगे मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन सन्ध्या के साढ़े पांच वजते आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ।” यहां पर आरम्भ पद गुजराती लहजे को लिए हुए है। इसका अर्थ आर्यसमाज की स्थापना लेना ठीक नहीं। आर्यसमाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ का अर्थ यही है कि आर्य लोगों के समागम का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ। इससे भी यही ध्वनित होता है कि अधिवेशन का आरम्भ हुआ और यही ठीक भी है। ‘टाइम्स ऑफ इण्डिया’ की सूचना की यह पुष्टि करता है। शब्दों के समझने में असावधानी कैसे होती है, इसका उदाहरण दिया जाता है :—

ऋषि ने यजुर्वेद भाष्य के प्रारम्भ में स्वनिर्मित श्लोक में लिखा है कि “ऋग्वेदस्य विधाय वै भाष्यम्” जिसका यही अर्थ साधारणतः निकलता है कि ऋग्वेद के भाष्य को ‘विधाय’ अर्थात् पूर्ण करके यह यजुर्वेद का भाष्य प्रारम्भ किया जा रहा है। परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। यहां पर ‘विधाय’ का अर्थ प्रारम्भ करके ही लेना पड़ेगा। क्योंकि ऋग्वेद भाष्य तो महर्षि ने पूर्ण किया ही नहीं और यजुर्वेद भाष्य का प्रारम्भ ऋग्वेद के भाष्य के बाद किया—यह भी ठीक नहीं है। इसी प्रकार यहां आरम्भ के विषय में भी समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त इतिहास में शिलालेख से बढ़कर पत्र-व्यवहार को प्रामाणिकता प्रदान करना भी ठीक नहीं होगा।

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने आर्यसमाज बम्बई से प्राप्त एक लघु पुस्तिका का उल्लेख किया है। उसकी भी साक्षी प्रथम अधिवेशन का ही संकेत कर रही है। क्योंकि आर्यसमाज काकड़वाड़ी से मैंने एक पुस्तक प्राप्त की जिसका नाम—“मुम्बई आर्य समाजनो इतिहास” है। यह गुजराती भाषा में लिखा गया है और बहुत ही उपयोगी है। इसका

उल्लेख मैंने इस लेख में पृष्ठ ५ पर किया है। इसके लेखक हैं श्री दामोदर सुन्दरदास। श्री सुन्दरदास जी उन तीन व्यक्तियों में थे जिन्होंने सर्वप्रथम १८७० ईस्वी में महर्षि का सम्पर्क किया था और महर्षि के प्रभाव में आए थे। पुस्तक के लेखक श्री दामोदर भाई उन्हीं श्री सुन्दरदास के पुत्र थे। इसमें सभी बातें व्यौरेवार लिखी हैं। यह पुस्तक १-१०-३३ को आर्य प्रकाश मुद्रणालय, स्टेशन रोड, आनन्द में छपी थी। इस पुस्तक में पूरा व्यौरा आर्यसभाज का दिया गया है और वह विवरण आदि पर पूर्णतया आधारित है। इस पुस्तक के प्रथम खण्ड पूर्वाद्ध की समाप्ति के पूर्व की पंक्तियाँ २६वें पृष्ठ पर निम्न प्रकार हैं—

‘त्यारवाद समाज माटे जे नियमो बनाव्या हता ते तेओ ने सुधारवा माटे आप्या, तथा अेमनी सूचना मूजव ना सुधारेला नियमो तैयार थई जता सम्बत् १९३१ नी सालना चैत्र सुदी १वे दिने प्रथम मुम्बई मा एक आर्यसभाज स्वर्गवासी रा० रा० गिरधरलाल दयालदास कोठारी बी० ए० एल० एल बी० हाईकोर्ट ना प्लीडर ना प्रमुच पणा नीचे स्थापना थयो ॥

इसमें स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्बत् १९३१ को श्री गिरधरलाल दयालदास कोठारी की अध्यक्षता में हुई। इस प्रमाण को काटने का कोई भी आधार नहीं है। यह वस्तुतः प्रामाणिक है।

इसके अतिरिक्त आर्यसमाज बम्बई के पुरोहित स्व० पं० श्री ऋषिमित्र शास्त्री ने २३वें वार्षिक महोत्सव की स्मारिका में अपनी खोज के आधार पर मेरी प्रेरणानुसार एक लेख लिखा था। उसमें इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। वे पृष्ठ ३ पर लिखते हैं :—

इन प्राथमिक तैयारियों के पश्चात् चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, बुधवार ७ एप्रिल सन् १८७५ ई० व सम्बत् १९३१ विक्रमीय को मध्याह्नोत्तर सायंकाल ४ बजे वर्तमान प्रार्थना समाज के सामने, जहां राममोहन हाई स्कूल है, श्री माणिक जी की वागवाड़ी में आर्यसमाज की स्थापना के लिए सभा हुई। उसके अध्यक्ष गिरधरलाल दयालदास कोठारी थे। उसी

समय आर्यसमाज के अधिकारियों का निर्वाचन हुआ जिसमें उक्त महोदय को ही सर्वसम्मति से आर्यसमाज का प्रधान चुना गया। मंत्री श्री पानावन्द जी आनन्द पारेख चुने गए। प्रार्थना सभा का साप्ताहिक अधिवेशन रविवार प्रातःकाल में होता था, अतः प्रति शनिवार के सायंकाल में आर्यसमाज का साप्ताहिक अधिवेशन होना निश्चित हुआ। तदनुसार आगामी शनिवार १० एप्रिल चैत्र शुक्ल पंचमी को आर्यसमाज का उसी स्थान में सर्वप्रथम साप्ताहिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। स्व० देवेन्द्र बाबू रचित जीवन चरित में भूल से इसे ही आर्यसमाज का स्थापना दिवस लिखा गया है। आर्यसमाज के अन्तरंग सदस्यों का भी प्रतिपदा के ही दिन निर्वाचन हुआ था।”

इस उद्धरण से भी यही सिद्ध होता है कि आर्यसमाज की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्बत् १९३१ विक्रमी तदनुसार ७ अप्रैल बुधवार १८७५ ई० को हुई थी और उसका प्रथम अधिवेशन चैत्र शुक्ल पंचमी शनिवार सम्बत् १९३१ विक्रमी तदनुसार १० अप्रैल शनिवार १८७५ ई० को हुआ था। जो लोग चैत्र शुक्ल पंचमी को आर्यसमाज की स्थापना की तिथि मानते हैं उन्होंने वस्तुतः इसी अधिवेशन तिथि को स्थापना तिथि मान लिया है। श्री पं० इन्द्र जी की यह कल्पना भी निर्मूल है कि मन में विचार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को हुआ होगा और स्थापना चैत्र शुक्ल पंचमी को हुई होगी। जब स्पष्ट प्रमाण चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के पक्ष में मिल रहे हैं तो कल्पना करने की आवश्यकता ही क्या है ?

इस प्रकार चैत्र शुक्ल पंचमी को आर्यसमाज की स्थापना तिथि का पक्ष निर्बल है। इसमें कोई भी प्रमाण नहीं है। जो प्रमाण दिये जाते हैं उनका उल्लेख और विवेचन ऊपर किया गया और उन्हें निस्तार पाया गया। अब चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का पक्ष अपने आप सिद्ध कोटि में आ जाता है। फिर भी नई खोज से प्राप्त हुई सामग्री के आधारपर मैं नीचे की पंक्तियों में इसे और भी पुष्ट करना अभीष्ट समझता हूँ।

अकाट्य प्रमाण

मैं इसी लेख में पृष्ठ ३ पर यह उल्लेख कर चुका हूँ कि मुझे एक ऐसा रजिस्टर प्राप्त हुआ है जिसमें सन् १८७८ से १८८३ ईस्वी तक के अधिवेशनों की कार्यवाही अंकित है। यह रजिस्टर बहुत उपयोगी सामग्री है और इसे सभा में सुरक्षित रखा गया है। इस रजिस्टर में अंकित नीचे लिखी कार्यवाही को प्रथम गुजराती भाषा में नागराक्षरों में लिखकर पुनः उसका भाषानुवाद कर देता हूँ जिससे यह सिद्ध होगा कि आर्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा है।

चैत्र शुक्ल पक्ष ७मी वा० रवि सम्बत् १९३८ ता० २६मी मार्च सन् १८८२ अंग्रेजी।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ना, वार रवि सम्बत् १९३८, ता० १९मी मार्च सने १८८२ अंग्रेजी अे रोज आर्यसमाज रा० रा० गोविन्द विष्णु नी शाला मां सांज ना चार वागे मल्यो हतो। प्रथम वेद मंत्रे ईश्वर स्तुति अने गवैया अे स्तुति गायन करवा वाद वर्तमान पत्र मा आपेली जाहेर खबर प्रमाणे रवि कृष्ण राम इयाराये, 'देशोन्नति' विपग्र पर सुरस भाषण आप्यु हतुं। ते पछी बीजे दिवसे अेटले चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदानेवार सोम सम्बत् १९३८ ता० २०मी मार्च ने सने १८८२ ने रोजे आर्यसमाज नो जन्म दिवस होवा थी महोत्सव करवा मा आव्यो हतो। ते दीवसे सवारना आठ वागे सभाज ना नवा खरीद करेला मकान मां महोत्सव नो होम करवा मा आव्यो हतो, ते प्रसंगे। दक्षिणी शुक्ल... अने गुजराती शुक्ल वगैर कैट लाक वेदरक्षक ब्राह्मणो अे त्यां पधारी, ते मांगलीक क्रिया मां सामेल थई, स्वामी जी नी आज्ञानुसार होम क्रिया करी, होमाहुति आपी हती ते मा वेद मंत्र भणवा मां वे टुकड़ी पाडवा मा आवी हती। एक तरफ स्वामी जीना शिष्य ब्रह्मचारी गीरानन्द जी अने बीजी तरफ थी ऊपर जाणाजेल शुक्लो आदि लई बीजा ब्राह्मणो वेद मंत्रो नो घोष करी चारों दिशा तरफ थी सर्वे साथे आज्याहुती आपता हता। अे

प्रसंगे समाजस्थो अने बीजा बहार ना घणा सुज्ञ गृहस्थो पण आ शुभ क्रिया जोवाने, अने यज्ञ नारायण ना दर्शन करवा ने पधारया होता । ते क्रिया बरोबर त्रण कलाक समी चाली होती, अने पूर्णाहुति थयावाद शुक्ल वगैरे ब्राह्मणों ने यथानुसार दक्षिणा आपी सत्कार करवा मा आव्यो हतो । ते पछी तेज दीवसे तेज स्थले सांज ना पांच वागे महोत्सव नो सभा मली होती तेमा सुज्ञ विद्वानों, अने शेठ शाहुकारादि सज्जन गृहस्थो वीराज्याहता । अने स्वामी जी अ वेद विषय मां सुरस व्याख्यान आपी श्रोता जनो ने प्रसन्न कर्या होता । तथा तेमां श्रोता जनों ने स्पष्ट रीते दाखाव्युं हतुं के “वेद” अ सर्वविद्या ना मूल नो भंडारछे । अने ते ईश्वर प्रणोत अर्थात् ईश्वर दत्त ज्ञान छे । अने कर्त्ता कोई मनुष्य न थी पण अ ज्ञान नो द्रष्टा पूर्व ऋषी, मुनीओ थई गया छे । तथा अ वेद पुस्तक थी बीजूं कोई पुस्तक जूनूं आ भूगोल भरमां न थी अने अ वेद पुस्तक का बीजा कोई पण पुस्तकनुं प्रमाण के लीवेल्ला कोई आधार के मुल देखातो न थी । तथा तेमा जे कांई दशविलुंछे, तेमांनु कांई न्याय विरुद्धके असत्य के कोई वाघो लेवा जेवुं न थी । पण जे छे ते मनुष्य मात्र ने ग्रहण करवा जेवुं छे । अटले ते ने ईश्वर प्रणीत मानवामां कोई वाघ पण अवतो न थी । अने पूर्वथीज ऋषि मुनि आदि महात्मा ओ थी ते साधारण मनुष्य लगीना चारे वर्णना आर्य लोको ते ने ईश्वर प्रणीत मानवता आव्या छे— अटल हवे तेने वगर कारणे अने वगर दोषे (नहीं पढ़ा जाता) अने ग्राह्य छता छोड़ी देवाय अ अज्ञानतानुं अने दुराग्रहनुं कारण कहैवाय छे, अने तेवाज पुरुषों ने मनुस्मृति मां नास्तिक गणेल्ला अने मानेला छे । तथा अनाय अवी संज्ञा आपेली छे । अँवो ते भाषणनो सारांश हतो । अ भाषण थई रह्यावाद नारों वहाँचंवा मां आव्या होता, अने पछी कलाक आठ नी सुमारे अ महोत्सव नी सभा विशरजन थई होती, ने पछी बीजा सभा चैत्र शुक्ल पक्ष ३ जेवा बुध सम्बत् १९३८ ता० २२ मी मार्च सने १८८२ ने रोज सांजना पांच वागे अज स्थले फरीने मली होती अने ते दिवसे पण स्वामी जी अ वेद विषय मां विशेष व्याख्यान आप्युंहुतुं अने तेनो सारांश

पण तेज सिद्धतानो हतो । अने वेद मां जे जे विद्या प्रदर्शित थयली छे, ते नुं स्पष्टीकरण करयुं हतुं । अने ते दिवसे पण रात्री ना आठ वाजे समाज विशरजन थयो हतो । अने तेमा पण आना थी सभा की माफक सर्वे सज्जन गृहस्थो वीराज्या हता ।

भाषानुवाद

चैत्र शुक्ल पक्ष ७ मी वा० रवि सम्बत् १९३८ ता० २६ मी मार्च सन् १८८२ अंग्रेजी ।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष के वार रवि सम्बत् १९३८, ता० १९ मी मार्च सने १८८२ अंग्रेजी—इन दिन आर्यसमाज रा० रा० गोविन्द विष्णु की शाला में सांझ को चार वजे भिला था । प्रथम वेद मंत्र से ईश्वर स्तुति और गवैया के द्वारा गायन करने के बाद वर्तमान पत्र में दी गई जाहिर खबर के अनुसार रवि कृष्ण राम ईयाराम ने देशोन्नति, विषय पर सुरस भाषण दिया था । उसके पीछे दूसरे दिन अर्थात् चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा वार सोम सम्बत् १९३८ ता० २० मी० मार्च सन् १८८२ के रोज आर्यसमाज जन्म दिवस होने से महोत्सव करने में आया था । उस अवसर पर दक्षिण शुक्ल और गुजराती शुक्ल वगैरह कितने ही वेदरक्षक ब्राह्मणों ने वहां पधारकर उस मांगलिक क्रिया में शामिल होकर स्वामी जी की आज्ञानुसार होम क्रिया की, होमाहुति दी, उसमें वेद मंत्र पढ़ने में दो टुकड़ी बनाने में आईं थी । एक तरफ तो स्वामी जी के शिष्य ब्रह्मचारी गीरानन्द जी और दूसरी तरफ से ऊपर बताए गए शुक्ल आदि को लेकर दूसरे ब्राह्मण लोग वेद मंत्रों का घोष कर चारों दिशाओं की ओर से सभी साथ आज्याहुति दे रहे थे । इस प्रसंग पर समाजस्थ और दूसरे बाहर के बहुत से सुज गृहस्थ भी इस शुभ क्रिया को देखने और यज्ञनारायण का दर्शन करने के लिए आए थे, यह क्रिया लगभग तीन घण्टे तक चली थी और पूर्णाहुति हो जाने के बाद शुक्ल वगैरह ब्राह्मणों का यथानुकूल दक्षिणा देकर सत्कार करने में आया था । उसके बाद

उसी दिन उसी स्थल पर सायं पांच बजे महोत्सव की सभा मिली थी। उसमें सुज्ञ विद्वान, और सेठ साहूकार आदि सज्जन गृहस्थ लोग विराजमान थे। तथा स्वामी जी ने—“वेद विषय” में सुरस व्याख्यान देकर श्रोताओं को प्रसन्न कर दिया था और उसमें श्रोताओं को स्पष्ट रीति से दिखा दिया था कि वेद यह सर्व विद्याओं के मूल का भण्डार है। और यह ईश्वर-प्रणीत अर्थात् ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान है। इसका कर्त्ता कोई मनुष्य नहीं परन्तु इस ज्ञान के द्रष्टा पूर्व ऋषि मुनि लोग हो चुके हैं। तथा इस वेद की पुस्तक से प्राचीन कोई भूगोल भर में नहीं है। और इस वेद पुस्तक में दूसरी किसी पुस्तक का प्रमाण अथवा लिया गया कोई आधार अथवा मूल दृष्टिगत नहीं होता है तथा इसमें जो कुछ दिखलाया गया है उसमें कोई न्यायविरुद्ध अथवा असत्य बाधा लेने योग्य वस्तु नहीं है। बल्कि जो है वह मनुष्य मात्र के द्वारा ग्रहण करने योग्य है। इसलिए इसे ईश्वर प्रणीत मानने में कोई बाधा भी नहीं आती और पूर्व से ही ऋषि मुनि आदि महात्माओं से लेकर साधारण मनुष्य तक, चार वर्ण के आर्य लोग इसको ईश्वर प्रणीत मानते आये हैं। इसलिए अब उसे बिना कारण और बिना दोष (वहाँ पर मूल में दो शब्द पढ़ने में नहीं आए) और ग्राह्य होने पर छोड़ देना—यह अज्ञानता और दुराग्रह का कारण कहा जा सकता है और इन्हीं ही पुरुषों को मनुस्मृति में नास्तिक गिना और माना गया है और उन्हें अनाय—ऐसी संज्ञा दी गई है।

यह उनके (स्वामी जी के) भाषण का सारांश था। इस भाषण के हो जाने के बाद नारे लगाए गए। वाद में घण्टा लगभग आठ बजे महोत्सव की सभा समाप्त हुई थी। उसके बाद दूसरी सभा चैत्र शुक्ल पक्ष ३ बुधवार सम्बत् १९३८, ता० २२ मी मार्च सन् १८८२ के रोज सायं पांच बजे इसी स्थल पर फिर से मिली थी और तब भी स्वामीजी ने वेद विषय में ही व्याख्यान दिया था और उसका सारांश भी उसी प्रकार की सिद्धि का था और ये जो विद्या प्रदर्शित है उसका स्पष्टी-

करण किया था। और उस दिन भी रात्रि के आठ बजे समाज का विसर्जन हुआ था और उसमें भी इससे पूर्व सभा की माफिक सब सज्जन गृहस्थ उपस्थित थे।

इस कार्यवाही में स्पष्ट ही चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को आर्यसमाज का जन्म दिवस बतलाया गया है और उस दिन यज्ञ आदि महीत्सव किया गया और महर्षि का वेद पर भाषण हुआ—यह भी दर्शाया गया है। इससे बढ़कर और अकाट्य प्रमाण क्या हो सकता है ?

इसलिए यह निश्चित और सिद्ध है कि आर्यसमाज की स्थापना तिथि वहीं है जिसका निर्णय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली ने किया है और वह है चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् १९३१ विक्रमी, बुधवार ७ अप्रैल १८७५ ई०। आर्यसमाज का प्रथम अधिवेशन चैत्र शुक्ल पंचमी सम्वत् १९३१ शनिवार १० अप्रैल सन् १८७५ को हुआ था।

इसलिए चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ही आर्यसमाज की स्थापना तिथि है चैत्र शुक्ल पंचमी नहीं है।

नोट—आर्यसमाज की रजिस्ट्री का कागज भी मुझे प्राप्त हुआ और उसको मैंने देखा। यह १३ अप्रैल सन् १८८८ को मध्याह्न में २ बजकर ५५ मिनट पर प्रस्तुत किया गया था। इसके आधार पर कुछ लोगों ने कहा कि आर्यसमाज बम्बई की स्थापना की अंग्रेजी तारीख ७ मार्च सन् १८७५ बनती है। परन्तु सूक्ष्मता से देखने पर ज्ञात हुआ कि उस तारीख को जो बैठक महर्षि की अध्यक्षता में हुई थी वह नियमों की रचना के विषय में हुई। इस तारीख को आर्यसमाज की स्थापना नहीं हुई थी। अतः इस तारीख को आर्यसमाज की स्थापना की तारीख कहना गलत है।

सार्वदेशिक सभा द्वारा निर्धारित

आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संग की पद्धति

आर्यसमाजों के साप्ताहिक सत्संगों को अधिक उपयोगी, प्रभावोत्पादक और आकर्षक बनाने के लिए निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखा जावे:—

- १—साप्ताहिक सत्संगों का वातावरण आध्यात्मिक तथा समालोचना का स्थान न होना चाहिए और साप्ताहिक अधिवेशन में प्रबन्ध सम्बन्धी बातों की चर्चा, अन्तरंग सभा आदि के निश्चयों की मीमांसा तथा किसी अन्य प्रकार की भी विवादास्पद बातें नहीं होनी चाहिए ।
- २—साप्ताहिक सत्संग में सबको सपरिवार सम्मिलित होना चाहिए जिससे बच्चों पर भी धार्मिकता का असर पड़े ।
- ३—जो आर्यसमाज के सदस्य नहीं हैं उनको भी अधिवेशन में सम्मिलित करने का यत्न करना चाहिए । अतः यह आवश्यक है कि समाज-मन्दिर, उपासनागृह का स्वरूप धारण करे जिससे कोई भी धर्म-जिज्ञासु वहां से धर्म लाभ उठा सके ।
- ४—यज्ञ की वेदी पर प्राचीन वेश ही रहना चाहिए ।
- ५—आर्यसमाज मन्दिर में जिस स्थान पर साप्ताहिक अधिवेशन का कार्य होता हो वह स्थान अति शुद्ध, पवित्र, शान्त और आकर्षक हो, वहां अन्य सामान चारपाई, बिस्तरा या किसी भी प्रकार की ऐसी वस्तुएं न हों जिससे वह स्थान उपासनागृह प्रतीत न होकर

वस्तु भण्डार सा प्रतीत हो रहा हो। उस स्थान को साप्ताहिक अधिवेशन व्याख्यान, उपदेश कथा के लिए सुरक्षित कर दिया जावे।

साप्ताहिक सत्संग का समय

- १—साप्ताहिक सत्संग का समय प्रारम्भ में साधारणतया दो घन्टे से अधिक नहीं हो तो अच्छा होगा।
- २—अतः साप्ताहिक सत्संग के यज्ञ में स्वस्तिवाचन और शान्ति प्रकरण के मन्त्रों में से एक एक का पाठ एक एक सप्ताह किया जा सकता है।
- ४—समय भी ऐसा अनुकूल रखा जाये कि जिसमें नर-नारी अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित होकर लाभ उठा सकें।
- ४—देश-देशान्तर में एकता की दृष्टि से प्राचीन परम्परा के अनुसार शान्त वातावरण को ध्यान में रखते हुए प्रातःकाल का समय विशिष्ट समझा गया है। प्रायः अवकाश के कारण रविवार का दिन भी उपयुक्त ठहराया गया है।
- ५—अधिवेशन का समय दो घन्टे से बढ़ाकर तीन घन्टे तक किया जा सकता है।

साप्ताहिक सत्संग में प्रवचन

- १—प्रवचन सुयोग्य, वेदज्ञ विद्वानों से कराया जाये जिनका अपना जीवन अति पवित्र और उच्च हो।
- २—जिस विषय (वेदमन्त्र व्याख्या, आर्वाग्रन्थादि का पाठ, व्याख्यान आदि) पर वक्ता को बोलना हो उस पर एक सप्ताह भर पूर्व से निश्चय के अनुसार वक्ता ने विचार किया हो।
- ३—इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये कि सदस्यों में सच्ची भक्ति भावना और आध्यात्मिकता की निरन्तर वृद्धि होती जाये।
- ४—अनुभवी भक्त आर्य विद्वानों के उपदेशों से भक्ति-भावना वर्द्धक समस्याओं का समाधान लोग पा सकें।

- ५—इस विषय में विशेष जागरूक रहना चाहिए कि अधिवेशन में ऋषि और आर्यसमाज के मन्तव्य के विरुद्ध तो कोई बात नहीं कही जा रही है ।

वेद मन्त्र

- १—वेद मन्त्रों का उच्चारण सुयोग्य आर्य विद्वान् करें और दूसरे प्रेम से उन्हें सुनते हुए अपने उच्चारणों को शुद्ध बना लें ।
- २—संध्या, हवन, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन और शांतिप्रकरण के मन्त्रों के उच्चारण की अशुद्धियाँ दूर करने और उनका शुद्ध उच्चारण सिखाने के लिए आर्य समाजों में विशेष प्रबन्ध रहे ।
- ३—कम से कम एक वेद मन्त्र को साप्ताहिक सत्संग में कृष्णपट्ट पर अर्थ सहित एक विद्वान् लिखकर सब श्रोताओं को लिखवा दे, जिससे उनके वैदिक अर्थज्ञान की वृद्धि होती जाए ।
- ४—वेद मन्त्र का अर्थ लिखते समय ऋषि दयानन्द सरस्वती जी के वेद भाष्य को विशेषता देनी चाहिए ।
- ५—वेदमन्त्रों के अर्थ व्याख्याता लोग स्वेच्छा से निराधार न करें ।

साप्ताहिक सत्संगों में अधिक उपस्थिति

- १—उपर्युक्त कार्यक्रम को इतना रुचिकर बनाना चाहिए जिससे सबको स्वयं आकर्षण हो ।
- २—आर्यसमाज के प्रधान का कर्त्तव्य है कि वह अपने अधिकारियों की उपस्थिति का विशेष ध्यान रखें ।
- ३—मन्त्री आदि का कर्त्तव्य है कि वे समुदाय प्रतिनिधि दस संख्या के अनुसार जो अन्तरंग में है उस समुदाय के व्यक्तियों की उपस्थिति का विशेष ध्यान रखें । (संशोधित उपनियमों के अनुसार यह धारा अनावश्यक है)
- ५—सबका कर्त्तव्य है कि वे अपने निकटस्थ सदस्यों और इष्ट बन्धुओं की उपस्थिति अधिवेशन में रखें कि प्रत्येक की रुचि आने में बढ़े ।

अनुपस्थित व्यक्तियों के घरों पर तत्सम्बद्ध व्यक्ति जाकर उनके कुशल क्षेम पूछकर तथा न आने का कारण ज्ञात करके अधिवेशन में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित करें।

साप्ताहिक सत्संगों का कार्यक्रम :

समय दो घन्टे

१—संध्या हवन	३० मिनट
२—वेद मन्त्रों से प्रार्थना	५ "
३—ईश्वरभक्ति का भजन	५ "
४—वेदोपदेश	२० "

(इसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के वेदभाष्य को विशेषता दी जावे)

५—सत्यार्थप्रकाश या ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका क्रम से	१५ मिनट
६—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवनचरित्र का पाठ	१५ "
७—एक भजन	५ "
८—विशेष प्रवचनादि	२० "
९—आर्यसमाज के नियमों का पाठ	५ "
१०—ऋग्वेद के अन्तिमसूक्त का पाठ	२ "

दो घन्टे से अधिक समय लगाया जा सके तो विशेष प्रवचन का उचित प्रबन्ध किया जावे। इस कार्य के लिए विशेष वक्ता भी बुलाये जा सकते हैं और आर्य सदस्य भी पूर्व से तैयारी करके प्रवचन के द्वारा अपना अभ्यास और दूसरों का लाभ कर सकते हैं।

ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।

इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्त्या भर ॥ १

हे सुखों के वर्षक, सबके स्वामी, प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप संसार के सब पदार्थों को अपनी उचित व्यवस्था के अनुसार परस्पर मिलाते हो और फिर उनका वियोग भी आप ही करते हो, आप अपनी शक्तियों से इस धरती पर चमक रहे हो, हे ऐसे महान् सामर्थ्य वाले भगवान् ! आप हमें सब प्रकार के ऐश्वर्य दीजिये ।

संगच्छध्वं संबदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

देवा भागं यथा पूर्वं स जानाना उपासते ॥ २

हे पुरुषों ! तुम परस्पर मिलकर चलो, मिलकर बातचीत करो, जानी बनकर तुम अपने मनों को भी एक बनाओ, जैसे कि तुमने पहले विद्वान् देव पुरुष सम्यक् जानवान् और एक मति वाले होकर अपना भाग प्राप्त कर रहे हैं ।

समानो मन्त्र समितिः समानी,

समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।

समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः,

समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३

तुम्हारे गुप्त धिषयों के गम्भीर विचार मिलकर हों विचार के लिए तुम्हारी समाएं एक जैसी हों, जिनमें तुम सब मिलकर बैठ सको, तुम्हारा मनन मिलकर हो, निश्चय मिलकर हो, मैं तुम्हें मिलकर विचार करने का उपदेश देता हूं और तुमको पारस्परिक उपकार के लिए समान रूप से त्याग के जीवन में नियुक्त करता हूं ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४

तुम्हारे संकल्प और प्रयत्न मिलकर हों, तुम्हारे हृदय परस्पर सहायता से तुम्हारी भरपूर उन्नति हो ।

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज

के

नियम-उपनियम

प्रकाशक :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली—

॥ श्री गुरु ॥

सिद्धि सिद्ध

के

सिद्धि-सिद्धि

सिद्धि-सिद्धि

—सिद्धि-सिद्धि

संशोधित उपनियमों के प्रथम संस्करण का

प्राक्कथन

आर्यसमाज के उपनियम ५० वर्ष हुए जब बने थे। यद्यपि उनमें एक उपनियम यह भी था कि वर्ष-वर्ष पीछे विज्ञापन देकर उन्हें संशोधित किया जा सकता है परन्तु इस ओर आर्य समाजों का ध्यान ही नहीं गया। अब जब आवश्यकताओं ने विवश किया तो इनके संशोधन की ओर सार्वदेशिक सभा का ध्यान गया। उपनियमों के संशोधन के सम्बन्ध में प्रत्येक समाज और प्रान्तीय सभा से दो-दो बार सम्मतियां मंगाई गईं। एक बार की सम्मति के बाद एक पांडुलिपि उपनियमों की सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग सभा की स्वीकृति से बनाकर समस्त समाजों और प्रान्तिक सभाओं में भेजकर उनकी दुबारा सम्मति मांगी गई और इसी दुबारा आई हुई सम्मति पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की प्रथम अन्तरंग सभा उसके बाद उसकी नैमित्तिक साधारण सभा ने विचार किया और विचार के बाद उपनियम स्वीकृति के लिए उस सभा में उपस्थित किये गये जो समस्त आर्यसमाजों के सदस्यों की थी, जिनमें आर्य भी शामिल थे। यह सभा नियम पूर्वक एक मास से अधिक का नोटिस देकर बुलाई गई थी। इस सभा ने आवश्यक संशोधनों के बाद २६-१-१९३५ को उपनियमों को स्वीकार कर लिया। वे संशोधित और परिवर्धित नियम यही हैं जो इस नोट के द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं।

नारायण स्वामी

बलिदान भवन देहली

प्रधान

३०-१-१९३५

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली

द्वितीय संस्करण का प्राक्कथन

सन् १८७५ ई० में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना के साथ महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के कार्य-वहन के लिए कुछ नियम बनाये थे जिनकी संख्या २८ थी। आर्यसमाज के दस नियम जो उसके उद्देश्य हैं और महर्षि के द्वारा निर्मित हैं वे सर्वोपरि हैं और उनमें किसी प्रकार का संशोधन आदि करने का किसी को कोई अधिकार नहीं। कार्य-वहन के नियमों को उपनियम का नाम दिया गया है। इन २८ उपनियमों में एक उपनियम यह भी था कि वर्ष-वर्ष पीछे विज्ञापन देकर उन्हें संशोधित किया जा सकता है। इनका तीसरा नियम इस प्रकार था:—

‘इस समाज में प्रति देश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य समाज शाखा-प्रशाखा होंगे।’

यह तीसरा उपनियम ही सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना का प्रेरणा मन्त्र था। इसी आधार पर ३१ अगस्त १९०६ ई० को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई। सार्वदेशिक सभा के उद्देश्यों में ११वां उद्देश्य इस प्रकार है:—

‘आर्यसमाज के उपनियमों में आवश्यकतानुसार संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करना।’

आर्यसमाज के उपनियमों की धारा ४८ (वर्तमान संशोधित उपनियमों की धारा ४४) इस उद्देश्य के पूर्त्यर्थ है। इस प्रकार आर्यसमाज के उपनियमों में संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन का एकमात्र अधिकार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को ही प्राप्त है।

सार्वदेशिक सभा ने इन उपनियमों का संशोधन सन १९३५ में किया था। वे ही अब तक चल रहे थे। आवश्यकता अनुभव किए जाने

से इस सभा की अन्तरंग सभा ने संशोधन के प्रारूप का प्राक्कलन किया और आर्यसमाजों तथा समस्त प्रान्तीय सभाओं को उस प्रारूप को भेजकर उनकी सम्मति मंगवाई। सम्मति प्राप्त हो जाने पर उस पर पुनः अन्तरंग में विचार कर उसे सभा के नैमित्तिक अधिवेशन में रखा गया और नैमित्तिक अधिवेशन ने उसे स्वीकार किया। पुनः उस प्रारूप को आर्यों एवं आर्यसमाजों के सदस्यों की सभा में रखा गया। यह नैमित्तिक अधिवेशन और आर्य-समाज के सदस्यों की सभा एक मास से अधिक नोटिस देकर बुलाये गये थे। इस प्रकार सार्वदेशिक सभा ने दिनांक १८-७-१९७१ को उपनियमों को स्वीकार किया और संशोधित और परिवर्तित उपनियम ये ही हैं जो इस प्राक्कथन के द्वारा प्रकाशित किये जा रहे हैं। संशोधित उपनियम १ नवम्बर १९७१ से चालू समझे जायेंगे।

डा० दुःखनराम

प्रधान

ओ३म् प्रकाश त्यागी

मन्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

उपनियम

नाम

१—इस समाज का नाम आर्यसमाज होगा और न्यून से न्यून ११ सदस्य होने पर समाज बन सकेगा ।१

उद्देश्य

२—इस समाज के उद्देश्य वही हैं जो इसके दस नियमों में वर्णित हैं ।

आर्य सदस्य

३—जो व्यक्ति आर्यसमाज में नाम लिखवाना चाहे और समाज के उद्देश्यों के अनुकूल आचरण स्वीकार करे वह आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकता है परन्तु उसकी आयु १८ वर्ष से न्यून न हो । इस प्रकार जो आर्य समाज में प्रविष्ट हो वह 'आर्य सदस्य' कहलायेगा । परन्तु कोई व्यक्ति एक समय में एक ही समाज का सदस्य हो सकता है ।

आर्यसमाज में नाम लिखवाने के लिए मन्त्री के पास इस प्रकार का पत्र लिखना चाहिए ।

“मैं प्रसन्नतापूर्वक आर्यसमाज के उद्देश्यों को (जैसा कि नियमों में वर्णन किये गये हैं) तथा मन्त्रव्यों एवं सिद्धान्तों को (जो वेदों के आधार

१. टिप्पणी—आर्यसमाज शब्द से 'महिला आर्यसमाज भी अभिप्रेत है और इसकी भी पुरुषों और स्त्रियों से बने समाज जैसी ही वैधानिक स्थिति होगी ।

पर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में लिखे गये हैं) मानता और उनके अनुकूल आचरण स्वीकार करता हूँ । मेरा नाम आर्यसमाज में लिख लेवें ।”

परन्तु अन्तरंग सभा को अधिकार रहेगा कि किसी विशेष हेतु से उसका नाम आर्यसमाज में लिखना स्वीकार न करे । यदि अन्तरंग सभा प्रवेश पत्र को अस्वीकार करे तो अन्तरंग को सूचना देकर प्रान्तीय सभा की अन्तरंग सभा में अपील हो सकेगी । यदि प्रान्तीय सभा के निर्णय से सन्तोष न हो तो प्रान्तीय सभा की न्याय सभा और अन्ततः सार्वदेशिक सभा की न्याय सभा में अपील हो सकेगी ।

आर्य सभासद्

४—(क) जिनका नाम किसी आर्यसमाज में सदाचार पूर्वक दो वर्ष तक अंकित रहा हो और वह अपनी आय का शतांश मासिक वा वार्षिक अथवा २५०) वार्षिक वा अधिक धन समाज को देता रहा हो और जिसकी उपस्थिति साप्ताहिक सत्संगों में कम से कम २५ प्रतिशत हो तो वह आर्य सभासद् माना जा सकता है ।

(ख) आर्यसमाज में दो वर्ष भर नाम अंकित रहने का नियम समाज की स्थापना के तीसरे वर्ष से लागू होगा ।

अन्तरंग सभा किसी विशेष हेतु से चन्दा न दे सकने अथवा शतांश से न्यून देने वाले को आर्य सभासद् बना सकती है । परन्तु उनकी संख्या उक्त आर्य सभासदों की संख्या के ५ प्रतिशत तक हो सकती है और अंश पूर्णांक माना जायेगा । आर्य संस्थाओं को (चाहे वे आर्यसमाज के अन्तर्गत हो या न हो) धन देना शतांश न होगा ।

विशेष अवस्थाओं में अन्तरंग सभा किसी व्यक्ति के लिए उपस्थिति के नियम को शिथिल कर सकती है परन्तु उनकी संख्या ५ प्रतिशत से अधिक न होगी । आर्यसमाज का सदस्य किसी भी आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में सम्मिलित हो लेवे तो उसकी उपस्थिति स्थानीय आर्य-

समाज में मान ली जाएगी परन्तु जिस समाज में सदस्य साप्ताहिक सत्संग में उपस्थित रहे उस समाज द्वारा १ मास के भीतर स्थानीय समाज को इस विषय की सूचना देनी होगी ।

विशेष अवस्थाओं और संख्या का निर्णय करना समाज की अन्तरंग का काम है । सदस्य का नगर या ग्राम से बाहर होना, रुग्ण होना वा किसी ऐसी विवशता में ग्रस्त होना जिसके विषय में अन्तरंग सभा को पूर्ण सन्तोष हो विशेष अवस्थाएं समझी जा सकती हैं प्रमुखतः ऐसी छूट के अधिकारी वे ही महानुभाव हैं जिनके जीवन में क्रियात्मक रूप से धर्माविलम्बन पाया जाता हो तथा कम से कम पिछले वर्ष उनके जीवन का कुछ भाग आर्यसमाज और वैदिक संस्कृति के प्रचार में व्यय हुआ हो ।

(ग) सम्मति देने का अधिकार केवल आर्य सभासदों को होगा ।

अन्तरंग सभा प्रतिवर्ष ऐसे आर्य सभासदों के नाम निर्वाचन से एक मास पूर्व रजिस्टर में अंकित करेगी और ऐसे सदस्यों की सूची आर्यसमाज मन्दिर में तुरन्त टांग दी जावेगी ।

(घ) उपधारा (क) में प्रयुक्त सदाचार की परिभाषा इस प्रकार है—

“संध्या आदि नित्य कर्म, शुद्ध वृत्ति, वैदिक संस्कार, पत्नीव्रत वा पतिव्रत आदि सदाचार है । व्यभिचार, मद्यादि मादक द्रव्यों और माँसादि अमक्ष्य पदार्थों का सेवन, जुआ, चोरी, छल-कपट, रिश्वत आदि दुराचार है ।

(च) स्त्रियों को आर्य सभासद् बनने के लिए यदि उनकी आय अपने संरक्षक वा पति की आय से पृथक् न हो तो संरक्षक वा पति की आय के शतांश का १/५ देना काफी होगा ।

५—जो आर्य सभासद् आर्यसमाज के उद्देश्यों अथवा वैधानिक नियमों के विरुद्ध आचरण और व्यवहार करेगा उसको आर्यसमाज की अन्तरंग सभा स्थगित और साधारण सभा आर्य सभासदी से पृथक् कर सकती है किन्तु अन्तरंग या साधारण सभा अपना निश्चय करने से पूर्व सम्बद्ध आर्य सभासद् को अपनी ओर से स्पष्टीकरण करने की

पूर्ण सुविधा प्रदान करेगी। ऐसे स्थगित या पृथक् किये गये व्यक्ति को प्रान्तीय सभा में इस निर्णय के विरुद्ध अपील करने का अधिकार होगा। प्रान्तीय सभा का अधिकार होगा कि वह इस निर्णय को स्थगित करे या पलट दे।

६—आर्यसमाज में होने वाली सभाएं दो प्रकार की होंगी :—

(१) धार्मिक, (२) प्रबन्धक।

धार्मिक सभाएं (४) प्रकार की होंगी :—

(१) दैनिक, (२) साप्ताहिक,
(३) वार्षिक (४) नैमित्तिक।

प्रबन्धक सभाएं दो प्रकार की होंगी :—

(१) वार्षिक (२) नैमित्तिक।

धार्मिक सभा

७—दैनिक—यह सभा प्रतिदिन सम्मिलित संध्या, हवन, कथा और उपदेश आदि के लिए हो सकेगी।

साप्ताहिक—यह सभा प्रत्येक सप्ताह में एक बार हुआ करेगी। इसमें संध्या, हवन, वेदोपदेश, प्रार्थना, भजन, उपदेश आदि और अन्त में ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त का उच्च स्वर में सम्मिलित पाठ हुआ करेगा।

टिप्पणी—जो कोई समाज सम्बन्धी मुख्य बात सभा के जानने योग्य हो वह भी इस सभा में बताई जायेगी।

वार्षिक—वार्षिक सभा (वार्षिकोत्सव) विशेष रूप से धर्म प्रचार करने और समाज में अधिक उत्साह लाने के लिए वर्ष में एक बार की जाएगी।

नैमित्तिक—किसी आवश्यक कार्य के लिए जब-जब प्रधान या मन्त्री

उचित समझें, यह सभा की जावेगी । अथवा अन्तरंग सभा के २/३ सदस्य चाहें या साधारण सभा का १/३ भाग चाहे और मन्त्री व प्रधान को लिखें तब भी यह सभा की जायेगी ।

प्रबन्धक सभा

८—वार्षिक—यह सभा प्रतिवर्ष नीचे लिखे प्रयोजनों के लिए हुआ करेगी :—

१. अधिकारियों, अन्तरंग सदस्यों, प्रान्तीय सभा के लिए प्रतिनिधि सदस्यों (जब अपेक्षित हो) तथा आय-व्यय लेखा निरीक्षक के निर्वाचन के लिए ।
२. समाज के पिछले वर्ष का वृत्तान्त सुनने आय-व्यय स्वीकार करने तथा आय व्यय का आनुमानिक लेखा (बजट) बनाने के लिए ।
३. अन्तरंग सभा के निश्चयों के विरुद्ध अपील सुनने के लिए ।
४. उन विषयों का निर्णय करने के लिये, जिन्हें अन्तरंग सभा ने निर्णयार्थ भेजा हो ।
५. इस सभा के होने के समय आदि का विज्ञापन १५ दिन पहले दिया जायगा जिसमें प्रवेशनीय विषयों के विवरण स्पष्ट लिखे जायेंगे ।

चुनाव लिखित सम्मति (पत्रियों) द्वारा हुआ करेगा और सर्वसम्मति होने पर हाथ उठाकर भी हो सकेगा । किसी झगड़े की अवस्था में अन्तिम फैसला प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का माननीय होगा ।

नैमित्तिक

९—यह सभा जब कभी आवश्यकता हो, किसी विशेष काम के लिये

नीचे लिखी दशा में की जायेगी:—

१. जब प्रधान चाहें, और मन्त्री को आज्ञा दें ।
२. जब अन्तरंग सभा चाहे ।
३. जब आर्य सभासदों का दसवां भाग वा तीन आर्य सभासद, जो भी अधिक हों, चाहें और इस निमित्त मन्त्री के पास विचारणीय विशेष महत्वपूर्ण विषय को स्पष्ट शब्दों में लिखकर भेजें तो इस दशा में आवेदन-पत्र प्राप्ति के १५ दिन के भीतर अधिवेशन बुलाना प्रधान और मन्त्री का कर्त्तव्य होगा । यदि प्रधान के परामर्श से नैमित्तिक, अधिवेशन बुलाने के लिये विज्ञापन नियत अवधि के भीतर न निकाला जाये तो आवेदन-पत्र देने वाले आर्य सभासद् प्रान्तीय सभा को सूचना देकर नियमानुसार अधिवेशन बुला सकेंगे ।

अन्तरंग सभा

- १०—समाज के सब कार्यों के प्रबन्ध के लिये अन्तरंग सभा नियुक्त की जायेगी । उसमें दो प्रकार के सभासद् होंगे—१—अधिकारी, २—अन्तरंग द्वारा निर्वाचित जितने आर्य सभासद् घोषित हों उनके दश प्रतिशत तक निर्वाचित सभासद् । इस दश प्रतिशत में अधिकारियों की संख्या गणना में न आवेगी ।
- ११—वर्ष-वर्ष के पीछे अन्तरंग सभा के अधिकारी और आय-व्यय लेखा निरीक्षक वार्षिक साधारण सभा में फिर से नियत किये जावेंगे और कोई पुराना अधिकारी सर्वसम्मति होने के सिवाय निरन्तर ३ वर्ष से अधिक एक पद पर न चुना जा सकेगा ।
- १२—जब वर्ष के पहले किसी अधिकारी का स्थान रिक्त (खाली) हो तो अन्तरंग सभा स्वयं उसके स्थान पर किसी और योग्य पुरुष को नियत कर सकेगी ।

१३—अन्तरंग सभा कार्य के प्रबन्ध निमित्त कोई उचित व्यवस्था कर सकती है परन्तु वह आर्य समाज के उप-नियमों और दस नियमों के विरुद्ध न हो ।

१४—अन्तरंग सभा किसी विशेष कार्य के लिए अपने में से कुछ सभा-सदों, अन्य आर्य सभासदों वा विशेष गुण रखने वाले आर्य सदस्यों को मिला कर उप सभा नियत कर सकती है ।

१५—अन्तरंग सभा का कोई सभासद् मन्त्री को एक सप्ताह पहले विज्ञापन दे सकता है कि कोई विषय सभा में निवेदन किया जाये और यह विषय प्रधान की आज्ञानुसार निवेदन किया जायेगा परन्तु जिस विषय के निवेदन करने में अन्तरंग सभा के ५ सभासद् या १/३ भाग (जो भी संख्या न्यून हो) सम्मति दे, वह अवश्य निवेदन करना पड़ेगा ।

१६—एक मास में अन्तरंग सभा एक बार अवश्य हुआ करेगी और प्रधान की आज्ञा से वा जब अन्तरंग सभा के ५ सभासद् या १/३ भाग (जो संख्या न्यून हो) मन्त्री को पत्र लिखें तब भी हो सकती है ।

अधिकारी

१७—अधिकारी ७ प्रकार के होंगे :—

- | | | |
|------------------------|---------------|-------------------|
| १—प्रधान, | २—उपप्रधान, | ३—मन्त्री, |
| ४—उपमन्त्री, | ५—कोषाध्यक्ष, | ६—पुस्तकाध्यक्ष । |
| ७—अधिष्ठाता आर्य वीरदल | | |

१७—(ख) उप-प्रधान, उप-मन्त्री और पुस्तकाध्यक्ष इन पदों पर आवश्यकता होने से एक से अधिक व्यक्ति नियत हो सकते हैं और जब किसी पद पर एक से अधिक व्यक्ति निर्वाचित हों तो अन्तरंग सभा उन्हें काम बांट सकेगी ।

इस धारा के अन्त में निम्नलिखित टिप्पणियां बढ़ायी जाये ।

आर्यसमाज के अधिकारी, अन्तरंग सभासद् एवं आर्य समाज की किसी भी संस्था का प्रमुख अधिकारी बनाये जाने से पूर्व आर्य सभासदी की अवधि निम्न प्रकार होगी:—

क—आर्य समाज का प्रधान, मन्त्री, अथवा आर्य समाज की किसी भी संस्था का प्रमुख अधिकारी अथवा उसकी प्रबन्धकारिणी समिति का अध्यक्ष, मन्त्री अथवा प्रबन्धक बनाये जाने से पूर्व वह व्यक्ति न्यूनातिन्यून ३ वर्ष तक निरन्तर आर्य सभासद् रहा हो ।

ख—प्रधान एवं मन्त्री के अतिरिक्त अन्य अधिकारी एवं अन्तरंग सभा का साधारण सभासद् बनाये जाने से पूर्व वह व्यक्ति न्यूनातिन्यून दो वर्ष तक निरन्तर आर्य सभासद् रहा हो ।

ग—आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के प्रत्येक सदस्य एवं आर्य समाज की किसी भी संस्था के प्रमुख अधिकारी पद के हेतु आवश्यक होगा कि आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में उसकी उपस्थिति न्यूनातिन्यून ३३ प्रतिशत रही हो ।

प्रधान

१८—प्रधान के नीचे लिखे अधिकार और कर्तव्य होंगे:—

१—प्रधान अन्तरंग सभा और समाज की सब सभाओं का सभापति समझा जावेगा ।

२—सदा समाज के कामों के यथावत् प्रबन्ध करने में और आर्य समाज की उन्नति और रक्षा में तत्पर रहेगा । समाज के समस्त कामों को देखेगा कि नियमानुसार किये जाते हैं वा

नहीं और स्वयं नियमानुसार चलेगा ।

३—यदि कोई विषय तात्कालिक और आवश्यक प्रतीत हो तो उसका यथोचित प्रबन्ध उसी समय करे और उसके बिगड़ने में उत्तरदाता वही होगा ।

४—प्रधान अपने प्रधानत्व के कारण उन सब उप-सभाओं का जिनका अन्तरंग सभा निर्माण करे सभासद् होगा ।

१६—उप-प्रधान, प्रधान के अनुपस्थित होने पर उसका प्रतिनिधि होगा और समाज के सब कामों में प्रधान की सहायता देना उसका मुख्य काम होगा । यदि एक से अधिक उप-प्रधान हों तो उनमें से किसी एक उप-प्रधान को प्रधान मुख्य उप-प्रधान नियत कर सकेगा ।

मन्त्री

२०—मन्त्री के नीचे लिखे हुए कर्तव्य और अधिकार होंगे:—

१—अन्तरंग सभा तथा प्रधान की आज्ञानुसार समाज के सब कार्यों को चलाना और समाज की ओर से सबके साथ पत्र व्यवहार करना और समाज सम्बन्धी चिट्ठी और सब प्रकार के विशिष्ट पत्रों को संभाल कर रखना ।

२—समाज की सभाओं का वृत्तान्त लिखना और दूसरी सभा होने से पहले ही उसका वृत्तान्त पुस्तक में लिखना वा लिखवा देना ।

३—मासिक अन्तरंग सभाओं में उन आर्य सदस्यों वा आर्य सभा-सदों के नाम सुनाया करना जो पिछली मासिक सभा के बाद आर्य समाज में प्रविष्ट हुए हों या उससे पृथक् हुए हों ।

४—सामान्य प्रकार से समाज के भृत्यों के काम पर दृष्टि रखना और समाज के नियम उपनियम और व्यवस्थाओं के पालन

पर ध्यान रखना ।

५—आर्य समाज की संस्थाओं के (यदि कोई हों) प्रबन्ध पर सामान्य प्रकार से दृष्टि रखना ।

६—प्रत्येक सभा में नियत काल पर आना और वरावर ठहरना ।

उप-मन्त्री

२१—मन्त्री के अनुपस्थित होने पर उसका प्रतिनिधि होगा और समाज के सब कामों में मन्त्री को सहायता देना उसका मुख्य काम होगा ।

कोषाध्यक्ष

२२—कोषाध्यक्ष के नीचे लिखे कर्त्तव्य और अधिकार होंगे:—

(१) समाज की सब आय का लेना, उसकी रसीद देना और उसको यथोचित, सुरक्षित रखना वा रखवाना और कुछ भी धन बिना रसीद लिए और बिना लेखबद्ध आज्ञा प्राप्त किए किसी को न देना ।

(२) किसी को अन्तरंग सभा की आज्ञा बिना रुपया न देना वरन् मन्त्री और प्रधान को भी उस परिमाण से जितना कि अन्तरंग सभा ने उनके लिये नियत किया हो अधिक न देना और उस धन के उचित व्यय के लिये वही अधिकारी जिसके द्वारा वह व्यय हुआ हो उत्तरदाता होगा ।

(३) सब धन के आय-व्यय का रीति-पूर्वक बहीखाता रखना और प्रतिमास जांच करा के अन्तरंग सभा में हिसाब को बहीखाते समेत स्वीकारी के लिए उपस्थित करना ।

पुस्तकाध्यक्ष

२३—पुस्तकाध्यक्ष के कर्त्तव्य ये होंगे:—

पुस्तकालय में समाज की जो स्थिर पुस्तक और

विक्रेय पुस्तक हों, उन सबकी रक्षा करे और पुस्तकालय सम्बन्धी हिसाब-किताब रखे और पुस्तकों का लेन-देन, मंगवाने और बेचने तथा पुस्तकालय सम्बन्धी अमानत के रखने का काम भी करे ।

टिप्पणी—स्थिर वा विक्रय पुस्तकें अन्तरंग सभा की स्वीकारी से
(१५) मंगाई जावेंगी ।

मिश्रित

२४—सब आर्य सभासदों की सम्मति पत्र द्वारा निम्नलिखित दशाओं में ली जावेगी

(१) जब अन्तरंग सभा का यह निश्चय हो कि समाज की भलाई के लिए सब आर्य सभासदों की सम्मति जाननी चाहिए ।

(२) जब सब आर्य सभासदों का $\frac{1}{4}$ भाग या तीन सभासद (जो संख्या अधिक हो) इस निमित्त मन्त्री के पास पत्र लिखकर भेजें ।

(३) जब बहुत से व्यय-सम्बन्धी वा प्रबन्ध सम्बन्धी वा व्यवस्था सम्बन्धी मुख्य प्रस्ताव करने हों ।

२५—जब किसी सभा में कुछ समय के लिए सभापति उपस्थित न हो तो उसके स्थान में उस समय के लिए अपने में से किसी योग्य पुरुष को वह सभा सभापति नियत कर सकती है ।

२६—यदि नियमानुसार वार्षिक साधारण सभा में निर्वाचन न हो सके तो अधिक से अधिक ६ मास तक पुराने अधिकारी कार्य करते रहेंगे । यदि इस अवधि में निर्वाचन न हो सके तो प्रांतीय प्रति-निधिसभा का प्रधान २ मास के भीतर उचित प्रबन्ध कर दे

२७—सब सभाओं और उपसभाओं का वृत्तान्त यथासम्भव आर्य भाषा तथा देवनागरी लिपि में लिखा जाया करेगा और उसको यदि कोई आर्य सभासद् चाहे तो मन्त्री, प्रधान की अनुमति लेकर, उसे दिखला दिया करेगा ।

नोट—आर्यावर्त से बाहर के समाजों में जरूरत होने पर आर्य भाषा में वृत्तान्त लिखने का नियम शिथिल भी हो सकता है ।

२८—सब सभाओं का काम तब आरम्भ होगा जब १/३ (एक तिहाई) सभासद् उपस्थित हों ।

२९—(क) सब सभाओं और उपसभाओं के सारे काम बहुपक्षानुसार निश्चित होंगे ।

(ख) प्रधान के साधारण वोट (मत) के अतिरिक्त एक दूसरा निर्णायक वोट भी होगा ।

३०—आर्य का दशांश स्थिरनिधि में रक्खा जायेगा ।

३१—सब आर्य सदस्यों और आर्य सभासदों को संस्कृत एवं आर्य भाषा अवश्य जाननी चाहिए ।

३२—सब आर्य सदस्यों और आर्य सभासदों का साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित होना मुख्य कर्तव्य होगा ।

३३—सब आर्य सदस्यों और आर्य सभासदों को उचित है कि लाभ और आनन्द के समय समाज पर भी दृष्टि रखें और उसकी धनादि से सहायता किया करें ।

३४—सब आर्य सदस्यों और आर्य सभासदों को उचित है कि शोक और दुःख के समय में परस्पर सहायता करें और आनन्द उत्सव में निमन्त्रण पर सम्मिलित हों, छोटाई बड़ाई न गिनें ।

३५—यदि कोई आर्य भाई किसी हेतु से संकट में हो वा किसी की दुःखी विधवा या सन्तान अनाथ हो जावे और उसका किसी प्रकार जीवन निर्वाह न हो सकता हो और आर्यसमाज को, यह निश्चय

हो जाये तो आर्यसमाज उसकी रक्षार्थ यथाशक्ति यथोचित प्रबन्ध करे ।

३६—सार्वदेशिक सभा द्वारा बनाये गये सम्पूर्ण नियम जिनमें न्याय सभा का विधान भी सम्मिलित है आर्य समाजों पर लागू होंगे ।

३७—निम्नलिखित कारणों से अधिकारी और अन्तरंग सभासदों के पद रिक्त समझे जायेंगे:—

१—मृत्यु होने पर ।

२—विक्षिप्त होने पर ।

३—पद परित्याग करने पर ।

४—यदि कोई व्यक्ति आर्य न्याय सभा अथवा राजकीय न्यायालय के निर्णयानुसार किसी ऐसे अपराध के लिए दण्डित हुआ हो जो अन्तरंग की सम्मति में उस सभासद् को सभासद् रहने के अयोग्य सिद्ध करे ।

३८—प्रधान किसी विशेष अवस्था में अन्तरंग सभा की अनुमति लेकर किसी भी अधिकारी को स्थगित कर सकता है । परन्तु अन्तिम निर्णय के लिये १५ दिन के अन्दर नैमित्तिक साधारण सभा बुलानी होगी । यदि ऐसी सभा न बुलाई गई तो अधिकारी को स्थगित करने की आज्ञा निरस्त समझी जायेगी ।

३९—प्रधान को अपने पद से च्युत करने के लिए साधारण सभा में प्रस्तुत अविश्वास के प्रस्ताव का कम से कम ७५ प्रतिशत मतों से स्वीकृत होना आवश्यक होगा ।

अविश्वास प्रस्ताव के पारित हो जाने के तुरन्त उपरान्त वह अपने पद से पृथक् हो गया समझा जायेगा ।

ऐसे प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के लिए न्यून से न्यून आर्य-सभासदों के १/२ के हस्ताक्षर होने आवश्यक होंगे ।

४०—प्रत्येक प्रांत में एक मुख्य सभा होगी जिसका नाम 'आर्य प्रतिनिधि सभा' होगा । सब समाजों की व्यवस्था उसी के आधीन तथा

अनुकूल होगी। यह सभा अपने नियमादि स्वयं बनावेगी।

४१—स्थानीय समाज की ओर से प्रांतीय प्रतिनिधि सभा की किसी आज्ञा वा व्यवस्था का घोर और निरन्तर विरोध होने अथवा स्थानीय समाज में ऐसी अव्यवस्था हो जाने पर जो प्रांतीय सभा की सम्मति में समाज के लिए हानिकर हो, प्रांतीय सभा के प्रधान को अपनी अन्तरंग सभा की अनुमति से अधिकार होगा कि उस स्थानीय समाज के संगठन को, नियत समय के लिए स्थगित कर देवे और समाज तथा समाज के आधीन संस्थाओं का प्रबन्ध उचित रीति से करावे।

४२—समस्त आर्य जगत् के लिए एक मुख्यतम सभा होगी जिसका नाम 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा' होगा। समस्त आर्य प्रतिनिधि सभाओं के पुरुषार्थ को संयुक्त करके आर्य जगत् की समुचित व्यवस्था करना उसका मुख्य कर्त्तव्य होगा। यह सभा अपने नियमादि स्वयं बनायेगी।

४३—प्रांतीय सभाओं से सम्बद्ध आर्यसमाजों की रजिस्ट्री प्रांतीय सभाओं से पृथक् नहीं हो सकती। यदि कोई समाज अपनी सम्पत्ति और संगठन की रजिस्ट्री पृथक् करायेगा और प्रांतीय सभा चाहे तो वह धारा ४१ के अनुसार उस समाज के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है।

४४—ये उपनियम आवश्यकतानुसार 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' द्वारा यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे, बढ़ाए वा घटाए जा सकते हैं।

किसी भी आर्य समाज को या प्रांतीय सभा को इन उपनियमों को घटाने, बढ़ाने अथवा इनमें संशोधन करने का अधिकार नहीं है।



आर्य समाज

का

प्रवेश-पत्र

सेवा में:—

श्री मन्त्री जी आर्य समाज

श्रीमान् जी,

नमस्ते !

मैं प्रसन्नता पूर्वक आर्य समाज के उद्देश्यों को (जैसा कि नियमों में वर्णन किये गये हैं) तथा मन्तव्यों और सिद्धान्तों को (जो वेदों के आधार पर ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में लिखे गये हैं) मानता और उनके अनुकूल आचरण स्वीकार करता हूँ। मेरा नाम आर्य समाज में लिख लेवें।

नाम.....

पिता का नाम.....आयु.....

पूरा पता.....

वृत्ति (आजीविका).....

मासिक चन्दा (जो मेरी आय का शतांश है).....

ता०.....महीना.....सन्.....

प्रार्थी के हस्ताक्षर.....

स्वीकृति की तिथि.....

आर्यसमाज के दस नियम

- १—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।
- २—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।
- ३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
- ४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।
- ५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए ।
- ६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।
- ७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।
- ८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।
- ९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।
- १०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

आर्यसमाज के दस नियमों की व्याख्या

(रघुनाथ प्रसाद पाठक)

नियम १

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।

प्रथम नियम में सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर माना गया है ।

आदि मूल (first cause) निमित्त या चेतन कारण को कहते हैं । ऋग्वेदादि माष्य भूमिका के सृष्टि विद्या प्रकरण में पृष्ठ १२७ पर लिखा है “सर्वादि निमित्त कारणंपुरुष एवास्ति । अर्थात् इस सबका आदि निमित्त कारण पुरुष (परमेश्वर ही है । अब यदि” आदि मूल का अर्थ आदि निमित्त कारण समझ लिया जाय तो त्रैत सिद्धान्त का समावेश प्रथम नियम में अपने आप हो जाता है । साधारण जनों के लिये यहाँ परमेश्वर को विद्या तथा विद्या के विषय अर्थात् संसार का आदि कारण बताया गया है, परन्तु विशेष विचार करने वालों के लिए ईश्वर निमित्त कारण ही है । उपादान तथा सामान्य कारणों का स्पष्ट वर्णन नहीं किया गया तो उनका निषेध भी नियम के किसी शब्द द्वारा नहीं होता । ऋग्वेदादिमाष्य भूमिका के ऊपर दिये गये उद्धरण से प्रतीत होता है कि “आदि मूल” का अभिप्राय “आदि निमित्त” कारण है ।

नियम एक में (१) सब सत्य विद्या (२) जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं इन दो वस्तुओं का निमित्त कारण परमेश्वर को कहा गया है । सत्य विद्या का अर्थ है वह ज्ञान जो तीन काल में एक सा रहता है और यह ज्ञान ईश्वर, जीव, और प्रकृति का ज्ञान है । इस नियम में परमेश्वर को आदि मूल कारण कहा गया है जिसका अर्थ है कि वह उसी (ईश्वर,

व्याख्या—यह व्याख्या टैक्ट के रूप में भी प्रकाशित हो चुकी है ।

जीव और प्रकृति) ज्ञान का आदि कारण है। यह अर्थ कदापि नहीं है कि परमेश्वर इन तीन वस्तुओं का भी आदि कारण है क्योंकि ये सब नित्य हैं। इसी सत्य विद्या का नाम “वेद” है। इस प्रकार परमेश्वर वेद का आदि मूल है इसलिए ईश्वर को आदि गुरु भी कहते हैं।

विद्या का अर्थ है अपरिवर्तनीय ज्ञान। परिवर्तनीय वस्तु क्या है? कार्य रूप प्रकृति, इसी को सृष्टि कहते हैं। इसीलिये विद्या जगत् के ज्ञान को कहते हैं। इसी ज्ञान से कनुष्य को सम्पूर्ण जगत् का ज्ञान हुआ करता है। परिणाम यह कि परमेश्वर जगत् का निमित्त कारण है। उपादान कारण प्रकृति हैं। संक्षेप में परमेश्वर वेद और जगत् का निर्माता आदि कारण है।

नियम २

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता हैं। उसी की उपासना करनी योग्य है।

दूसरे नियम में : ईश्वर को निराकार सर्व शक्तिमान, न्यायकारी इत्यादि कहकर अद्वैतवाद का खण्डन किया गया है, अद्वैतवाद में गुण गुणी का अभेद माना जाता है, परन्तु यहां ईश्वर स्पष्ट गुणी हैं, वह शक्ति नहीं है शक्तिमान हैं। न्याय नहीं न्यायकारी हैं। ईश्वर की एक ऐसी ऐसी सुन्दर गुणावली का वर्णन करने के पश्चात् जिसके पाठ करने मात्र से ही उपासना का भाव पैदा हो जाता है, अन्त में कहा है “उसी की उपासना करनी योग्य है।” इसी एक शब्द से अनेकेश्वरवाद का निराकरण हो गया है।

धर्म के इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि मूर्तिपूजन, अवतारवाद और अनेकेश्वरवाद हर जगह साथ-साथ प्रचलित हुए हैं। ईसाइयों में त्रिमूर्ति के, हिन्दुओं में असंख्य देवी देवताओं के, ऐसे ही

अन्य धर्मों में भी अनेक उपास्यों के पैदा हो जाने पर ही मूर्ति पूजा का विधान चला है। आर्यसमाज की पूजाविधि अमूर्त ईश्वर का ध्यान है। ऋषि दयानन्द स्थान-स्थान पर परमेश्वर ही की उपासना पर बल देते हैं। वहां 'ही' का अभिप्राय परमेश्वर के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ को साधन अथवा साध्य रूप में उपासना का विषय बनाने का स्पष्ट निषेध होता है। ऐसे ही इस नियम में भी समझना चाहिए। दूसरे शब्दों में इस नियम की भाषा ऐसी है जिससे अद्वैतवाद, अनेकेश्वरवाद, अवतारवाद तथा मूर्तिपूजा का अपने आप निराकरण हो जाता है। एक स्वाध्यायशील सभासद् इन दार्शनिक तत्वों से धीरे-धीरे अपने आप परिचित होता जाएगा। आरम्भ में उससे उन सिद्धान्तों पर स्पष्ट हस्ताक्षर तो नहीं कराये गए परन्तु इनकी स्वीकृति की भूमिका बांध दी गई है।

इस नियम में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है वह यह कि परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, आदि सत्तात्मक गुणों के कारण सगुण और निराकार, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि आदि अमावात्मक गुणों के कारण निर्गुण भी है।

इस नियम में आए 'सर्वशक्तिमान' शब्द का भाव यह है कि ईश्वर अपने सृष्टि नियमों के अन्तर्गत रहता हुआ अपनी असीम शक्तियों को प्रयोग में लाया करता है। अपने नियम का स्वयं भी कभी उल्लंघन नहीं करता अर्थात् ईश्वर यह नहीं कर सकता कि अन्याय करे या अपने जैसा दूसरा ईश्वर उत्पन्न कर ले अथवा अपने को मार ले इत्यादि। ईश्वर को अपने किसी कार्य में अन्य किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं होती।

नियम ३

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

तीसरा नियम 'वेद' को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बताता है।

ऋषि के आने से पहले वेद केवल पुरोहितों की पोथी थी। वेद के मन्त्रों का प्रयोग संस्कारों तथा यज्ञों अर्थात् कर्मकाण्ड में होता था। ज्ञानकाण्ड उपनिषदों को ही समझा जाता था। ऋषि दयानन्द ने वेद को विद्याओं की पुस्तक कहकर यह भावना विल्कुल बदल दी। वेद में बुद्धि को प्रवेश का अवसर दे दिया। विद्या बुद्धि का विषय तो है ही। विद्या का अध्ययन अवश्य किया जायेगा और उससे आचार व्यवहार की शिक्षा भी प्राप्त की जायेगी। उस शिक्षा से इस संसार तथा परलोक से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों में काम लिया जायेगा। वेद को आर्यों के केवल मन्तव्य ही का विषय न बनाकर ऋषि ने इसका पढ़ना, पढ़ाना सुनना, सुनाना आर्यों का परम धर्म निश्चित कर दिया है। अभिप्राय यह कि आर्य लोग सदैव वेदों के वायुमण्डल में रहें। विद्वान लोग जानते हैं कि वेदों तथा उपनिषदों आदि पीछे के ग्रंथों के वातावरण में बड़ा भेद है। आर्य 'वेद' के ही वायुमण्डल में रहकर फिर से जीवित जागृत हो सकते हैं।

आर्योद्देश्य रत्नमाला में 'विद्या पुस्तक' इस शीर्षक के उद्देश्य संख्या ६० के ये शब्द हैं :

“जो ईश्वरोक्त सनातन सत्य विद्यमान ४ वेद हैं उनको विद्या पुस्तक कहते हैं।”

यही संक्षेप में आर्यसमाज की स्थिति है। सत्य विद्याओं का 'पुस्तक' इन शब्दों का भी वास्तविक अर्थ यही है। हस्ताक्षर करने के लिये इतना लम्बा सूत्र न रखकर संक्षिप्त शब्दावली से काम लेने में सम्भवतः ऋषि का अभिप्राय किसी आर्यसभासद के हृदय पर अधिक बोझ न डालना हो। 'सत्य विद्याओं का पुस्तक' इन शब्दों पर बिना ननुनच के हस्ताक्षर किये जाते हैं।

वेद का आदि मूल (प्रकाशकर्त्ता) ईश्वर है। इसीलिये वेद का श्रवण और अध्ययन करना आर्यों का धर्म नहीं अपितु परम धर्म बताया गया है।

नियम ४

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।

यह नियम आर्यसमाज की शोभा है और आर्यसमाज को उन सब मतों से पृथक् करता है जो अपनी साधारण और किन्हीं दशाग्रों में सर्वथा निरर्थक बात के लिये भी मरने मारने को तैयार रहते हैं । वेद और उपनिषदों में 'ईश्वर' को सत्य कहा गया है । ईश्वर 'सत्य' क्यों है इसका उत्तर बृहदारण्यकोपनिषद् ने दिया है । 'सत्यम्' तीनों शब्दों का योग है (स—ति—यम्) । 'स को जीव कहते हैं' ति ब्रह्माण्ड को यम् शासक का नाम है । इस प्रकार 'सत्यम्' परमेश्वर का नाम इसलिए है कि वह जीव और जगत् दोनों को शासन (नियम) में रखता है । बृहद. अ ५ ब्रा ५ क०) फिर प्रश्न यह है कि ऐसे (सत्यम्) गुरु को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं । सत्य से विमुख होना ईश्वर से विमुख होना है ।

नियम ५

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए ।

यह नियम शिक्षा देता है कि कर्त्ता को प्रत्येक कार्य स्वयमेव विचार कर करना चाहिए । उसे करने के पहले उस कार्य के सम्बन्ध में निश्चय कर लेना चाहिए कि वह धर्म कार्य है, उसमें असत्य का कोई अंश नहीं है । वैदिक साहित्य में 'सत्य' और धर्म पर्याय वाचक शब्द हैं इसीलिए उपनिषद् में कहा गया है 'यो वैस धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्त माहुर्धर्मं वददीति धर्मं वा वदन्त सत्यं वददीति' अर्थात् निश्चय जो यह धर्म है वह सत्य है । इसीलिए सत्य कहने वाले को कहते हैं कि यह धर्म कह रहा है । इसी प्रकार धर्म को कहते हुए पुरुष को कहते हैं कि यह

सत्य कह रहा है। (बृहदा० अ० १ ब्रा० ४ क० १४) इस प्रकार यह नियम चाहता है कि अन्धविश्वास अथवा आंख बन्द करके किसी के पीछे चलने की प्रथा दुनिया से उठ जाय। इसी प्रथा ने सत्य का ह्रास किया और असत्य की वृद्धि।

धर्म की कसौटियां मनु के शब्दों में वेद स्मृति सत्पुरुषों का आचरण और अपने अन्तरात्मा की आवाज है। पहली तीन कसौटियों में ईश्वर की प्रेरणा तथा पूर्वजों का अनुभव शामिल है और चौथी कसौटी अपनी आत्मा का निर्भीक निर्णय है। इन दो चीजों के सम्बन्ध में श्रद्धा और सतर्कता दोनों का सुन्दर मेल हो जाता है। परम्परागत अनुभव से लाभ उठाना परन्तु उसका अन्धाधुन्ध दास न बनना यही एक आर्य पुरुष का लक्षण है। मनुष्य ऐसा स्वतन्त्र हो कि युगान्तर में मनुष्य जाति की असंख्य पीढ़ियों के निरन्तर परिश्रम द्वारा संचित की गई ज्ञान तथा धर्म की उन्नति से वंचित हो जाये और ना ही पूर्वजों का ऐसा दास हो कि अपनी बुद्धि पर ताला ही लगा ले। वेद बुद्धि के लिये है और बुद्धि वेद के लिए। तभी तो तर्क को ऋषि कहा जाता है -

नियम ६

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

इस नियम में आयों का समष्टि के प्रति कर्तव्य बताया गया है। वह है संसार का उपकार करना। कितने सुन्दर विचार हैं। फिर इसमें शरीर, समाज और आत्मा इन तीनों की उन्नति करना सम्मिलित है। शारीरिक उन्नति की रामबाण औषधि ऋषि की दृष्टि में वीर्य रक्षा है। इसका व्यवहार ब्रह्मचर्य तथा गृहस्थ दोनों आश्रमों में करना कराना आयों का धर्म है। युक्त आहार विहार भी शारीरिक उन्नति का साधन

है। समाज का विभाग चार वर्णों में कर उन्हें अपने-अपने कर्त्तव्य पर लगाना, प्रत्येक वर्ण को समाज रूपी शरीर का उपयोगी अंग बनाना—यही आर्यसमाज की विचारधारानुसार संसार की सामाजिक उन्नति की आदर्श युक्ति है। 'आत्मिक उन्नति' इस एक शब्द में आत्मा की सत्ता, पुनर्जन्म तथा मुक्ति इन तीनों सिद्धान्तों का समावेश हो गया है।

उचित आहार विहार का विधान तथा बाल विवाह और वृद्धविवाह का निषेध शारीरिक उन्नति द्वारा हो गया है। इस त्रिविध उन्नति के लिए आर्यसमाज का एक निश्चित पुरोगम है। यदि छठा नियम एक शुभ इच्छा मात्र ही न रहना हो किन्तु इसे क्रियात्मक रूप भी देना हो (जैसे आर्यसमाज इस समय भी अपनी शक्ति के अनुसार यथा सम्भव देता चला जा रहा है) तो उसके लिए उन साधनों को बर्तना होगा जो ऋषि के मन्तव्यों में वर्णित हैं। वे साधन हैं (१) ब्रह्मचर्य और युक्त आहार विहार, (२) वर्ण व्यवस्था, (३) मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन चतुष्टय का अनुष्ठान और प्रचार।

नियम ७

सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

सातवां नियम आर्यसमाज का आचरण-शास्त्र है। आर्य की व्यवहार आधार शिला विश्वप्रेम है। परन्तु इस 'प्रेम' पर धर्म का अंकुश है। निरंकुश प्रीति मोह बन जाती है। धर्म युक्त प्रेम 'यथा योग्य' बस्तीव के रूप में प्रकट होता है।

महात्मा गांधी के 'अहिंसावाद' तथा लेनिन के 'साम्यवाद' के मुकाबले में आर्यसमाज का यथायोग्यवाद पेश किया जाता है। एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ व्यवहार दोनों के वर्ण तथा आश्रम या साधारण शब्दों में दोनों की आत्मिक तथा सामाजिक स्थिति के अनुकूल होगा। यदि सबके साथ व्यवहार करने में पशुओं को भी शामिल कर लिया जाये तो हिंसक तथा लाभप्रद पशुओं को एक ही डण्डे से हांकना उनके

साथ 'यथायोग्य व्यवहार करना' कदापि न होगा। हिंसक को मारना और उपयोगी पशुओं की रक्षा करना यही वेद तथा ऋषियों का आदेश है और यही मनुष्य की सुसंस्कृतबुद्धि का भी निश्चित सन्देश है।

यह सातवां नियम सामाजिक व्यवहार की मर्यादा नियत करता है कि जो पुरुष जिस योग्य हो उसके साथ उसी के योग्य व्यवहार करना चाहिए परन्तु प्रत्येक व्यवहार प्रीति और प्रेम से ओत-प्रोत होना चाहिए। संक्षेप में—

१—प्रत्येक आर्य को आर्यत्व को प्रदर्शित करते हुए आपस में और प्राणीमात्र के साथ अपनी ओर से जहां तक सम्भव हो प्रीति का व्यवहार करना चाहिए। आन्त पुरुष के साथ सदैव प्रियाचरण करने से कालान्तर में अच्छा फल मिलता है।

२—धर्मानुसार व्यवहार करने का अभिप्राय यह नहीं है कि हम समाजस्थों के साथ तो प्रेम का व्यवहार रखें और अन्य मतावलम्बियों के साथ उनके वैधर्म के कारण सदा विरोध किया करें। किन्तु अभिप्राय यह है कि सत्यासत्य के विवेकपूर्वक अर्थात् जो भले मनुष्य हैं उनके साथ भलाई का और जो बुरे मनुष्य हैं उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार करें और यत्न करते रहें कि बुरे बुराई को छोड़ दें परन्तु दुष्टों और आततायियों के विनाश में आगा पीछा न करें।

३—'यथायोग्य' यह सम्बन्ध का सूचक है जैसे संन्यासी, गृहस्थ, ब्राह्मण-क्षत्रिय, राजा-प्रजा, स्वामी-सेवक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र, बन्धु-बान्धव, इष्ट-मित्र, वृद्ध-बालक, आदि-आदि। यदि हम प्रत्येक अपने-अपने पद के अनुसार यथायोग्य रीति से संसार भर के मनुष्यमात्र के साथ व्यवहार करें तो कदापि विरोध उत्पन्न नहीं होगा।

नियम ८

अविद्या का नाश और "विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।"
आठवां नियम है अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि योग-

दर्शन के लक्षण के अनुसार जिसे ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास के आरम्भ में उद्धृत किया है अविद्या का अर्थ है 'अनित्य' को नित्य, अपवित्र को पवित्र। दुःख को सुख, अनात्मा को आत्मा समझना। विद्या इसके विपरीत सत्य ज्ञान का नाम है। इस प्रकार की विद्या पुस्तकों से नहीं किन्तु जीवन भर के शुभ संस्कारों से प्राप्त होती है। गर्माधानादि सोलह संस्कार तथा सन्ध्यादि पंच महायज्ञ इस विद्या की उन्नति के लिये आवश्यक साधन हैं। इन संस्कारों तथा यज्ञों को स्वयं करना और अन्य लोगों में इनका प्रचार करने में यत्नशील होना भी इस नियम का उद्देश्य है। संस्कारों का, अनुष्ठान मशीन की तरह करने से नहीं किन्तु सत्य, न्याय, दया, तप, त्याग, बलिदान, सेवा, पवित्रता, विनम्रता, आदि यज्ञ की भावना को सारे जीवन में ओत-प्रोत कर देने से ही अविद्या का नाश तथा विद्या की उन्नति हो सकती है।

यह नियम अविद्या (अज्ञान, विपरीत ज्ञान) रूपी अन्धकार को दूर करके विद्या (यथाथं ज्ञान) रूपी प्रकाश से संसार के प्राणियों को प्रकाशमय बनाने की दीक्षा वेता है।

नियम ६

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

नवां नियम सबकी उन्नति में अपनी उन्नति सिखाता है। व्यक्ति का हित समाज के बिना हो सकना असम्भव है। वास्तव में मानव जाति और इससे भी विस्तृत दृष्टि से देखें तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक शरीर है और सब व्यक्ति उसके अंग हैं। कोई अंग अपनी वृद्धि दूसरे अंगों की वृद्धि के बिना कदापि नहीं कर सकता। 'संसार की उन्नति' दूसरे शब्दों में अपनी उन्नति करना है। यह कृपा नहीं कर्त्तव्य है। सच्चा स्वार्थ इसी में है। यह नियम सम्पूर्ण झगड़ों की जड़ 'स्वार्थ' खुदगर्जी, को संसार से उखाड़ फेंक देने की शिक्षा देता है। प्रत्येक मनुष्य यदि अन्यो

के साथ अपनी उन्नति में संलग्न हुआ करे तो संसार शान्ति का धाम बन सकता है ।

नियम १०

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालन में परतंत्र रहना चाहिए और स्वतंत्र हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहे ।

दसवें नियम में समाज तथा व्यक्ति के अधिकारों का सीमा बन्धन किया गया है । समाज का सदस्य होने से मनुष्य कहां तक स्वतन्त्रता को छोड़ता है इस वृहत् तत्त्व को एक सूत्र में कह दिया गया है । समाज का शासन वहीं तक होना चाहिए जहां तक समूचे हित या अहित का प्रश्न हो । वैयक्तिक हित साधन में प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र हैं । ऊपर यह भी कह दिया गया है कि समाज का हित और व्यक्ति का हित एक दूसरे से पृथक् नहीं है । इन हितों को एक भी रखना और पृथक् भी कर देना समाजशास्त्र का आधार यही दो नियम हैं । व्यक्ति समाज के हित का ध्यान रखें । अपनी प्रत्येक क्रिया में समाज के भले पर दृष्टि रखे और समाज व्यक्तियों के अधिकारों का रक्षक हो । समाज शास्त्र का सार यही दो सूत्र हैं ।

प्रसिद्ध अंग्रेज तत्त्ववेत्ता जान स्टुअर्ट मिल ने जो महर्षि दयानन्द का समकालीन था 'लिबर्टी' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की थी जो समाजशास्त्र पर एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है । उस पुस्तक में इस दसवें नियम का अनुवाद मोटे अक्षरों में अंकित है । वह सम्पूर्ण पुस्तक ही वास्तव में इस दसवें नियम की व्याख्या है ।

नियमों पर एक विहंगम दृष्टि

प्राणी इस संसार में तीन कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिये आया करता है ।
(१) अपने साथ क्या करना चाहिए । (२) दूसरों के साथ क्या करना चाहिए । (३) परमेश्वर के साथ क्या करना चाहिए ?

आर्यसमाज के दस नियम भी इन तीन कर्त्तव्यों का विधान करते हैं । पहले और दूसरे नियम में उस कर्त्तव्य का विधान है जो ईश्वर के सम्बन्ध में पूरा करना चाहिए अर्थात् मनुष्य को यह विश्वास रखते हुए कि परमेश्वर जगत् का रचयिता और वेद का प्रकाशक है उसकी और एकमात्र उसी ईश्वर की उपासना करनी चाड़िए । २—आर्यसमाज के ३, ४, ५ वे नियम उन कर्त्तव्यों को प्रकट करते हैं जो मनुष्य को अपने सम्बन्ध में पूरे करने चाहिए । वे कर्त्तव्य हैं :—

- १—वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना ।
- २—असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण ।
- ३—प्रत्येक कार्य का सत्यासत्य के विवेक पूर्वक सम्पादन ।
- ४—अन्त में ५ नियम उन कर्त्तव्यों का विधान करते हैं जो मनुष्य को अन्यो के सम्बन्ध में पूरे करने चाहिए और वे ये हैं :—
 - १—मनुष्यमात्र को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के लिये यत्नवान होना ।
 - २—विद्या का विस्तार करना ।
 - ३—अपनी उन्नति के साथ ही अन्यो की उन्नति करना ।
 - ४—समाज के नियमों के आधीन रहना ।

यद्यपि आर्यसमाज के नियम गणना के केवल दस हैं परन्तु उनके भीतर इतनी सामग्री मौजूद है जो व्यक्ति और समाज को उन्नत बनाने

के लिये पर्याप्त है।

नियमों पर गंभीर दृष्टि

इन नियमों में भाव भाषा तथा क्रम कैसे सुन्दर हैं इसका अनुभव पाठक स्वयं कर सकते हैं। इनमें एक शब्द ऐसा नहीं है जो बढ़ाया घटाया अथवा इधर का उधर किया जा सके। चतुर चितेरे ने मानव जीवन के आदर्श का एक पूरा चित्र खींच कर रख दिया है। इन नियमों में एक बिन्दु विसर्ग इधर का उधर कर दो सारा नक्शा ही बिगड़ जाएगा। सत्य का स्रोत सत्य की उपासना, सत्य का चिन्तन, सत्य का मानसिक ग्रहण तथा सत्य का क्रियात्मक व्यवहार—इस प्रकार सत्य की सर्वांगीण शिक्षा देकर विश्व के उपकार, विश्व, प्रेम, विश्व भर में विद्या की वृद्धि तथा विश्व की उन्नति में ही व्यक्ति की उन्नति और फिर व्यक्ति पर विश्व के अधिकार की सीमा इन विश्व व्यापक आदर्शों तथा मर्यादाओं का प्रतिपादन इन नियमों द्वारा हुआ है। आर्यसमाज के संस्थापक की विश्वतोन्मुखी वृत्ति का एक संक्षिप्त सा चमत्कार जो किसी और चमत्कार से कम आश्चर्यकारक नहीं है, आर्यसमाज के दस नियम हैं। इन नियमों में निम्नलिखित सिद्धान्तों की ओर संकेत किया गया है :—

- १—प्रथम नियम में त्रैतवाद का प्रतिपादन किया गया है।
- २—दूसरे नियम में अद्वैतवाद, अवतारवाद, अनेकेश्वरवाद तथा मूर्तिपूजा का खण्डन किया गया है।
- ३—तीसरे नियम में वेद को ईश्वरीय ज्ञान बताकर उसके वातावरण में जीवन व्यतीत करने पर बल दिया गया है।
- ४—छठे नियम में वीर्य रक्षा, तथा युक्त आहार बिहार वर्ण व्यवस्था, आत्मा की सत्ता, पुनर्जन्म तथा मुक्ति इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।
- ५—सातवें नियम में 'यथा योग्य' वाद का प्रतिपादन किया गया है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था, उपयोगी पशुओं की रक्षा, हिंसकों के निग्रह तथा अहिंसा की ओर स्पष्ट निर्देश है ।

६—आठवें नियम में मुख्यतः १६ संस्कारों और ५ महायज्ञों के अनुष्ठान और प्रकार की ओर संकेत है ।

आर्यसमाज के मुख्य २ सिद्धान्त यही हैं ।

नियमों को स्वीकार करने का अर्थ है उसके भावों को स्वीकार करना । ५१ मन्तव्यों में मुख्यतया स्वीकार करने योग्य यही बातें हैं और यदि और विस्तार में जायें तो ५१ मन्तव्य भी पर्याप्त नहीं । सिद्धान्तों का संग्रह सम्पूर्ण आर्य साहित्य से हो सकता है । नियम गागर हैं जिनमें सिद्धान्तों का सागर वन्द है । अधिक स्पष्ट करना हो तो सिद्धान्तों के नाम ले लीजिए और संकेतों से ही काम लेना हो तो नियमों को पर्याप्त समझें । बात एक ही है ।

समाज का प्रवेश सूत्र दस नियम ही हैं । सिद्धान्त संकेत रूप में इनके अन्तर्गत हैं जो माई यह कहते हैं वा मानते हैं कि आर्य सभासद् को दस नियमों के अतिरिक्त अन्य किन्हीं सिद्धान्तों को मानने की आवश्यकता नहीं है, उनकी भूल का भी उपर्युक्त विश्लेषण तथा नियमों की व्याख्या से भली भांति निराकरण हो जाता है । सभी का कर्तव्य है कि नियमों को भली भांति समझकर आर्यसमाज के सदस्य बनें ।

अन्यों की दृष्टि में आर्यसमाज के नियम

आर्यसमाज के पहले दो नियम इस बात के सूचक हैं कि आर्यसमाज धार्मिक, आस्तिक और एकेश्वरवादी समाज है। तीसरे नियम से स्पष्ट है कि वेद ही इसके धर्म ग्रन्थ हैं अर्थात् आर्यों के प्राचीन धर्म ग्रन्थों के साथ इसका सैद्धान्तिक सम्बन्ध है। पांचवें नियम में न केवल सत्य निष्ठा पर ही बल दिया गया है अपितु सत्य की खोज आवश्यक ठहराई गई है। सदस्यों को यह आदेश दिया गया है कि वे जीवन पर्यन्त सत्य के अन्वेषी बने रहें और जब कभी उन्हें यह मान हो कि वे असत्य का अनुसरण करते आए हैं तो उन्हें उसका परित्याग करने के लिये भी सन्नद्ध रहना चाहिए। शेष ५ नियमों में मानव के उन कर्तव्यों का विश्लेषण किया गया है जो उसके अन्यों के प्रति होते हैं।

आर्यसमाज के सदस्य के लिए धर्म विशुद्ध व्यक्तिगत विषय नहीं होता। हम एक विशाल समष्टि के अंग हैं और इस समष्टि में हमारे स्थान का निरूपण हमारे धार्मिक कर्तव्यों के अनुष्ठान से होता है और उन्हें हमें सदैव अपनी दृष्टि में रखना होता है। इन नियमों में वर्णित धर्म वह तत्त्व होता है जो व्यक्ति और समष्टि में समन्वय स्थापित करता है। हम अलग थलग रहने वाले प्राणी नहीं होते जिन्हें कोई बाह्य एजेन्सी मनमाने ढंग से रख देती हो। हम स्वाभाविक और अटूट बन्धनों से बंधे होते हैं और हमारे वैयक्तिक योग क्षेम की दूसरों के योग क्षेम की भावना के बिना न कल्पना की जा सकती है और न उसका सम्पादन ही किया जा सकता है।

थियोसोफिकल न्यूज एण्ड नोट्स लन्दन जून १९५५।

स्वामी दयानन्द ने प्रगतिशील मानव समाज की एकता के आदर्शों

का जैसा सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया वैसा उनके समय का अन्य कोई व्यक्ति प्रस्तुत न कर सका था। आर्यसमाज के दस नियमों से इस बात की सम्यक् पुष्टि हो जाती है। उनमें अत्यन्त उदारता, युक्तियुक्तता और स्वतंत्रता प्रतिलक्षित है और इनमें व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को क्रियान्वित करने का पूर्ण अवसर दिए जाने के साथ-साथ विचार की, व्यवहार की, चुनाव की और धार्मिक व्यक्ति के सदृश आचरण करने की स्वतंत्रता भी दी गई है। इस प्रकार यह दावा ठीक सिद्ध हो जाता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानव जाति के उच्चतम आदर्शों और मानव की वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति एवं सदाचार के आदर्श को प्रस्तुत किया है। एकमात्र वही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लोक और परलोक, आदर्श और व्यवहार, धर्म और विज्ञान, भोग और त्याग, व्यक्ति और समष्टि, धर्म और बुद्धि, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के मध्य, समन्वय का मार्ग बनाने का प्रयत्न किया था।

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि शायद संसार भर के धार्मिक इतिहास में किसी धार्मिक एवं मिशनरी सोसायटी के मार्ग-दर्शन के लिए इन दस नियमों से बढ़िया नियम निर्धारित किये गये हो, जो गूढ़ होते हुए भी सरल हो, समस्त युगों और परिस्थितियों में व्यवहार में आने योग्य हों, जिनकी प्रवृत्ति उन्नतशील हो और जो नवीन और प्राचीन दर्शन के तत्त्व से समन्वित हों। ये नियम सर्व ग्राह्य हैं जिनकी सर्व व्यापकता इसी बात में निहित है कि इनमें सच्चे धर्म की सभी आवश्यक बातें आ गई हैं। मानव समाज के लौकिक और आध्यात्मिक उत्थान की व्यवस्था रखी गई है और हमारी सभी प्रगतियों के लिए सामाजिक, नैतिक, लौकिक और आध्यात्मिक—द्वार खुला रखा गया है। संक्षेप में इन नियमों में विश्वधर्म और विश्व सदाचार के प्रारम्भिक सभी सिद्धान्त समाविष्ट हैं।

इन नियमों की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें साम्प्रदायिकता छू तक नहीं गई है और ये सम्पूर्ण मानव समाज के भले के लिए समस्त

कालों और क्षेत्रों के लिए अभिप्रेत है ।

आर्यसमाज का आस्तिकवाद उस प्रभु के चहुं ओर गतिमान रहता है जो चेतन है, ज्ञानमय और आनन्द का भण्डार है । आर्यसमाज का प्रभु अभाव से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं करता और न संसार उससे ही निकलता है । जो कार्य वा व्यवहार ठीक हो वह धर्म कहलाता है । अर्थात् पक्षपात एवं द्वेष रहित सत्य एवं न्याय का आचरण धर्म माना जाता है । धर्म के दस लक्षणों को आर्यसमाज धर्म की परिभाषा और स्वरूप मानता है ।

मानव अल्पज्ञ है । एकमात्र परमात्मा ही सर्वज्ञ है । मानव को विचार एवं कर्म की जहां स्वतंत्रता दी गई है वहां अल्पज्ञता जनित भूलों एवं निर्णयों के वचाव एवं परिमार्जन के लिए तथा अधिकाधिक प्रकाश के लिए उसे ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आश्रित रहने का भी परामर्श दिया गया है । इसीलिए सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करके विद्या वा प्रकाश, अविद्या का विनाश करना आवश्यक ठहराया गया है ।

—(वैदिक मैगजीन)

ऋषि दयानन्द का संक्षिप्त जीवनचरित्र

और

मुख्य-मुख्य घटनायें

संसार में बड़े-बड़े सुधारकों और महान् पुरुषों के जन्म का कारण तत्कालीन परिस्थिति हुआ करती है। यदि यहां शूद्रों और पशुओं पर अत्याचार न होते, लाखों पशु वेदों के नाम पर बध करके उनके रक्त और मांस से यज्ञकुण्ड अपवित्र न किये जाते, यदि शूद्रों को सामाजिक अधिकारों से वंचित करके उनके लिए वेदों की शिक्षा और शुभ कर्म (संस्कारादि) का द्वार बन्द न किया जाता तो सम्भव न था कि महात्मा बुद्ध का आविर्भाव होता। इसी प्रकार यदि देश में नास्तिकता का प्रचार न बढ़ता और वेदों के अनादर और उनसे विमुख होने का भाव उन्नति न करता तो सम्भव न था कि श्री शंकराचार्य प्रकट होते। निष्कर्ष यह है कि महान् पुरुष पैदा ही तब होते हैं जब उनकी उत्पत्ति की आवश्यकता देश में पूर्ण रीति से अनुभव होने लगती है।

ऋषि दयानन्द क्यों हुए ?

ऋषि दयानन्द के जन्म का कारण भी तत्कालीन परिस्थिति ही थी। यह परिस्थिति क्या थी ? इस पर एक निगाह डालिये:—

(१) वेदों के नाम से लोग परिचित थे, परन्तु वेद क्या है, उनमें किन-किन शिक्षाओं का विधान है इससे सर्वथा अनभिज्ञ थे, यही कारण था जिससे एक पुर्तगाल के पादरी ने यजुर्वेद नाम से एक कल्पित वेद गढ़कर उसमें ईसाई मत की शिक्षा अंकित की और अनेक लोगों को मदरास प्रान्त में वेद के नाम से ईसाई बनाने में सफलता प्राप्त की।

(२) देश में प्राचीन वैदिक सभ्यता का मान घट रहा था और उसका स्थान अनेक उत्पातों और अत्याचारों की मूल पश्चिमीय सभ्यता ले रही थी ।

(३) प्राचीन संस्कृत साहित्य निकम्मा और वेद गड़रियों के गीत समझे जाने लगे थे और देशवासी आंख बन्द करके अंग्रेजी साहित्य पर मोहित होकर विदेशियों के पीछे चलने में गौरव मानने लगे थे ।

(४) जातीय (आर्य) भाषा का पढ़ना फैशन के विरुद्ध था, इसलिये हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी । विदेशी भाषाओं ने उसका स्थान ले रखा था ।

(५) बाल-विवाह आदि कुरीतियों के प्रचलित और ब्रह्मचर्य के लोप होने से देशवासियों, विशेषकर हिन्दू जाति के सदस्यों में शारीरिक बल का ह्रास हो रहा था और इसी निर्वलता के कारण उसे समय-समय पर अपमानित होना पड़ता था ।

(६) कर्म की निरादरता का भाव मत-मतान्तरों को कुशिक्षा से हिन्दू जाति में प्रचलित हो जाने से सर्वसाधारण की आर्थिक अवस्था खराब हो चली थी । अनाथ और विधवाओं की संख्या नित्यप्रति बढ़ती जाती थी और उनकी रक्षा का प्रबन्ध न होने से उन्हें विधर्मी बनना पड़ता था ।

(७) बाल-विवाह पराकाष्ठा को पहुँच चुका था और उसके दुष्परिणाम से हिन्दू जाति में लाखों बाल-विधवाएं, जिनमें एक-एक वर्ष की भी थीं, हो गई थीं और उनका विवाह न होने से भ्रूण-हत्या, गर्भपात, नवजात बालक वध आदि अनेक पातक थे जो हिन्दू जाति के लिए कलंक का टीका बन रहे थे ।

(८) जन्म की जाति प्रचलित होने और खान-पान में छुआछूत की मात्रा बढ़ जाने से हिन्दुओं में परस्पर घृणा का भाव बराबर चला जा रहा था ।

(९) शूद्र और दलित जातियों के साथ उच्च जातियों का व्यवहार अत्यन्त अनुचित, आक्षेप के योग्य और असह्य था और इसीलिए ये दलित भाई बहु संख्या में ईसाई और मुसलमान बन रहे थे ।

(१०) स्त्रियों का मान नित्यप्रति घटता चला जा रहा था । वे शिक्षा की अनधिकारिणी समझी जाने लगी थी । उनकी अवस्था का चित्र तुलसीदास की इस चौपाई से मलीभांति खिंच जाता है:—

ढोल, गंवार शूद्र, पशु, नारी ।

ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

(११) हिन्दू जाति ईश्वर से विमुख हो रही थी । अपने हाथ से गढ़ी हुई पीतल और पत्थर की मूर्तियों को पूजने लगी थी । एक ईश्वर मानने की जगह (समस्त हिन्दू आबादी के ढेढ़ गुने से अधिक) ३३ करोड़ देवी-देवताओं को, मियां, मसानी और कवरों के सिवा, मानने लगी थी ।

ये और ऐसी ही और भी अनेक परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने ऋषि दयानन्द को पैदा किया ।

ऋषि दयानन्द को इस परिस्थिति का ज्ञान क्योंकर हुआ ?

ऋषि एक औदीच्य ब्राह्मणों के श्रेष्ठ घराने में उत्पन्न हुए थे । इनके पिता का नाम करसन जी तिवारी और इनका नाम मूलजी दयाराम था । जन्मस्थान काठियावार अन्तर्गत मौरवी राज्य का एक नगर टंकारा है । एक बार जब उनकी आयु केवल १४ वर्ष की थी शिवरात्रि के अवसर पर उनके पिता ने उन्हें शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए विवश किया । व्रत रखा गया । रात्रि में जब उनके पिता अन्य दर्शकों के साथ शिव की पूजा करके चढ़ावा चढ़ा चुके और शिव की आराधना के विचार से अन्यो के साथ मूर्ति के सामने बैठ गये तो ओंघने लगे, परन्तु ऋषि दयानन्द जागते थे । इसी बीच में एक चूहा आया और शिव की मूर्ति पर चढ़कर मजे से चढ़ावे की वस्तु को चखने लगा । स्वामी

दयानन्द इस घटना को देखकर चकित हो गये कि यह कैसा शिव है जो चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकता ? पिता को जगाकर अपना सन्देह प्रकट किया परन्तु उत्तर डाट-डपट के सिवाय कुछ न मिला । इस घटना ने दयानन्द की आंखें खोल दीं । उन्हें प्रचलित मूर्ति पूजा की निःसारता का ज्ञान हो गया ।

एक दूसरी घटना

इस चूहे वाली घटना के कुछ दिन बाद ही स्वामी जी की भगिनी और उसके बाद उनके चाचा का देहपात हो गया । ये दोनों व्यक्ति उन्हें बहुत प्रिय थे । इस घटना ने मृत्यु का प्रश्न व्यक्त रूप में उनके सम्मुख उपस्थित कर दिया और वे सोचने लगे कि यह मृत्यु क्या वस्तु है और किस प्रकार मनुष्य उस पर विजय पाकर मृत्युञ्जय हो सकता है ।

योगाभ्यास और तपस्वी जीवन

इन समस्याओं के हल करने की इच्छा इतनी प्रबल हुई कि उन्होंने पैतृक सम्पत्ति पर लात मारकर भारतवर्ष के प्राचीन विश्वविद्यालय (जंगल) की राह ली । संन्यास की दीक्षा ली । मूल जी दयाराम से दयानन्द सरस्वती बने और योगाभ्यास करते हुए तपस्या का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया । शरीर पर एक कोपीन के सिवा कोई वस्त्र नहीं रखा । नर्मदा के तट से लेकर हिमालय की बरफानी चोटी और दुष्प्रेष कन्दराओं तक पर्यटन करते हुए जिससे जो कुछ मिला सीखा । शीत ऋतु में बर्फ से जमी हुई एक नदी को पार करना था जबकि पिशाचिनी भूख ने भी सता रखा था । नग्न शरीर ही से बर्फ की चट्टानों से टकराते, गिरते-पड़ते किसी प्रकार नदी को पार किया और इन्हीं बर्फ की चट्टानों में से एक दो टुकड़े बर्फ के तोड़ और खाकर भूख को भी शान्त किया । ये सब कष्ट, जिनके स्मरणमात्र से बड़े-बड़े शूरवीरों के भी हृदय कांप उठते हैं, प्रसन्नता से सहन करते हुए ज्यों-ज्यों शिक्षा और दीक्षा

से बल और ज्ञानवृद्धि करते जाते थे त्यों २ स्वामी दयानन्द अपने में साहस और उत्साह की मात्रा का अधिकता से अनुभव करते जाते थे। इसी-लिए जो कदम उठता था आगे ही पड़ता था पीछे फिरने का विचार भी नहीं आता था। कठिन से कठिन झाड़ियों का हाथो और पांओं के सहारे से पार करना उनके लिए साधारण काम हो गया था। एक झाड़ी को पार करते हुए सामने एक भयानक रीछ आ गया और आक्रमण करना ही चाहता था कि दयानन्द ने निर्भीकता से जमकर खड़े होकर अपने दण्ड को पृथ्वी पर ठोक दिया। इसी से वह रीछ साहस छोड़कर भाग गया। यह था अखण्ड ब्रह्मचर्य का बल, यह था आत्मशक्तियों के विकास का परिणाम जिसने स्वामी दयानन्द को इस १९वीं शताब्दी में भी प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों का उदाहरण बना रखा था। इस प्रकार तपस्या का जीवन व्यतीत करते और योगम्यास करते हुए समाधिपर्यन्त योग की शिक्षा प्राप्त की और अपने शरीर को फौलाद का शरीर बनाते हुए मथुरा में पहुंचे और अपने अन्तिम गुरु स्वामी विरजानन्द का द्वार खटखटाया। तीन वर्ष तक इन अद्भुत गुरु के चरणों में बैठकर स्वामी दयानन्द अष्टाध्यायी महाभाष्य की शिक्षा पाते और अनेक ऋषिप्रणीत ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त करते हुए सबसे बड़ी वस्तु वेदार्थ करने की कुंजी प्राप्त करते हैं।

गुरु-दीक्षा और कार्यक्षेत्र में प्रवेश

शिक्षा और दीक्षा समाप्त हो गई सही, परन्तु स्वामी जी का इस अन्तिम गुरु से छुटकारा पा लेना सुगम कार्य न था। इस अद्भुत-गुरु की गुरुदक्षिणा अद्भुत थी। इसने स्वामी दयानन्द से वचन ले लिया कि वे अपना सारा अवशिष्ट जीवन वेद-प्रचार, पाखण्ड-खण्डन मानव जाति के उद्धार और प्राचीन आर्य-सभ्यता के विस्तार में लगावेंगे।

पाखण्ड खण्डनी पताका

उपर्युक्त कार्य करते हुए स्वामी दयानन्द हरिद्वार के जगत्-प्रसिद्ध

मेले कुम्भ में पहुँच कर अपना एक कैम्प पृथक् लगाते हैं और उन्होंने जो पताका लगाई उस पर “पाखंडखंडनी” लिखा हुआ था। अनेक स्त्री पुरुष, साधु-संन्यासी, पण्डित-विद्वान् आते और प्रश्नोत्तर करते रहे। स्वामी जी पाखण्डों को छोड़कर वैदिक शिक्षानुसार आचरण करने की शिक्षा देते रहे। मेले के अन्त तक यह काम जारी रहा। मेला समाप्त होने पर उनके हृदय में एक विचार आया और वह यह था कि उनके उपदेशों का जितना प्रभाव होना चाहिए था नहीं हुआ। इसके हेतु पर विचार करते हुए उन्होंने निश्चय किया कि अभी उनमें तप की कमी है और इसीलिए मेले के समाप्त होते ही सर्वमेध यज्ञ करके जितनी भी वस्तुएं उनके पास थीं सब एक-एक करके दे डालीं और एक कौपीन के सिवा फिर अपने पास कुछ नहीं रखा और गंगा तट पर भ्रमण और निवास करते हुए तपस्वी जीवन रखते हुए प्रचार करते रहे।

एक श्रद्भुत दृश्य

कर्णवास के निकट गंगा की रेती है, रात्रि का समय है: चांदनी खिल रही है, शीतल वायु अपना प्रभाव रेती पर डाल रहा है। उसी रेती पर एक नग्नशरीर केवल कौपीनधारी आदित्य ब्रह्मचारी लेटा हुआ प्रभु के महान् यश को आंखें पसार-पसार कर देख रहा है। हृदय मग्न और चित्त प्रफुल्लित है। मन आह्लादित हो रहा है। ऋषि दयानन्द के द्वन्द्व से रहित स्वच्छ हृदय में कोई चिन्ता है तो आर्य जाति के भविष्य की, कोई सोच है तो गिरे हुए भारतवर्ष की, कोई कामना है तो वेद-प्रचार की। अहा कैसा अपूर्व दृश्य ! एक तपस्वी ईश्वर के प्रेम में मग्न होते हुए भी मानव जाति के उद्धार की चिन्ता में निमग्न है। धन्य है भारतभूमि ! धन्य है ऋषि-मुनियों की जन्मदात्री भूमि ! धन्य है वैदिक सभ्यता की प्रसारकत्री भूमि ! तेरे सिवाय किसमें सामर्थ्य है कि दयानन्द जैसा पुत्र उत्पन्न कर सके। तेरे सिवाय किसमें शक्ति है कि ऐसा निष्काम तपस्वी वीर पैदा कर सके।

ऋषि दयानन्द के जीवन की कुछेक घटनाएँ

ऋषि दयानन्द का जीवन अपूर्व और अलौकिक घटनाओं की लम्बी शृंखला है। उनमें से कुछ घटनाओं का यहां उल्लेख किया जाता है:—

(१) अनूपशहर की घटना है कि एक दिन एक एक पुरुष स्वामी जी के पास आया और बड़ी नम्रता प्रदर्शित करते हुए एक पान का बीड़ा स्वामी जी को भेंट किया। स्वामी जी को मुंह में रखते ही मालूम हो गया कि इसमें विष मिला हुआ है। वस्ति और न्यूली क्रिया करके उन्होंने उसके प्रभाव को नष्ट कर दिया। जब यह हाल वहां के मजिस्ट्रेट सैय्यद मुहम्मद को मालूम हुआ तो उन्होंने दुष्ट व्यक्ति को पकड़वा कर हवालात में बन्द करा दिया और स्वयं स्वामी जी के पास अपनी कारगुजारी प्रकट करने के लिये आए, परन्तु उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब उन्होंने देखा कि स्वामी जी उनके इस कृत्य से अप्रसन्न हैं। स्वामी जी ने उस व्यक्ति को छोड़वा दिया और कहा कि “मैं दुनिया को कैद कराने नहीं किन्तु कैद से छोड़ाने आया हूँ।”

(२) कर्णवास की एक घटना है कि एक दिन स्वामी जी गंगा तट पर उपदेश दे रहे थे। नरोली के राव कर्णसिंह अपने कुछेक हथियार-बन्द साथियों के साथ वहां आए और बातचीत करते-करते ही बड़े क्रोध में आ गये और तलवार खींचकर स्वामी जी पर आक्रमण किया। स्वामी जी ने तलवार छीनकर दो टुकड़े कर दिए और राव के हाथ को पकड़कर कहा कि “मैं तुम्हारे साथ इस समय वही सलूक कर सकता हूँ जो किसी “आततायी” के साथ किया जा सकता है, परन्तु मैं संन्यासी हूँ इसलिए छोड़ता हूँ। जाओ ईश्वर तुम्हें सुमति देवे।”

(३) कर्णवास ही की एक दूसरी घटना है कि अनूपशहर में संस्कृतज्ञ विद्वान् पं० हीरावल्लभ अपने कुछेक साथियों के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए स्वामी जी के पास गये। सभा संगठित हुई। हीरावल्लभ जी ने बीच में ठाकुरजी का सिंहासन, जिस पर सालिगराम आदि की मूर्तियां थीं, रखकर सभा में प्रतिज्ञा की कि मैं स्वामी जी से इन्हें भोग

लगवाकर उठूंगा। छः दिन तक बराबर शास्त्रार्थ होता रहा। सातवें दिन पं० हीरावल्लभ ने सभा में प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं अर्थात् “मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है” वही ठीक है और सिंहासनों से मूर्तियों को उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया और सिंहासन पर वेद की स्थापना की।

(४) प्रयाग की एक घटना है कि एक दिन स्वामी जी सभा में विराजमान थे, पण्डित सुन्दरलाल जी आदि नगर के अनेक गण्यमान्य पुरुष वहाँ उपस्थित थे। स्वामीजी एकाएक हँस पड़े। कारण पूछने पर बताया कि एक आदमी मेरे पास आता है उसके आने पर एक कौतुक दिखाई देगा। थोड़ी सी देर के बाद एक व्यक्ति स्वामी जी के लिए मिठाई लाकर कहने लगा कि महाराज इसमें से कुछ भोग लगावें। स्वामी जी ने इसमें से थोड़ी सी मिठाई लाने वाले को देनी चाही और कहा कि तुम इसे खाओ, परन्तु उसने मिठाई लेने और खाने से साफ इन्कार कर दिया। स्वामी जी इस पर हँस पड़े और पं० सुन्दरलाल जी आदि उपस्थित महानुभावों से कहा कि इस मिठाई में विष मिला हुआ है। जांच के लिए थोड़ी मिठाई एक कुत्ते को खिलाई गई। कुत्ता मिठाई खाते ही मर गया। इस पर उपस्थित सज्जनों ने मिठाई लाने वाले को मिठाई के समेत पकड़वाना चाहा, परन्तु स्वामी दयानन्द ने उसे छोड़वा दिया और कहा कि “देखो यह अपने पाप से स्वयं लज्जित है और कांप रहा है। इसे पर्याप्त दण्ड मिल गया, अब और किसी दण्ड की जरूरत नहीं है।” यह थी ऋषि दयानन्द की सहन-शीलता !

(५) उदयपुर की एक घटना है कि एक दिन कतिपय सज्जनों के साथ ऋषि दयानन्द भ्रमण करने जा रहे थे। रास्ते में एक बालिका को सर झुका दिया। कारण पूछने पर प्रकट किया कि “यह मातृशक्ति है, जिसने हम सबको जन्म दिया है।” इसी प्रकार के सम्मान का भाव जब किसी जाति के पुरुषों में हो तभी वह जाति सभ्य कहलाई जा सकती है।

(६) एक दिन बरेली में स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे । व्याख्यान में नगर के गण्यमान्य पुरुष और बड़े-बड़े राजकर्मचारी कमिश्नर आदि सभी उपस्थित थे । व्याख्यान में ईसाईमत का खूब खण्डन किया गया । दूसरे दिन व्याख्यान से पूर्व उनसे नगर के कुछ लोगों ने कहा कि आज के व्याख्यान में ईसाईमत का खण्डन न करें इससे कमिश्नर आदि अप्रसन्न हो जावेंगे । व्याख्यान में कमिश्नर आदि सभी मौजूद थे । स्वामी जी ने गरज कर कहा—“लोग कहते हैं कि आप असत्य का खण्डन न कीजिये, इससे कमिश्नर अप्रसन्न होगा, कलेक्टर नाराज होगा, परन्तु चाहें चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो जावे हम तो सत्य ही कहेंगे ।” इसको कहते हैं सत्य पर अटल विश्वास !

(७) उदयपुर की एक दूसरी घटना है । एक दिन स्वामी जी श्री महाराणा सज्जनसिंह को मनुस्मृति पढ़ा रहे थे । पाठ पढ़ाते हुए उन्होंने कहा “यदि कोई अधिकारी धर्मपूर्वक आज्ञा दे तभी उसका पालन करना चाहिए ।” इस पर सरदारगढ़ के ठाकुर मोहनसिंह ने कहा कि महाराणा हमारे राजा हैं यदि इनकी कोई बात हम अधर्मयुक्त बतला कर न मानें तो ये हमारा राज्य ही छीन लें । इस पर स्वामी जी ने कहा “धर्महीन हो जाने और अधर्म के काम करके अन्न खाने से तो भीख मांगकर पेट का पालन करना अच्छा है ।”

(८) एक तीसरी घटना उदयपुर की और है । एक दिन एकान्त में स्वामी जी से उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने कहा कि “महाराज ! आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ दें । आप स्वयं मूर्तिपूजा भी न करें तो भी एकलिंग महादेव की गद्दी, जिसके साथ लाखों रुपये की जायदाद लगी है, आपकी हो जायगी ।” इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया—“आपके सारे राज्य से मैं एक दौड़ लगाकर बाहर जा सकता हूँ । फिर मैं किस प्रकार इस तुच्छ प्रलोभन में आकर ईश्वर की आज्ञा को भंग करूँ ।” यह था सच्चा त्याग !

(६) जोधपुर की वेश्या के षड्यंत्र में फंसकर लालची जगन्नाथ ने स्वामी जी का विश्वासपात्र पाचक होते हुए भी, स्वामी जी को बारीक पिसा हुआ कांच दूध में मिलाकर पिला दिया। स्वामी जी ने प्रकट हो जाने पर जगन्नाथ को कुछ न कहकर कहा कि 'जगन्नाथ ! ले ये कुछ रुपये हैं, इन्हें लेकर नेपाल राज्य आदि किसी ऐसे स्थान पर चला जा, जहां तू पकड़ा न जा सके। और तुझे अपने प्राण न खोने पड़ें।' आहा ! इस उदारता का भी कुछ ठिकाना है जो अपने घातक को भी पीड़ित नहीं देखना चाहता।

(१०) पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए० साइन्स के उच्च कोटि के विद्वान् थे, परन्तु उन्हें ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं था। स्वामी जी के जीवनांत समय वे भी अजमेर गये हुए थे। स्वामी जी ने सबसे आवश्यक बातचीत करने के बाद कहा कि अब सब पीछे हो जावे। सब पीछे हो गये, परन्तु गुरुदत्त एक कोने में छिपकर इस तरह खड़े हो गये कि उनको तो स्वामी जी न देख सकें, परन्तु वे स्वामी जी को देख सकें। स्वामी जी मृत्यु शय्या पर बैठ जाते हैं। कुछ प्राणायाम करने के बाद वेदमन्त्रों का उच्चारण करने लगे। मन्त्रोच्चारण करते-करते एक साथ उनके चेहरे पर मुस्कराहट आ गई। गुरुदत्त के लिए यह मुस्कराहट एक समस्या थी। वह सोचता है कि वही मौत जिसका नाम सुनकर ही लोग कानों पर हाथ रखा करते हैं, इस महापुरुष के सम्मुख उपस्थित है, परन्तु यह भयभीत होने के स्थान में मुस्करा रहा है। स्वामी जी की यह मुस्कराहट मानो एक विद्युत् थी जिसने गुरुदत्त के हृदय में प्रवेश करके नास्तिकता के कूड़े करकट को, जो वहां जमा था, भस्म कर दिया। महान् पुरुषों के जीवन ही नहीं किन्तु मृत्यु भी शिक्षा-प्रद होती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन की मुख्य २ घटनाएं

- १८२४—मोरवी स्टेट के टंकारा ग्राम में १२-२-१८२५ को जन्म ।
- १८३२—८ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ ।
- १८३७—१३ या १४ वर्ष की आयु में ही मूर्ति पूजा पर से आस्था उठ गई । शिवरात्रि के दिन शिव मन्दिर में रात्रि भर जागरण करते हुए एक चूहे को शिव की मूर्ति पर चढ़ाते और चढ़ावा खाते हुए देखकर बालक मूलशंकर आश्चर्य चकित रह गया । ब्रह्मांड का स्वामी एक चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर पाया ।
- १८४२—बहिन और चाचा की मृत्यु से जीवन के प्रति आकर्षण समाप्त हुआ अर्थात् संसार से विरक्ति हो गई । मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की ठानी ।
- १८४६—योगियों की खोज में घर का परित्याग किया । सायला में ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली और शुद्ध चैतन्य नाम रखा गया । स्वामी परमानन्द सरस्वती ने संन्यास की दीक्षा दी और दयानन्द सरस्वती नाम रखा गया ।
- १८५५—पहली बार हरिद्वार के कुम्भ को देखने गये ।
- १८६०-१८६३—मथुरा में गुरुवर विरजानन्द जी से दीक्षा प्राप्त की ।
- १८६३—गुरुवर के आदेश से अपना समस्त जीवन वैदिक धर्म के प्रचार और देश में फैले अविद्याज्झकार एवं अंध विश्वासों को मिटाने का उन्हें वचन देकर स्वामी दयानन्द मथुरा से चले गये ।

- १८६४-१८६५—जीवन के मिशन की तैयारी करते हुए आगरा में निवास किया ।
- १८६६—अपने मिशन पर खाना हुआ । जयपुर गये और वहां से धर्म प्रचारार्थ पुष्कर । अजमेर में ईसाई पादरियों के साथ पहला शास्त्रार्थ किया ।
- १८६७—हरिद्वार कुम्भ में दूसरी बार वैदिक धर्म का प्रचार और मूर्ति पूजा और जात-पात का खंडन किया । मेले की समाप्ति पर अपनी पुस्तकें, कपड़े और पैसा दूसरों को देकर गंगा तट पर अवधूत का जीवन बिताते घूमने लगे ।
- १८६८—राव कर्णसिंह ने तलवार का वार किया । तलवार के दो टुकड़े कर डाले और शान्तिपूर्वक अपने आसन पर जा विराजे ।
- १८६९—१६ नवम्बर को सुविख्यात काशी शास्त्रार्थ महाराजा बनारस की अध्यक्षता में हुआ । एक ओर स्वामी जी अकेले और दूसरी ओर काशी के समस्त पंडित । पं० ताराचरण तर्करत्न, राजाराम शास्त्री, बाल शास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द विरोधी पक्ष में प्रमुख पंडित थे ।
- १८७२—अप्रैल मास में बिहार, बंगाल का भ्रमण । कलकत्ता दिसम्बर मास में पहुंचे । नव ब्रह्म समाज के संस्थापक बाबू केशव-चन्द्र सेन तथा आदि ब्रह्म समाज के नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर से भेंट ।
- १८७३—कलकत्ता से प्रस्थान १-४-१८७३ । ८-४-७३ को हुगली में पं० ताराचरण तर्करत्न के साथ शास्त्रार्थ । विषय—वेदों में मूर्ति पूजा का विधान नहीं है ।
- १८७४—बम्बई आगमन । वैदिक धर्म का प्रचार किया । बम्बई प्रदेश के अनेक स्थानों पर प्रचार ।

१८७५—१६-१-१८७५ को राजकोट में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना ।
शीघ्र ही यह समाज बन्द हो गया । ७-४-१८७५ को बम्बई में
आर्यसमाज की स्थापना ।

१८७५—जून में बनारस में सत्यार्थप्रकाश छपा । महादेव गोविन्द
राणाडे के निमंत्रण पर पूना पहुंचे ।

१८७६—दिसम्बर में देहली पहुंचे जबकि वहां शाही दरवार लगने वाला
था । धार्मिक नेताओं की मीटिंग बुलाई जिसमें सर सैय्यद अहमद
खां, बा० केशवचन्द्र सेन, श्री इन्द्रमणि, नवीनचन्द्र राय और
अन्यों ने भाग लिया । उद्देश्य था सबको मिलकर काम करने
का ।

१८७७—मार्च मास में चांदापुर का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ । ईसाइयों की
ओर से रे० स्काट ओर रे० नोविल थे । मुसलमानों की ओर
से देव बंद के मौलवी मुहम्मद कासिम ।

४-६-१८७७ को लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना और
वर्तमान १० नियमों (आर्यसमाज के) का निर्माण ।

१८७८—मई १८७८ में थियोसोफीकल सोसाइटी, जिसकी स्थापना
अमेरिका में कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्सकी द्वारा हुई
थी आर्यसमाज की एक शाखा बनी ।

१८७९—१-२-१८७९ को कुम्भ (हरिद्वार) के मेले में आ गए ।

१८८०—१२-२-१८८० को वैदिक यंत्रालय की स्थापना ।

१८८२—२८-३-१८८२ को स्वामी जी ने थियोसोफी कल सोसाइटी
तथा उसके नेताओं से हर प्रकार का सम्बन्ध विच्छेद किया ।
जुलाई १८८२ में उदयपुर में पदार्पण । महाराणा सज्जनसिंह
स्वामी जी के शिष्य बने ।

१८८३—२७-२-१८८३ को उदयपुर में स्वामी जी का अन्तिम स्वीकार

पत्र रजिस्टर्ड हुआ और परोपकारिणी सभा की स्थापना हुई ।
 १-६-१८८३ को जोधपुर पहुंचे, २६-६-८३ को रोग शय्या
 पर पड़े और ३०-१०-८३ को अजमेर में महान् प्रकाश में
 विलीन हुए ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ

सन्	स्थान	प्रतिपक्ष
१८६६	अजमेर	पादरी ग्रे, रावसन और शूलब्रेड
१८६७	कर्णवास	पं० अम्बादत्त (अनूपशहर)
	रामघाट	„ कृष्णानन्द
	कर्णवास	„ हरिवल्लभ
	सोरो	„ अंगद शास्त्री
१८६८ अक्टो०	काकोरी का मेला	„ उमादत्त
१८६८	फर्रुखाबाद	„ श्रीगोपाल
१८६९ जून	फर्रुखाबाद	„ हल्धर ओझा
१८६९	कल्लोज	„ हरिशंकर
१८६९ जुलाई ३१	कानपुर	„ हल्धर ओझा
१८६९ नव० १६	बनारस	„ ताराचरण तर्करत्न बाल शास्त्री स्वामी विशुद्धानन्द पं० राजाराम „ शिवसहाय „ माधवाचार्य „ वामनाचार्य

१८७२	मिर्जापुर	„ गोविन्द मट्ट
		„ जय श्री
१८७२	डुमराओं	„ दुर्गादत्त
१८७२	आरा	„ रुद्रदत्त
		„ चन्द्रदत्त
१८७२ सित०	पटना	„ रामजीवन मट्ट
		„ रामावतार
	कलकत्ता	„ हेमचन्द्र चक्रवर्ती
१८७३ मार्च २३	कलकत्ता	„ महेशचन्द्र न्याय रत्न
१८७३ अप्रैल ८	हुगली	„ ताराचरण तर्करत्न
१८७३ नव० १८	लखनऊ	„ गंगाधर
१८७३ मई २५	छपरा	„ जगन्नाथ
१८७३ अक्टूबर	कानपुर	„ गंगाधर
१८७४ फरवरी	इलाहाबाद	„ काशीनाथ शास्त्री
१८७४ नव० २५	सूरत	„ इच्छाराम शास्त्री
	भरूच	„ माधवराव
	राजकोट	„ महिधर
१८७५ मार्च १०	बम्बई	„ खेमजी
		बाल जी जोशी
१८७५ जून	बम्बई	कमलनयन आचार्य
	बड़ीदा	पं० यज्ञेश्वर
	बड़ीदा	„ आप्या शम्भु
१८७६ जून २७	बम्बई	„ रामलाल
१८७६ नव०	मुरादाबाद	रे० पार्कर

१८७७ मार्च २० चांदापुर मेला	रे० स्काट
	मौलवी मुहम्मद कासिम
१८७७ सित० २४ जालन्धर	मौलाना अहमद हसन
१८७८ फर० १६ गुजरांवाला	ईसाई पादरियों के साथ
१८७८ नव० २८ अजमेर	रे० ग्रेण्ड हजबैंड
१८७९ अगस्त ४ बदायूं	पं० रामप्रसाद
१८७९ अगस्त २५ वरेली	" रे० स्काट
१८८१ जून २८ व्यावर	रे०; शूलन्रेड
१८८२ दि० ११ उदयपुर	मौलवी अब्दुल रहमान

सत्य धर्म विचार, चांदापुर

१६ और २० मार्च १८७७ को चांदापुर (शाहजहांपुर उ० प्र०) मेले में हुए सुप्रसिद्ध धार्मिक शास्त्रार्थ का इसमें उल्लेख किया गया है। यह शास्त्रार्थ श्री प्यारेलाल ने इस बात के निर्णय के लिए कराया था कि कौन सा धर्म सच्चा है। शास्त्रार्थ में तीन पक्ष थे। ईसाइयत का प्रतिनिधित्व रे० टी० जी० स्काट तथा रे० नोविल ने, इस्लाम का देवबंद के मौलवी मुहम्मद कासिम ने और वैदिक धर्म का स्वामी दयानन्द और म० इन्द्रमणि ने किया था। शास्त्रार्थ के लिए निम्नलिखित विषय चुने गये थे:—

- १—परमात्मा ने सृष्टि की रचना कब, क्यों और किस चीज से की !
- २—परमात्मा सब चीजों में व्यापक है या नहीं ?
- ३—परमात्मा दयालु होने के साथ-साथ न्याय परायण क्योंकर हो सकता है ?
- ४—इस बात का क्या प्रमाण है कि वेद, बाइबिल और कुरान इल्लामी पुस्तकें हैं ?
- ५—मोक्ष क्या है और यह कैसे प्राप्त की जा सकती हैं ?

स्वामी दयानन्द सरस्वती कब और कहाँ ? उन स्थानों की तालिका जहाँ २ स्वामी जी गए

	आगमन	प्रस्थान
टंकारा	१८२४	१८४६
कोट गंगारा	जु० अ० १८४६	सित० १८४६
सिद्धपुर	१८४६	१८४६
अहमदाबाद	१८४६	१८४६
	१८५०	१८५१
वड़ौदा	१८४६	१८४७
चानोद कन्याली	१८४७	१८४७
व्यासाश्रम	१८४७	१८४८
सीनूर	१८४८	१८४९
चानोद	१८४९	१८५०
आबू	१८५२	१८५४
हरिद्वार	१८५५	१८५५
हरिद्वार	१२ मार्च १८६७	१८६७
ऋषिकेश	१८५५	१८५५
टिहरी	"	"
श्रीनगर	"	"
केदारघाट	"	"
रुद्र प्रयाग	"	"
अगस्त्य मुनि	"	"
शिवपुरी	"	"

नुप्त काशी	१८५५	१८५५
त्रियुगी नारायण	"	"
गौरी कुंड	"	"
भीम गुफा	"	"
तुंगनाथ शिखर	"	"
ओखी मठ	"	"
जोशी मठ	"	"
बद्रीनारायण	"	"
वसुधारा	"	"
माना ग्राम	"	"
चिल्किया पाटी	"	"
रामपुर	"	"
काशीपुर	१८५५	१८५६
द्रोण सागर	१८५६	१८५६
मुरादाबाद	१८५६	१८५६
संभल	१८५६	१८५६
गढ़ मुक्तेश्वर	१८५६	१८५६
	१८६७	१८६७
फर्रुखाबाद	१८५६	१८५६
जून १८६७ में १८६८ में	१८५६	१८५६
श्रृंगीरामपुर में १८६९ में	१८५६	१८५६
कानपुर	५ अप्रैल १८५६	१८५६
इलाहाबाद	१८५६	१८५६
मिर्जापुर	अगस्त १८५६	अगस्त सित० १८५६
	१८६७	
विध्याचल	१८५६	१८५६
वनारस	"	१८५६

चुनार	१८५६	१८५७
नर्मदा तट	२६ मार्च १८५७	१८५६
हाथरस	१८६०	१८६०
मुरसान	"	"
मथुरा	१४ नवम्बर "	१८६३
	१८६६	१८६६
आगरा	मई १८६३	१८६४
	१ नव १८६६	नव १८६६
ग्वालियर	२४ जनवरी १८६५	जून १८६५
करावली	जून १८६५	१८६५
कुशलगढ़ (गंगापुर)	"	"
जयपुर	अको "	६ मार्च १८६६
		अको १८६६
बागडू	मार्च १८६६	मार्च १८६६
	जून "	जून "
डूडू	"	"
किशनगढ़	१८६६	१८६६
	जून "	"
अजमेर	मार्च "	मार्च "
	३० मई "	जून १८६६
पुष्कर	२३ मार्च "	३० मई "
कनखल	१८६७	१८६७
लढौरा	"	"
मुहम्मदपुर देवमल (विजनौर)	"	"
परीक्षितगढ़	"	"
कर्णवास	"	"
दोवारा तीसरी वार	"	"

चौथी बार	१८६८	१८६७	१८६७
अनूप शहर		"	"
चासी		"	"
ताहरपुर		"	"
रामघाट		"	"
अहर		"	"
वेलौन		"	"
गढ़ियाघाट	मार्च १८६८		१८६८
अवागढ़ (सोते)		"	"
सोरो		"	"
सारडोल		"	"
शहवाजपुर		"	"
कादंर गंज		"	"
नरदौली		"	"
काकोदर	२९ अको	"	९ नव "
कायम गंज		"	"
कम्पिल		"	"
शकरुल्ला पुर		"	"
शृंगीरामपुर		१८६९	१८६९
जलालाबाद		१८६९	"
कन्नीज		१८६९	"
विट्ठूर		"	"
मदारपुर		"	"
कानपुर	जुलाई १८६९		अको १८६९
रामनगर	अको "		"
वनारस	२२, २३ अको १८६९		दिस० १८६९
मिर्जापुर	दिस० १८६९		५ फरवरी १८७०

इलाहाबाद	५ फरवरी १८७०	१८७०
मिर्जापुर	"	"
वनारस	"	"
सोरो	"	"
कासगंज	"	"
बल राम	"	"
चकेरी	"	"
हनोत	"	"
अनूप शहर	"	"
छलेसर	१२, १३ नव	१८७१
रामघाट	मई १८७१	१८७१
फर्रुखाबाद	१८७१	१८७२
वनारस	मार्च १८७२	१ अप्रैल "
मुगल सराय	अप्रैल "	"
डुमराजों	"	"
आरद	"	"
पटना	६-७ सित०	२ अको १८७२
मुंगेर	३ अको	१८ अको "
भागलपुर	अको	१५ दिस० "
कलकत्ता	१६ दिस०	१ अप्रैल १८७३
हुगली	१ अप्रैल	" १८७३
वर्दवान	३ अप्रैल १८७३	अप्रैल १८७३
मागल पुर	१७ अप्रैल	" १७ मई "
पटना	१८ मई	" मई "
हपरा	२५ मई	" जून "
आरा	११ जून	" "
डुमराऊं	जुलाई	" अगस्त "

मिर्जापुर	८ अगस्त	१८७३	१८७३
इलाहाबाद	"	"	"
कानपुर	२० अको	"	६ नव "
लखनऊ	६ नव	"	१६ नव "
फर्रुखाबाद	२१ नव	"	दिस० "
कासगंज	१० दिस०	"	२० दिस० "
छलेसर	२० दिस०	"	दिस० "
अलीगढ़	२६ दिस०	१८७३	२२ जनवरी १८७४
हाथरस	२२ जन०	१८७४	जनवरी "
वृन्दावन	२६ फरवरी	"	१४ मार्च "
मथुरा	१४ मार्च	"	१६ मार्च "
मुरसान	१६ मार्च	"	" "
इलाहाबाद	"	"	" "
वनारस	मई	"	" "
इलाहाबाद	१ जुलाई	"	अक्रो "
जब्वलपुर	अक्रो	"	" "
नासिक	"	"	" "
बम्बई	२६ अक्रो	"	दिस० "
सूरत	दिस०	"	" "
भड़ोंच	दिसम्बर	१८७४	दिसम्बर १८७४
अहमदाबाद	"	"	२८ " "
नडियाड	"	"	" "
राजकोट	३१ दिसम्बर	"	१८ जन० १८७५
वाघवान	१६ जन०	१८७५	२० " "
अहमदाबाद	२१ जन०	"	" "
बम्बई	२६ जन०	"	" "
पूना	"	"	" "

सतारा	सित०	"	"	"
पूना		"	"	"
बम्बई	अक्टो०	"	"	"
बडौदा	"	"		१८७६
अहमदाबाद		१८७६		"
मडौच		"		"
सूरत		"		"
बलसाड		"		"
वसीन रोड		"		"
बम्बई		"	अप्रैल	"
इन्दौर	अप्रैल	"	"	"
फरुखाबाद	१ मई	"	२४ मई	"
बनारस	२७ मई	१८७६	१४ अग०	"
जौनपुर	१५ अग०	"	१८ "	"
अयोध्या	१८ "	"		"
लखनऊ	२६ सित०	"	१ नव०	"
शाहजहाँपुर	१ नव०	"		"
बरेली	६ नव०	"		"
मुरादाबाद	नव०	"		"
कर्णवास	दिस०	"	दिस०	"
छलेसर	"	"	"	"
अलीगढ़	"	"	"	"
दिल्ली	"	"	जन०	१८७७
मेरठ	१६ जन०	१८७७	१५ फर०	"
सहारनपुर	१५ फर०	"	११ मार्च	"
शाहजहाँपुर	११ मार्च	"	१५ "	"
चाँदापुर	१५ "	"	२२ "	"

सहारनपुर	२३	"	"	३१	"	"
लुधियाना	३१	"	"	१६ अप्रैल	"	"
लाहौर	१६ अप्रै०	"	"	५ जुलाई	"	"
अमृतसर	५ जुलाई	"	"	१७ अगस्त	"	"
गुरदासपुर	१७ अग०	"	"	२६	"	"
अमृतसर	२६	"	"	१३ सित०	"	"
जालन्धर	१३ सित०	"	"	१७ अक्टो०	"	"
लाहौर	१७ अक्टो०	"	"	२६ अक्टो०	"	"
रावलपिंडी	८ नव०	"	"	२६ दिस०	"	"
झेलम	२७ दिस०	"	"	१३ जन० १८७८	"	"
गुजरात	१३ जन० १८७८	"	"	२ फर०	"	"
बजीराबाद	२ फर०	"	"	७	"	"
गुजरांवाला	७ फर०	"	"	३ मार्च	"	"
लाहौर	३ मार्च	"	"	१२	"	"
मुलतान	१२	"	"	१६ अप्रैल	"	"
लाहौर	१७ अप्रैल	"	"	१५ मई	"	"
अमृतसर	१५ मई	"	"	जुलाई	"	"
जालन्धर	जुलाई	"	"	"	"	"
लुधियाना	"	"	"	"	"	"
रुड़की	"	"	"	२१ अगस्त	"	"
अलीगढ़	२२ अगस्त	"	"	२६	"	"
मेरठ	२६	"	"	३ अक्टो०	"	"
दिल्ली	३ अक्टो०	"	"	६ नव०	"	"
अजमेर	७ नव०	"	"	७ नव	"	"
पुष्कर	७ नव०	"	"	१४	"	"
अजमेर	१४	"	"	२ दिस०	"	"
मसूदा	२ दिस०	"	"	१०	"	"

नसीराबाद छावनी	१०	"	"	१४	"	"
जयपुर	१४	"	"	२४	"	"
रिवाड़ी	२५	"	"	६ जन०	१८७६	
दिल्ली	६ जन०	१८७६		१६	"	"
मेरठ	१६	"	"	फर०	१८७६	
सहारनपुर	फर०	१८७६		६	"	"
रुड़की	६	"	"	२०	"	"
ज्वालापुर	२०	"	"	२७	"	"
हरिद्वार	२७	"	"	१४ अप्रैल	"	
देहरादून	१४ अप्रैल	"		३०	"	"
सहारनपुर	१ मई	"		३ मई	"	
मेरठ	३	"	"	२२	"	"
अलीगढ़	२२	"	"	२८	"	"
छलेसर	२८	"	"	३ जुलाई	"	
मुरादाबाद	३ जुलाई	"		३१	"	"
वदायूं	३१	"	"	१४ अगस्त	"	
बरेली	१४ अगस्त	"		४ सित०	"	
शाहजहांपुर	४ सित०	"		१७	"	"
लखनऊ	१८ सित०	"		२४	"	"
कानपुर	२४	"	"	२५	"	"
फर्रुखाबाद	२५	"	"	८ अक्टो०	"	
कानपुर	८ अक्टो०	"		१७	"	"
इलाहाबाद	१७	"	"	२३	"	"
मिर्जापुर	२३	"	"	३०	"	"
दानापुर	३०	"	"	१६ नव०	"	
बनारस	१६ नव०	"		५ मई	१८८०	
लखनऊ	५ मई	१८८०		२०	"	"

फर्रुखाबाद	२०	"	"	३०	जून	"
मैनपुरी	१	जुलाई	"	६	जुलाई	"
भारोल	६	"	"	७	"	"
मेरठ	८	"	"	१५	सित०	"
मुजफ्फरनगर	१५	सितम्बर	"		अक्टो०	"
मेरठ		अक्टो०	"		"	"
देहरादून	७	"		२०	नवम्बर	"
मेरठ	२१	नवम्बर	"		नवम्बर	"
आगरा		"	"	१०	मार्च १८८१	
भरतपुर	१०	मार्च १८८१		१६	"	"
जयपुर	२०	"	"	५	मई	"
अजमेर	५	"	"	२३	जून	"
नसीराबाद						
छावनी	२३	जून १८८१		२३	जून १८८१	
मसूदा	"	"	"	१८	अगस्त	"
व्यावर	१८	अगस्त	"	"	"	"
हरिपुर स्टेट	१६	"	"	१६	"	"
रामपुर	"	"	"	"	"	"
व्यावर	८	सितम्बर	"	२१	सित०	"
मसूदा	२१	"	"	६	अक्टो०	"
हर्दा	६	अक्टोबर	"	"	"	"
रूपाहेली		"	"	"	"	"
रटेरा		"	"	"	"	"
बनेड़ा	१०	"	"	२६	"	"
चित्तौड़गढ़	२७	"	"	२४	दिस०	"
इन्दौर		"	"	"	"	"
बम्बई	३०	दिसम्बर	"	२४	जून १८८२	

२४२

खंडवा	२५	" "	३ जुलाई "
इन्दौर	३	जुलाई "	५ " "
रतलाम	५	" १८८२	" "
जवारा		" "	२४ " "
चित्तौड़	२५	" "	अगस्त "
निम्बहड़ा		अगस्त "	" "
उदयपुर	११	" "	१ मार्च १८८३
निम्बहड़ा	१	मार्च "	" "
चित्तौड़		" "	७ " "
रूपाहेली	८	" "	८ " "
शाहपुरा	९	" "	२६ मई "
अजमेर	२८	मई "	२८ " "
पाली	२९	" "	२९ " "
रोपट	३०	" "	३० " "
जोधपुर	३१	" "	१६ अक्टोबर "
रोपट	१७	अक्टोबर "	१७ " "
पाली	१८	" "	२० " "
आबू	२१	" "	२६ " "
अजमेर	२७	" "	३० " "

प्रामाणिक ग्रंथ

ऋषि मुनि जिन ग्रंथों को प्रामाणिक मानते आये हैं वे ग्रंथ केवल चार हैं :—

१. ऋग्वेद
२. यजुर्वेद
३. सामवेद
४. अथर्ववेद

बाकी जितने भी ग्रन्थ, अंग, उपांग, उपवेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि हैं वे वेदानुकूल होने ही से प्रमाण हैं। यदि उनकी कोई बात वेद-विरुद्ध हो तो वह प्रमाण कोटि से गिर जायगी। इसी सिद्धान्त के समर्थक ऋषि दयानन्द थे और इसी सिद्धान्त को आर्यसमाज मानता है।

महर्षि दयानन्द रचित ग्रन्थों की सूची

(१) सत्यार्थप्रकाश (२) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (३) संस्कार विधि (४) वेदांग प्रकाश (५) पञ्च महायज्ञविधि (६) गो कर्षण-विधि (७) आयोद्देश्य रत्नमाला (८) भ्रमोच्छेदन (९) भ्रान्तिनिवारण (१०) व्यवहारभानु (११) आर्याभिविनय (१२) वेद विरुद्धमत खण्डन (१३) स्वामी नारायण मतखण्डन (१४) वेदान्ति ध्वान्त निवारण (१५) भ्रमोच्छेदन (१६) संस्कृत वाक्य प्रबोध (१७) यजुर्वेद भाष्य (१८) ऋग्वेद भाष्य (१९) पाखण्ड खण्डन (२०) अद्वैत मत खण्डन (२१) सत्य धर्म विचार (२२) काशी शास्त्रार्थ ।

महर्षि के ग्रन्थों पर एक दृष्टि

(१) सत्यार्थप्रकाश

इसके दो भाग हैं, एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्ध में १० समुल्लास हैं और उनमें सत्य वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है और यह मण्डन भाग कहलाता है । उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं, जिनमें पुरानी, जैनी, किरानी और कुरानी मत मतान्तरों पर विस्तृत समालोचना की गई है । यह वस्तुतः खण्डन भाग कहलाता है । खण्डन भाग रोगों के लिए औषधि रूप है और मण्डन भाग निरोगी पुरुषों के लिए पथ्यरूप है । इस पुस्तक के लिखने से महर्षि का यही प्रयोजन मालूम होता है कि वह मनुष्य जाति को अन्धकार से निकाल कर वैदिक सूर्य का प्रकाश दिखलाना चाहते थे । उन्होंने स्वयं इस पुस्तक में लिखा है कि “मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाश करना है ।” उत्तरार्द्ध में महर्षि ने अपनी अकाट्य युक्तियों और प्रमाणों के बल पर अवैदिक मतों का बलपूर्वक खण्डन किया है । इसी “सत्यार्थ-प्रकाश” के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्रीयुत पं० गुरुदत्त जी एम० ए० कहा करते थे कि “यदि सत्यार्थप्रकाश की एक प्रति का मूल्य १०००) रु० होता, तो भी मैं उसे अपनी सारी जायदाद बेच कर (भी) खरीदता, मैं जिधर देखता हूँ उधर ही ‘सत्यार्थप्रकाश’ में उस २ विद्या की बातें भरी हुई पाता हूँ कि जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित हो जाती है । मैंने ग्यारह बार “सत्यार्थप्रकाश” को विचार पूर्वक पढ़ा है और जब-जब उसे पढ़ा तब-तब नये अर्थों का भाव मेरे मन में हुआ है ।”

(२) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका

चारों वेदों के भाष्य की यह एक भूमिका है । इस भूमिका में संस्कृत लेख तो महर्षि का अपना है और हिन्दी अनुवाद पण्डितों का है । कई जगह पर इस अनुवाद में त्रुटियाँ भी रह गई हैं । इस पुस्तक में वेदों की उत्पत्ति, गणित, तार, विमान आदि नाना विद्याओं का वेदों से बीज

मन्त्र, वर्णाश्रमधर्म, पुनर्जन्म, प्रामाण्य-अप्रामाण्य ग्रन्थों का विषय, वैदिक अलंकारों और रूढ़ि अर्थवाची पौराणिक भाष्यकारों के भाष्यों और प्रश्नोत्तर रूप में वेदार्थ करने की शैली पर सार गभित रीति से प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में उस समय के विख्यात समालोचक मुन्शी कन्हैयालाल जी अलखधारी लिखते हैं कि—“सत्य तो यह है कि बादशाहों के वचनों को समझने के लिए बादशाही दिमाग चाहिए और ऋषिवरों के वचनामृत को समझने के लिये ऋषीश्वरों का दिमाग चाहिए। बादशाह और ऋषीश्वर कभी अनुचित और तर्कशून्य वचन नहीं कहते। स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक द्वारा वदमाश की वदमाशी इस प्रकार से चली जाएगी, जिस प्रकार हवा से बादल और गदहे के सिर से सींग चले जाते हैं...मन्दभाग्य होगा वह मनुष्य जो श्री स्वामी जी महाराज की इस पुस्तक के लाभ से वंचित रहेगा।”

(३) संस्कारविधि

इस पुस्तक में सोलह संस्कारों का वर्णन है। इन संस्कारों के प्रताप से हमारे पूर्वज अपनी सन्तान को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उत्तम और सच्चरित्र बनाने का प्रयत्न करते थे। महर्षि ने प्राचीन प्रमाणों के आधार पर इस ग्रन्थ को रचा है। शान्तिदायक वेद मन्त्रों द्वारा आत्मिक प्रसन्नता और हवन यज्ञ द्वारा शारीरिक योग्यता प्राप्त होती है। “गर्भाधान” पहला संस्कार है और “अन्त्येष्टि कर्म” सबसे अन्तिम संस्कार है।

(४) वेदांग प्रकाश

यह व्याकरण शास्त्र है। महर्षि पाणिनि रचित अष्टाध्यायी व्याकरण शास्त्र का मूल आधार समझी जाती है। यह वेदांग प्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है। वेदार्थ जानने के लिए अष्टाध्यायी और निघण्टु आदि प्रधान साधन समझे जाते हैं और इन प्रधान साधनों की उत्तमता दिखलाना और उनके पढ़ने की ओर रुचि उत्पन्न करना वेदांग प्रकाश का मुख्य उद्देश्य है।

(५) पंचमहायज्ञविधि

नित्यकर्मविधि की यह एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें पांच महा-यज्ञों का विधान है। निम्नलिखित पंच महायज्ञ कहलाते हैं:—

- (१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) पितृयज्ञ (४) भूतयज्ञ (५) नृयज्ञ (६) गोकर्णनिधि।

गऊ आदि मूक पशुओं के प्रतिनिधि रूप से महर्षि ने इस पुस्तक को लिखा है। इस पुस्तक के बनाने में महर्षि का जो अभिप्राय था, वह हम उन्हीं के शब्दों में लिख देना पर्याप्त समझते हैं:—

“यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है कि जिससे गवादि पशु जहां तक सामर्थ्य हो, बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सबको सुख बढ़ता है।”

इस ग्रन्थ में महर्षि ने मांस खाने का बलपूर्वक निषेध किया है। महर्षि लिखते हैं कि “मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं। “दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि मारने की विधि नहीं लिखी” इत्यादि।

(७) आर्योद्देश्य रत्नमाला

जब-जब और जहां-जहां श्री स्वामी जी महाराज धर्मोपदेश करते थे तो लोग उनसे प्रायः आर्य सिद्धान्तों के विषय में प्रश्न किया करते थे। इस कठिनाई के निवारणार्थ महर्षि ने अमृतसर में इस पुस्तक को प्रकाशित किया। इस लघु पुस्तक में महर्षि ने एक सौ सिद्धान्त रूपी रत्नों को इकट्ठा करके माला के रूप में पिरोया है। एक-एक रत्न पर विचार करने से यह माला बहुत रमणीय प्रतीत होती है।

(८) भ्रमोच्छेदन और अनुभ्रमोच्छेदन

महर्षि ने काशी के प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री आदि पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये, और विजय प्राप्त की। कई मास तक श्री स्वामी जी महाराज काशी में रहकर उपदेश करते रहे, परन्तु राजा शिवप्रसाद जी सितारे हिन्द को महर्षि के सामने आकर

शास्त्रार्थ करने अथवा शंका समाधान करने का भी साहस न हुआ। परन्तु ज्योंही श्री स्वामी जी काशी से चलने लगे, तो राजा साहिब ने एक पुस्तक बना और उस पर स्वामी विशुद्धानन्द की सम्मति लिखवा कर प्रकाशित कर दी। यदि राजा साहिब स्वामी विशुद्धानन्द की सम्मति न लिखवाते तो महर्षि इसके उत्तर में एक अक्षर भी न लिखते क्योंकि वह राजा साहिब को सर्वथा अयोग्य समझते थे। इन पुस्तकों में महर्षि ने राजा शिवप्रसाद जी के आक्षेपों का युक्तिपूर्ण समाधान किया है। कहा जाता है कि राय कन्हैयालाल एक एक्जैक्यूटिव इंजीनियर के सुपुत्र लाला सेवाराम जी बी० ए० ने श्री स्वामी जी महाराज को लिखा था कि आपने इन पुस्तकों में नमी से काम नहीं लिया और राजा शिवप्रसाद जी के आक्षेपों की कड़ी समालोचना की है। इसके उत्तर में भी श्री स्वामी जी ने उन्हें स्वर्गीय लाला साईदास जी प्रधान आर्यसमाज लाहौर के द्वारा लिखा कि “मैं आजकल के कालेजों और स्कूलों का पढ़ा हुआ नहीं हूँ जो मन में और हो और प्रकट में और हो। मैं तो जो कुछ मन में सत्य समझता हूँ, उसी को प्रकट करता हूँ, मुलम्माबाजी (दम्भ) और कुटिल नीति की बातें मुझे नहीं आतीं।”

(६) भ्रान्ति निवारण

महर्षि के वेद भाष्य पर पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने बड़े-बड़े आक्षेप किये थे। महर्षि ने इस पुस्तक में उन तमाम आक्षेपों को निर्मूल सिद्ध करके दिखला दिया है।

(१०) व्यवहार भानु

इस पुस्तक में “हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए।” इस विषय पर बहुत उत्तम रीति से प्रकाश डाला गया है।

(११) आर्याभिविनय

इस छोटी सी पुस्तक में महर्षि ने ऋग्वेद और यजुर्वेद से उद्धृत करके १०८ मन्त्रों की संक्षिप्त व्याख्या की है। इन मन्त्रों में ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना का प्रकार दिखलाया गया है। यह पुस्तक

ईश्वर भक्तों के लिए अत्यन्त प्रिय और रोचक है, क्योंकि इससे आत्मा को शान्ति मिलती है। भक्तजनों के रोजाना पाठ के लिए बहुत उपयोगी है।

(१२) वेद विरुद्ध मत खण्डन

इस पुस्तक में वल्लभाचार्य मत को वेद विरुद्ध सिद्ध किया गया है। पहिले यह पुस्तक केवल संस्कृत में थी, परन्तु अब इसका हिन्दी अनुवाद भी नीचे दिया गया है।

(१३) स्वामी नारायण मत खण्डन

इसमें स्वामी सहजानन्द के चलाये हुए स्वामी नारायण मत का प्रश्नोत्तर रीति से खण्डन किया गया है।

(१४) वेदान्ति ध्वान्त निवारण

इस पुस्तक में महर्षि ने नवीन वेदान्तियों के 'जीव ब्रह्म की एकता और जगत् मिथ्या है' आदि सिद्धान्तों का बलपूर्वक खण्डन किया है।

(१६) संस्कृत वाक्य प्रबोध

यह ग्रन्थ संस्कृत बोलने के सम्बन्ध में है जिसमें संस्कृत के वाक्य और उनके सामने उनका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। जल्दी छपने के कारण इसमें कई अशुद्धियाँ रह गई हैं। इस पर काशी के कई स्वार्थी पौराणिकों ने मिलकर असभ्य पुस्तक "अबोध निवारण" नाम से बनाया, परन्तु लिखने वाले को अपना नाम प्रकाशित करने का भी साहस न हुआ। महर्षि ने अपने पत्र मि० श्रा० शु० १३ बुधवार, संवत् १९३७ ई०, में मुं० वख्तावरसिंह को लिखा कि "जो संस्कृत वाक्य प्रबोध पर पुस्तक छपवाया है, सो बहुत ठिकानों में उनका लेख अशुद्ध है और कई एक ठिकानों में संस्कृत में अशुद्ध भी छापा है। इस अशुद्धि के कारण तीन हैं—एक शीघ्र बनना, मेरा चित्त स्वस्थ न होना, दूसरी भीमसेन के आधीन शोधने का (काम) हीना और मेरा (उसे) न देखना, न प्रूफ को शोधना, तीसरे छापेखाने में उस समय कोई भी कम्पोजीटर बुद्धिमान न होना, लैम्पों की न्यूनता होना।"

(१६) पाखण्ड खण्डन

यह सात पृष्ठों की छोटी सी पुस्तक संस्कृत में महर्षि ने भागवत खण्डन विषय पर लिखी। सम्वत् १९२१-२२ में जब श्री स्वामी जी दो वर्ष तक आगरा में रहे, उन्हीं दिनों की यह पुस्तक लिखी हुई मालूम होती है। सबसे पुरानी हस्तलिखित प्रति इसकी ज्येष्ठ २-६ ति० वा नक्षत्र सम्वत् १९२३, तदनुसार ७ जून सन् १८८६ की लिखी हुई पण्डित छगनलालजी शास्त्री, कृष्णगढ़ निवासी के पास मौजूद थी। अजमेर से वापस जाकर सम्वत् १९२३ के अन्त में 'ज्वालाप्रसाद प्रेस आगरा' में पं० ज्वालाप्रसाद भार्गव के प्रबन्ध में इस पुस्तक की कई हजार कापियां छपवाई गईं और पहिली बैसाख सम्वत् १९२४ के कुम्भ पर अर्थात् १२ अप्रैल सन् १८६७ के अवसर पर हरिद्वार में इसे वेदाम बांटा गया। यह बहुत ही उत्तम संस्कृत भाषा में थी। दूसरी बार यह पुस्तक नहीं छपी।

(१७-१८) यजुर्वेद भाष्य और ऋग्वेद भाष्य

महर्षि ने प्रथम ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया। ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में ही महर्षि लिखते हैं कि—

“आगे मैं सब प्रकार विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके सम्वत् १९३४ मार्गशुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूँ।”

ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ के एक मास पश्चात् अर्थात् सम्वत् १९३४ पौष शु० १३ गुरुवार के दिन महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया। यजुर्वेद में कुल ४० अध्याय हैं और सब अध्यायों के मन्त्रों की संख्या १९८५ है। ऋषिवर ने यजुर्वेद का पूरा भाष्य किया। सम्वत् १९३९ में वैदिक यन्त्रालय अजमेर की ओर से एक विज्ञापन पत्र छपा था कि—
“सब सज्जनों को विदित हो कि श्री स्वामी जी महाराज ने यजुर्वेद भाष्य बनाकर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेद भाष्य

भी इसी प्रकार शीघ्र ही पूरा होगा ।” परन्तु हमारे भाग्य में यह कहाँ था कि महर्षि ऋग्वेद भाष्य को अन्त तक समाप्त कर लेते । उनकी मृत्यु ने इस कार्य को पूर्ण न होने दिया और सम्बत् १९४१ के चैत्र मास में वैदिक यन्त्रालय ने यह विज्ञापन दिया कि महर्षि यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद के पांच अष्टक भाष्य को छोड़कर परम धाम को पधार गये । यह स्मरण रहे कि ऋग्वेद में कुल आठ अष्टक हैं और एक-एक अष्टक में आठ-आठ अध्याय हैं, सब अध्याय मिलकर ६४ अध्याय होते हैं । आठों अष्टकों के सब सर्ग २०२४ होते हैं । इसमें कुल दस मण्डल हैं और दशों मण्डलों में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८९ मन्त्र हैं । महर्षि का ऋग्वेद भाष्य सातवें मण्डल पांचवें अष्टक के पांचवें अध्याय के तीसरे मन्त्र तक का है ।

इन दोनों भाष्यों में संस्कृत और हिन्दी दोनों प्रकार के लेख हैं । संस्कृत तो महर्षि की ओर से है, परन्तु हिन्दी की भाषा अनुवादक पण्डितों की बनाई हुई है । किसी-किसी स्थल पर हिन्दी में महर्षि के संस्कृत भाष्य का अभिप्राय ठीक-ठीक नहीं प्रकट किया गया और कहीं-कहीं हिन्दी अर्थ संस्कृत अर्थ से भिन्न भी पाये जाते हैं, अतः महर्षि के संस्कृत अर्थों को ही प्रामाणिक समझना चाहिए ।

(२) अद्वैत मत खण्डन

मालूम होता है कि यह छोटी सी पुस्तक श्री स्वामी जी महाराज ने शास्त्रार्थ काशी के बाद रची और इसे एक हिन्दी मासिक-पत्र “कवि वचन सुधा” में संस्कृत भाषा में हिन्दी अनुवाद सहित मुद्रित कराया । दूसरी बार नहीं छपी ।

इसके अतिरिक्त हुगली शास्त्रार्थ, बरेली और जालन्धर शास्त्रार्थ के विषयों पर भी लिखे हुए ट्रेक्ट मिलते हैं ।

महर्षि ने जुलाई वा अगस्त सन् १८७५ में पूना नगर में १५ व्याख्यान दिये थे जो उसी समय वहाँ के एक पत्र के सम्पादक महाशय ने लिखकर मराठी भाषा में प्रकाशित कर दिये थे । आर्य प्रतिनिधि समा

राजस्थान ने सन् १८९३ में श्री पं० गणेशरामचन्द्र महाराष्ट्र ब्राह्मण से हिन्दी में अनुवाद कराकर प्रकाशित किये। इस समय यह व्याख्यान “उपदेश मञ्जरी” नाम की एक पुस्तक में मिलते हैं।

एक और अपूर्व ग्रन्थ महर्षि लिखने वाले थे।

“वेदांग प्रकाश” के सन्धि विषय में महर्षि का यह लेख है कि—

यह १८ प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं, किन्तु इनको प्रमाण और विस्तार पूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे।”

इससे मालूम होता है कि वेदांग प्रकाश के अतिरिक्त महर्षि अष्टाध्यायी का भाष्य करने का भी विचार रखते थे, परन्तु उनका देहान्त हो जाने से यह कार्य पूरा नहीं हो सका।

वैदिक साहित्य

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए जिन चार साधनों की आवश्यकता है, वे इन चार वेदों में बतलाये गये हैं अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान । चारों वेदों में चौबीस हजार मन्त्र और सात लाख अड़सठ हजार शब्द हैं । ऋग्वेद सबसे बड़ा है । उसमें दस मण्डल हैं और इन मण्डलों में १०२८ सूक्त और १०५८९ ऋचायें हैं । इन ऋचाओं में १५३८२६ पद हैं, जिनमें ४३२००० अक्षर हैं । सामवेद में १५४३ साम मन्त्र हैं । यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं जिनमें १९९५ कण्डिकाएं और मन्त्र हैं अथर्ववेद में २० काण्ड हैं, जिनमें ७६० सूक्त और लगभग ३००० ऋचाएं हैं ।

उपवेद—चार वेदों के चार उपवेद अर्थात् अथर्ववेद ऋग्वेद का, धनुर्वेद यजुर्वेद का आयुर्वेद अथर्ववेद का और गन्धर्ववेद सामवेद का उपवेद है ।

वेदों की व्याख्या—ब्राह्मण ग्रंथों में की गई हैं । गणना में तो ये अधिक हैं, परन्तु साधारण तौर पर प्रसिद्ध चार ही हैं । ऋग्वेद का ऐतरेय सामवेद ब्राह्मण का साम ब्राह्मण (ताण्ड्य या छान्दोग्य ब्राह्मण) और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण । प्राचीन वैदिक साहित्य में इन्हीं को पुराण कहा गया है ।

वेदों की शाखा—वेदों की ११३१, सामवेद की १०००, ऋग्वेद की २१ और अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं (महाभाष्य पानञ्जल) ।

वेदों के अंग—छः हैं । शिक्षा. कल्प. निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द । वेदों के जानने के लिए इनका जानना आवश्यक है ।

वेदों के उपांग—वेदों के छः उपांग हैं । जिनको छः दर्शन अथवा छः शास्त्र भी कहते हैं ।

इनके नाम वे हैं—कपिल का सांख्य, गौतम का न्याय, पातञ्जलि का योग, कणाद का वैशेषिक, व्यास का वेदान्त और जैमिनि का मीमांसा दर्शन ।

उपनिषद्—जिनसे हमें ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, उन्हें 'उपनिषद्' कहते हैं । जो उपनिषद् प्रामाणिक समझी जाती हैं, उनके नाम ये हैं—ईश केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ।

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिए उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके । यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मतवाले भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं । मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य है । मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छोड़वाना मुझको अभीष्ट है । यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन हैं । इनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं, क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है । मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यो के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे,

इतना ही नहीं किन्तु अपने सब सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों, रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे। इसमें श्रीमान् महाराज भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं। उनका लिखना उपयुक्त समझकर लिखता हूँ—

निन्दन्तू नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा.

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥ भर्तृपरि ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्,

धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।

धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये,

जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥२॥ महाभारते ॥

एक एव सुहृद्वर्मी निधनेऽप्यनुयाति यः ।

शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्वि गच्छति ॥३॥ मनु० ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।

येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥४॥

न हि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।

न हि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥५॥ उ नि० ॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है। अब मैं जिन जिन पदार्थों को जैसा जैसा मानता हूँ

उन उन का वर्णन संक्षेप से येंहां करता हूँ कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने अपने प्रकरण में कर दिया है, इनमें से :—

१—प्रथम 'ईश्वर' कि जिसके ब्रह्मा, परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्यायसे फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसीको परमेश्वर मानता हूँ ।

२—चारों 'वेदों' (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निभ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ, वे स्वयं प्रमाणस्वरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं, और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा, जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविशुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूँ ।

३—जो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको 'धर्म' और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको 'अधर्म' मानता हूँ ।

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को 'जीव' मानता हूँ ।

५—जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं, अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ ।

६—‘अनादि पदार्थ’ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

७—‘प्रवाह से अनादि’ जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिनसे प्रथम संयोग होता है, वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।

८—‘सृष्टि, उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान-युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना।

९—‘सृष्टि का प्रयोजन’ यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं ? उसने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी।

१०—‘सृष्टिसकर्तृक’ है, इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का ‘कर्त्ता’ अवश्य है।

११—‘बन्ध’ सनिमित्तक अर्थात् अविद्या-निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं। इसलिए यह ‘बन्ध’ है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

१२—‘मुक्ति’ अर्थात् सर्व बुराई से छूटकर बन्धरहित, सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

१३—‘मुक्ति के साधन’ ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति’ आप्त विद्वानों का संग, सत्य विद्या सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

१४—‘अर्थ’ वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको ‘अनर्थ’ कहते हैं ।

१५—‘काम’ वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय ।

१६—‘वर्णाश्रम’ गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ ।

१७—‘राजा’ उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित, न्याय-धर्म की सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्त और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ।

१८—‘प्रजा’ उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते ।

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो “न्यायकारी” है उसको मैं भी ठीक मानता हूँ ।

२०—‘देव’ विद्वानों को और अविद्वानों को ‘असुर’ पापियों को ‘राक्षस, अनाचारियों को ‘पिशाच, मानता हूँ ।

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना ‘देवपूजा’ कहाती है, इससे विपरीत ‘अदेवपूजा’ । इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ ।

२२—‘शिक्षा’ जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं ।

२३—‘पुराण’ जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं, उन्हींको पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूँ; अन्य भागवतादि को नहीं ।

२४—‘तीर्थ’ जिससे दुखसागर से पार उतरे कि जो सत्य भाषण, विद्या, सत्संग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूँ; इतर जलस्थलादि को नहीं।

२५—‘पुरुषार्थ’ प्रारब्ध से बड़ा इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते, जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके विगड़ने से सब विगड़ते हैं, इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

२६—‘मनुष्य’ को सबसे यथायोग्यस्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूँ।

२७—‘संस्कार’ उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है, इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिए।

२८—‘यज्ञ’ उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है; उसको उत्तम समझता हूँ।

२९—जैसे ‘आर्य’ श्रेष्ठ और ‘दस्यु’ दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

३०—‘आर्यावर्त्त’ देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्म-पुत्र नदी है, इन चारों के बीच में जितरा देश है उसको ‘आर्यावर्त्त’ कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी ‘आर्य’ कहते हैं।

३१—जो सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह ‘आचार्य’ कहाता है।

३२—‘शिष्य’ उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है ।

३३—‘गुरु’ माता पिता और जो सत्य को ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी ‘गुरु’ कहलाता है ।

३४—‘पुरोहित’ जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे ।

३५—‘उपाध्याय’ जो वेदों का एकदेश वा अंगों को पढ़ाता हो ।

३६—‘शिष्टाचार’ जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह ‘शिष्ट’ कहाता है ।

३७—प्रत्यक्षादि आठ ‘प्रमाणों’ को भी मानता हूँ ।

३८—‘आप्त’ जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा सबके सुख के लिए प्रयत्न करता है उसी को ‘आप्त’ कहता हूँ ।

३९—‘परीक्षा’ पांच प्रकार की है । इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टित्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवी अपने आत्मा की पवित्रता विद्या । इन पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये ।

४०—‘परोपकार’ जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख: छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूँ ।

४१—‘स्वतन्त्र’ ‘परतन्त्र’ जीव अपने कर्मों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र ; वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ।

४२—‘स्वर्ग’ नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है ।

४३—‘नरक’ जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होता है ।

४४—‘जन्म’ जो शरीर धारण कर प्रकट होना; सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ।

४५—शरीर के संयोग का नाम ‘जन्म’ और वियोगभात्र को ‘मृत्यु’ कहते हैं ।

४६—‘विवाह’ जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह विवाह कहाता है ।

४७—‘नियोग’ विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष स्व-वर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ।

४८—‘स्तुति’ गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना । इसका फल प्रीति आदि होते हैं ।

४९—‘प्रार्थना’ अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है ।

५०—‘उपासना’ जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना । ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जानके ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है । इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है ।

५१—‘सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपसना’ जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो नहीं है उनसे प्रथक मान कर प्रशंसा करना ‘सगुणनिर्गुणस्तुति’, शुभगुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना ‘सगुणनिर्गुणोपासना’

और सब गुणों से सहित, सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञाके अर्पण कर देना “सगुण-निर्गुणोपसना” होती है।

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी “सत्यार्थप्रकाश” के प्रकरण-प्रकरण में है तथा ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि ग्रंथों में भी लिखी है। अर्थात् जो-जो बात सबके सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सबके सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है, ऐसे सिद्धांतों को स्वीकार करता हूँ और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं पसन्द नहीं करता क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट, सर्वसत्य का प्रचार कर, सब को ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दूढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सब को सुख और लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से ‘यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे’ जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थकाभ-मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वय्येषु ॥

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वय्यमा ॥ शन्न
इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते
वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् ।
ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् ।
आवीन्माम् आवीद्वक्तारम् । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारा अभिवादन नमस्ते

हमारा वेद शास्त्रानुमोदित संक्षिप्त, सार्थक और कर्ण प्रिय अभिवादन 'नमस्ते' है 'नमस्कार' नहीं है। नमस्कार का प्रचलन जन्मना ब्राह्मणों ने अपने अभिवादन के लिए किया था जो अपूर्ण है और अभिवादन कर्त्ता के पूर्ण भाव को व्यक्त नहीं करता।

वर्तमान युग में महर्षि, दयानन्द और आर्य समाज ने नमस्ते के अभिवादन को पुनर्जीवित किया। आज सभ्य समाज में इससे अधिक लोकप्रिय कोई दूसरा अभिवादन नहीं है। देश के बड़े बड़े नेता और विदेश के विशिष्ट जन भारत में और भारत से बाहर इसका प्रयोग करके इसके महत्व को दर्शाते हैं। यह हमारे देश की विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा का द्योतक है।

वेदों में अनेक स्थानों पर 'नमस्ते' का प्रयोग पढ़ने को मिलता है उदाहरणार्थ यजुर्वेद अ० ३६ के २१ वें मन्त्र को ले लीजिए। उसका एक अंश इस प्रकार है:—

नमस्ते अस्तु विद्यूते नमस्ते स्तनयित्न वे

स्वयं पुराणों में इसी अभिवादन को मान्यता दी गई है। शिवपुराण के उत्तर खण्ड के १४ वें अध्याय के २४ वें श्लोक में कहा इसका उल्लेख है। श्लोक इस प्रकार है:—

“तवाब बोधो भगवन् भूतानामु दयाय च
प्रलपाय भवेद्वा त्रि नमस्ते काल रूपिणे”

नमस्ते का अर्थ बड़ा हृदय ग्राही है जो इस प्रकार है:—

मैं अपने हृदय से, अपने शिर से आपकी अन्तरात्मा के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता हूँ।”

I with my heart and with my head pay my respect
to the soul with in you.

सं०

॥ ओ३म् ॥
॥ सत्यमेव जयते नानृतम् ॥
(शुद्धि का)

प्रमाण पत्रम्

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो

विश्वमार्यम् । अपध्नन्तो अराव्णः ॥

हे मनुष्यो ! तुम ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए सारे संसार को आर्य बनाने में आलस्य तथा प्रमाद को छोड़ कर प्रयत्नवान् होओ ।

हम प्रमाणित करते हैं कि श्री/श्रीमती.....

सुपुत्र / सुपुत्री.....आयु.....

निवासी / निवासिनी.....जिला.....प्रदेश

.....ने जो पूर्व.....थे/थीं

प्रसन्नतापूर्वक वैदिक धर्म को स्वीकार किया है । इनका आर्यसमाज, की अध्यक्षाता में दिनांक.....को.....

स्थान में श्रीयुत.....द्वारा शास्त्र विध्यानुसार

आर्य जाति में प्रवेश कराया गया है अतः यह आर्यों के सदृश खान पान

आदि सब व्यवहार के अधिकारी हैं । इनके साथ परिवार के निम्न-लिखित व्यक्तियों ने भी प्रवेश किया है ।

पत्नी.....आयु.....

पुत्र.....

.....

.....

.....

पुत्री.....

अन्य.....

मन्त्री

आर्यसमाज

ह० उपदेशक वा पुरोहित

आर्य ध्वज गीत संशोधित रूप में

२८-८-५५ की सार्वदेशिक आ० प्र० सभा की अन्तरंग सभा के निश्चयानुसार आर्य ध्वजगीत का संशोधन हुआ। संशोधित गीत इस प्रकार है।

जयति ओ३म् ध्वज व्योम विहारी।

विश्व प्रेम सरिता अति प्यारी ॥ ध्रुव

सत्य सुधा वरसाने वाला,

स्नेह लता सरसाने वाला।

सौख्य सुमन वरसाने वाला,

विश्व विमोहकरि पुभय हारी ॥

इसके नीचे वढ़ें अभय मन,

सत्पथ पर सर्वधर्म धुरी जन।

वैदिक रवि का हो शुभ उदयन,

आलोकित होवें दिशि सारी ॥

इसी ध्वजा के नीचे आकर,

नीच ऊंच का भेद भुलाकर।

मिलें विश्व मुद मंगल गाकर

घोर अविद्या तम संहारी ॥

इस ध्वज को लेकर हम कर में,

भर दें वेद ज्ञान जग भर में।

सुभग शान्ति फैले घर घर में,

मिटे अविद्या की अंधियारी ॥

आर्य जाति का यश अक्षय हो,

आर्य ध्वजा की अविचल जय हो।

आर्य जनों का ध्रुव निश्चय हो,

आर्य बनावें वसुधा सारी ॥

समझदार मुसलमानों का सत्यार्थ- प्रकाश और महर्षि दयानन्द के प्रति दृष्टिकोण

(सितम्बर १९६३ के सार्वदेशिक पत्र से उद्धृत)

मिर्जा याकूब बेग

स्वामी दयानन्द मुसलमानों के मेहरबान दोस्त थे क्योंकि दोस्त वही है जो दोस्त के नकायस (त्रुटियों) को जता कर उसे राहे रास्त (सन्मार्ग) पर लाने की कोशिश करे।

मंत्री अंजुमन अहमदिया

इशायत इस्लाम

आर्य गजट फरवरी

१९२०

मौलवी मुराद अली अजमेरी

महर्षि दयानन्द जैसे बुर्जुगबार २ दुनियां में पैदा नहीं होते। उनकी यादगार न सिर्फ आयों बल्कि अंग्रेजों, यहूदियों और मुसलमानों के दिलों में और उनकी किताबें हजारों बरस बल्कि कयामत तक कायम रहेंगी। आयों के अलावा तमाम कौमें इस चश्मे फैज (उपकारस्रोत) सत्यार्थ प्रकाश से अब्द आबाद तक (सृष्टि के अन्त तक) सँराब (सिंचित) होती रहेगी।

कोहेनूर ३-११-१८८३

मौलाना मौहम्मद अली

सत्यार्थ प्रकाश स्वा. दयानन्द की मार्क तुल आला तसनीफ़ (सर्वोत्तम कृति) है, और स्वामी दयानन्द आर्यों के गुरु हैं। आर्य इनकी इस कदर इज्जत करते हैं कि उससे बढ़कर किसी इन्सान की इज्जत इनके दिल में नहीं। इसी तरह उनकी तसनीफ़ (रचना) सत्यार्थ प्रकाश की भी वे वे अन्दाज इज्जत (असीम आदर) करते हैं और इसे मज़हबी किताब (धर्म ग्रन्थ) का दर्जा देते हैं। हकूमत इस किताब को जव्त नहीं कर सकती और जव्त करके खाम खाह अपने सर पर मुसीबत मोल नहीं लेगी। हकूमत को क्या पड़ी है कि वह एक ऐसी ताकतवर जमाअत (शक्तिशाली समाज) को जैसी आर्यों की है बिना वजह अपना दुश्मन बनाले। बहरहाल एक नामुमकिन अमल और फिज़ूल ख्वाहिश (व्यर्थ इच्छा) का इज़हार करके हिन्दू अखबारात को दावत दी गई है कि वे कुरान पाक के मुतल्लिक भी ऐसी ही मांग करें।”

(हमदद अखबार ६-२-१९२५ अब्दुल गफूर (पूर्व धर्म पाल) द्वारा सत्यार्थ प्रकाश जव्ती विषयक आन्दोलन के विरोध में लिखे लेख का मुख्य अंश।)

ARYA MARRIGE ACT

No 19 of 1937.

[Finally Passed by both the
Houses and sanctioned by
His Excellency the
Governor General]

To recognise and remove doubts as to the
validity of inter-marriages current
among Arya Samajists,

Whereas it is expedient to recognise and place
beyond doubt the validity of inter-marriages of a class of
Hindus known as Arya Samajists; it is hereby enacted as
follows.

Short Title and Extent.

1. (i) This Act may be called the Arya Marriage
Validation Act. 1937.

(ii) It extends to the whole of British India includ-
ing British Baluchistan and the Santhal Parganas, and
applies also to all Indian subjects, of His Majesty within
other parts of India. and to all Indian subjects
of His Majesty without and beyond British India.

Marriages between Arya Samajists
not to be invalid.

2. Notwithstanding any provision of Hindu law, usage or custom to the contrary no marriage contracted whether before or after the commencement of this Act between two persons being at the time of the marriage Arya Samajists shall be invalid or shall be deemed ever to have been invalid by reason only of the fact that the parties at any time belonged to different castes or different sub-castes of Hindus or that either or both of the parties at any time before the marriage belonged to a religion other than Hinduism.

आर्य विवाह कानून नं० १९ सन् १९३७ ई०

(यह कानून असेम्बली तथा कौंसिल आफ स्टेट में अन्तिम रूप से पास हो चुका है और गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृति भी हो चुकी है।)

आर्य समाजियों में प्रचलित अन्तर्जातीय विवाहों का जायज होना स्वीकार करने और तत्सम्बन्धी शंकाओं को दूर करने के लिए ।

चूँकि हिन्दुओं के आर्य समाजी नामक वर्ग के अन्तर्जातीय विवाह का जायज होना स्वीकार करने और तत्सम्बन्धी शंकाओं को दूर करने की जरूरत है इसलिए इसके जरिये नीचे लिखे मुताबिक कानून बनाया जाता है:—

छोटा नाम और विस्तार

१—(क) यह कानून “आर्यविवाह जायज बनाने वाला ऐक्ट सन् १९३७” कहलायेगा ।

(ख) यह (ऐक्ट) तमाम ब्रिटिश हिन्दुस्तान में जिसमें ब्रिटिश बिश्चिस्तान और संथाल परगने भी शामिल हैं, लागू होगा और हिन्दुस्तान के अन्य भागों में सम्राट की समस्त प्रजा को और ब्रिटिश हिन्दुस्तान के बाहर और उस पार की समस्त हिन्दुस्तानी प्रजा को भी लागू होगा ।

आर्यसमाजियों का विवाह नाजायज नहीं होगा

२—बावजूद हिन्दू रीति या रिवाज के किसी विरुद्ध विधान के (हिन्दू कानून या रीति रिवाज में कोई विधान इसके विरुद्ध रहते हुए भी) विवाह के समय आर्य समाजी कहाने वाले व्यक्तियों के बीच का कोई

भी विवाह चाहे वह विवाह सम्बन्ध इस एक्ट के लागू होने के पूर्व हुआ हो या तत्पश्चात् हुआ हो, केवल इसी बात के कारण कि वे लोग किसी समय हिन्दू समाज के भिन्न-भिन्न उपजाति के थे या कि उनमें से कोई एक या दोनों ही विवाह के पूर्व किसी समय हिन्दू धर्म के सिवाय किसी अन्य धर्म के थे नाजायज नहीं होगा या कभी भी नाजायज था (रहा हो), ऐसा नहीं माना जावेगा।

स्वल्प नाम और विस्तार

१—(क) यह विधान आर्य विवाह वैधानिक एक्ट सन् १९३७ कहलायेगा।

इस उपधारा का 'आर्य' और धारा २ का 'आर्य समाजी' शब्द एक ही व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुए हैं। वस्तुतः ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। 'आर्यसमाज' शब्द का शाब्दिक अर्थ 'आर्यों का समाज' है। और इस समाज वाले को 'आर्यसमाजी' कहते हैं। भाषा और कानून दोनों दृष्टियों से इन दोनों शब्दों से एक ही व्यक्ति का बोध होता है।

विस्तार और क्षेत्र

(ख) ब्रिटिश बिलोचिस्तान और संथाल परगना सहित समस्त ब्रिटिश भारतवर्ष में और भारतवर्ष के अन्य भागों में सम्राट की समस्त प्रजा को और ब्रिटिश भारतवर्ष के बाहर तथा उस पार (समुद्र पार) की समस्त भारतीय प्रजा को यह (एक्ट) लागू होगा।

यह कानून समस्त ब्रिटिश भारत में लागू है। ब्रिटिश भारत का कोई भी स्थान नहीं छूटता। इसके अतिरिक्त इस का क्षेत्र और भी विस्तृत है। भारतवर्ष के अन्य भागों में रहने वाली सम्राट की समस्त प्रजा पर भी यह कानून लागू होता है अर्थात् भारतीय रियासतों और ब्रिटिश भारत के बाहर रहने वाली सम्राट की समस्त भारतीय प्रजा पर भी।

(अ) निम्न लेख से स्थिति अधिक सुस्पष्ट हो जावेगी:—

(अ) यह कानून समस्त ब्रिटिश भारत के लिए है जिसमें ब्रिटिश बिलोचिस्तान और संथाल के परगने भी शामिल हैं। ऐक्ट की धारा २ में निहित विवाह चाहे ब्रिटिश प्रजा और देशी राज्यों की प्रजा के मध्य हो या किसी विदेशी प्रजा के मध्य हो, वह कानून सम्मत होगा यदि वह विवाह ब्रिटिश भारत के किसी भी स्थान में हुआ हो। इस अवस्था में (अर्थात् ब्रिटिश भारत के भीतर विवाह होने की अवस्था में) वर वधू में से किसी एक का अथवा दोनों का ब्रिटिश भारत की प्रजा होना आवश्यक नहीं है।

(ब) भारत के दूसरे भागों में निवास करने वाली सम्राट की प्रजा पर भी यही कानून लागू होता है अतः भारत के किसी देशी राज्य अथवा स्वतन्त्र राज्य में होने वाला (धारा २ में विहित) विवाह भी वैध होगा वशर्ते कि वर और वधू दोनों ब्रिटिश प्रजा हों भारतीय ब्रिटिश प्रजा या अभारतीय ब्रिटिश प्रजा—

(स) यदि कोई विवाह संसार के अन्य भागों में होता है उदाहरणार्थ युरोप या अमेरिका में तब भी यह कानून लागू होगा वशर्ते कि वर और वधू दोनों सम्राट की भारतीय प्रजा हों। अभारतीय प्रजा को इस दशा में लागू न होगा।

(नोट—स्वतन्त्र भारत का अधिकार क्षेत्र बदल जाने से उपर्युक्त प्राविधान का रूप भी बदल गया है।)

आर्यसमाजियों का विवाह अवैध न होगा

धारा २

“कोई भी हिन्दू ला का विधान, रूढ़ि या रिवाज प्रतिकूल होते हुए भी विवाह के समय आर्यसमाजी दो व्यक्तियों के (बीच का) मध्य कोई विवाह चाहे वह इस ऐक्ट के प्रारम्भ (अमल) से पूर्व या पश्चात् हुआ हो नाजायज (अवैध) नहीं होगा और न कभी भी अवैध रहा हुआ माना जायगा केवल इस तथ्य के कारण कि (केवल इस

आधार पर कि) वे किसी समय हिन्दुओं की विभिन्न जाति या उपजाति के थे या कि उनमें से एक या दोनों विवाह से पूर्व किसी समय हिन्दू धर्म से विभिन्न धर्म के थे ।”

इस एकट की यही एक मुख्य धारा है और इस पर ध्यान पूर्वक विचार करने की आवश्यकता है ।

(१) कोई भी हिन्दू ला का विधान रूढ़ि या रिवाज प्रतिकूल होते हुए भी—

यह कानून हिन्दू ला का संशोधन करता है अन्य किसी ला का नहीं क्योंकि ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है । यह कुछ रीति रिवाज को भी सुधारता है । हिन्दू ला की व्याख्या और कुछ रीति रिवाज भी अन्तर्विवाहों में बाधक हैं । यह धारा उन सबको थोथा करती है । अब कोई रीति रिवाज अथवा हिन्दू ला की कोई धारा आर्यसमाजियों के पारस्परिक अन्तर्विवाहों को निषिद्ध नहीं कर सकती ।

यदि कोई विवाह किसी दूसरे ला (कानून) का उलंघन करता है तो उसकी रक्षा यह कानून नहीं करेगा । उदाहरणार्थ यदि कोई इंडियन पीनल कोड (भारतीय दण्ड विधान) की धारा के विरुद्ध बहु विवाह करता हो, परन्तु जहाँ एक धर्म छोड़ कर दूसरा धर्म अङ्गीकार कर लेने मात्र से विवाह विच्छेद होता हो या जहाँ कहीं दूसरे कारणों से पूर्व विवाह का विच्छेद हो गया हो वहाँ बाद में होने वाला विवाह बहु विवाह नहीं समझा जायगा ।

(२) चाहे विवाह इस एकट के प्रारम्भ से पूर्व या पश्चात् हुआ हो ।—

इस कानून का पूर्ववर्ती प्रभाव भी है अर्थात् इस कानून के बनने से पहले के विवाहों को भी यह कानून जायज करता है । बाद के विवाहों को तो यह जायज बनाता ही है । यह कानून १४-४-३७ को अमल में आया जबकि गवर्नर जनरल ने अपनी स्वीकृति अंकित की थी । इस तरीख के बाद की समस्त शादियां चाहे पहले या बाद में हुई हों जायज

होंगी। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के विवाहों के विषय की समस्त शंकाओं का प्रतिकार इस एक्ट ने कर दिया।

(३) विवाह

विवाह का अर्थ क्या है? वैध (जायज) विवाह के लिये किन किन उपायों और संस्कारों की आवश्यकता है? ये सब प्रश्न इस कानून के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आते हैं। यह स्मरण रहे कि यह कानून आर्यसमाजियों का विवाह सम्बन्धी कानून नहीं है।

आर्य विवाह बिल का यह उद्देश्य कभी भी न था। इस बिल का सारा उद्देश्य केवल इतना ही था कि आर्यसमाजियों के अन्तर्जातीय और शुद्धि विवाहों के जायज होने के विषय में शंकाओं की निवृत्ति करे, और वर्तमान कानून से इस उद्देश्य की पूर्ति पूर्णतया हो जाती है। यदि विवाह विषयक पूर्ण ला बनाए जाने का उद्देश्य होता तो बहुत सी और २ धाराएं भी होतीं। न केवल इस प्रकार का उद्देश्य ही नहीं था प्रत्युत यदि इस दिशा में आगे बढ़ने का यत्न किया जाता तो वह व्यर्थ और हानिकारक होता।

(४) विवाह के समय आर्यसमाजी दो व्यक्तियों के मध्य कोई विवाह

विवाह के जायज होने के लिए, वर और वधू दोनों का विवाह के समय आर्यसमाजी होना आवश्यक है। यदि विवाह के समय दोनों ही आर्यसमाजी न होंगे तो उनका विवाह जायज न माना जायगा। विवाह के समय वर और वधू दोनों को आवश्यक रूप से आर्यसमाजी होना चाहिए। विवाह के पहले किसी निश्चित अवधि तक उनका आर्यसमाजी रहना आवश्यक नहीं। कोई पुरुष वा स्त्री अथवा दोनों शुद्धि द्वारा वा अन्य प्रकार से आर्यसमाजी बन सकते हैं और तत्काल वाद जायज विवाह कर सकते हैं। पस यदि पहले विवाह होता है और उसके पश्चात् आर्यसमाजी होते हैं तो इस कानून के द्वारा वह विवाह जायज

न बन सकेगा। उदाहरण के लिए कोई हिन्दू या आर्यसमाजी पुरुष या स्त्री मानलो किसी मुस्लिम स्त्री या पुरुष से विवाह करता है और विवाह के पश्चात् वह मुस्लिम स्त्री वा पुरुष किसी समय आर्यसमाजी बन जाता है तो यह विवाह जायज न बन सकेगा। पस यदि आर्यसमाजी बनना पहिले हुआ और विवाह पीछे तो वह विवाह विलकुल जायज होगा परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जो विवाह अन्य किसी विधान से जायज हो वह आर्यसमाजी बनने से नाजायज हो जाता है।

उदाहरण के लिए एक मुसलमान या ईसाई दम्पति है जिनका विवाह मुस्लिम या ईसाई कानून के अनुसार जायज तौर पर हुआ है। यदि ये दोनों (स्त्री पुरुष) आर्य समाज में दीक्षित हो जायें तो वे दोनों बुद्धि के पश्चात् भी ठीक दम्पति बने रहेंगे और उन्हें आर्य सामाजिक पद्धति के अनुसार फिर दुबारा विवाह करने की आवश्यकता बिलकुल भी न होगी।

ऐकट से लाभ उठाने के लिए वर और वधू विवाह के समय आवश्यक रूपेण आर्य समाजी होने चाहियें। अब प्रश्न होता है कि आर्य समाजी कौन हैं? आर्य समाजी की परिभाषा नियत करने के लिए बहुत से प्रयत्न हुए। इस परिभाषा के बहुत से संशोधन भी प्रस्तुत किये गये थे परन्तु इन सब से केवल इस शब्द की परिभाषा की कठिनता ही नहीं अपितु आर्यसमाजी कौन है इस की मोटी रूप रेखा देने की कठिनता भी व्यक्त होती है। यह कठिनता केवल आर्यसमाजियों के लिये ही नहीं अन्यो के लिए भी है।

हिन्दू कौन है? मुसलमान कौन है? हिन्दू मुसलमान अथवा ईसाई की ठीक २ परिभाषा किस प्रकार करोगे? ऐसा करना कठिन है? परन्तु किसी खास मामले में यह कहना कठिन नहीं कि अमुक व्यक्ति हिन्दू मुसलमान या ईसाई है या नहीं।

मोटे तौर पर जो अपने को हिन्दू कहे वह हिन्दू और जो मुसलमान कहे वह मुसलमान। और यदि किसी खास मामले में यह कहने में

कठिनाई उपस्थित हो सकती हो कि अमुक आदमी एक खास समय पर हिन्दू, मुसलमान वा ईसाई था वा नहीं तो आर्य समाजियों के सम्बन्ध में भी यही बात है। इसमें संदेह नहीं कि आर्यसमाजी की संतान आर्य समाजी समझी जायगी। आर्य समाजी के लिए आवश्यक नहीं कि उसका नाम किसी आर्यसमाज के रजिस्टर में अङ्कित रहा हो।

यह निःसंदेह ठीक है कि यदि कोई व्यक्ति आर्यसमाज का नियमित सदस्य है तो यह उसके आर्यसमाजी होने का उत्तम प्रमाण होगा, परन्तु उसके आर्यसमाजी होने के लिए यह आवश्यक नहीं है।

समस्त धर्मों के असंख्य व्यक्ति होते हैं जिनके नाम उनके समाजों के रजिस्ट्रों में अङ्कित नहीं होते। आर्य समाज के सम्बन्ध में भी यही बात है। बहुत से व्यक्ति हैं जिनका नाम आर्यसमाज के रजिस्ट्रों में अंकित नहीं है फिर भी वे और उनके बच्चे अच्छे भले आर्यसमाजी हैं। वस्तुतः इन सब कठिनाइयों से बचने के लिए ही परिभाषा नहीं रक्खी गई।

इसमें एक और लाभ है। आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर विश्वास रखने वाले बहुत से हिन्दू भी जो अन्तर्जातीय विवाह करना चाहेंगे और जो किसी आर्यसमाज के सदस्य नहीं हैं, वे विवाह से पूर्व अपने को आर्य समाजी घोषित करके ऐक्ट से लाभ उठा सकेंगे। प्रमाण के लिए और रिकार्ड के लिए आर्यसमाजों को ऐसे विवाहों का रजिस्टर खोलना कदाचित आवश्यक हो जिसमें इस प्रकार के समस्त विवाह अंकित हुआ करें। यह केवल प्रमाण के लिए वांछनीय है। विवाह के कानूनी रूप से जायज होने के लिए इसकी जरा भी आवश्यकता नहीं है। कानून को न तो इसकी आवश्यकता है और न कानून इसकी कल्पना ही करता है। कौन व्यक्ति आर्य समाजी है, अब इस प्रश्न का उत्तर स्वतः यह मिल जाता है "कोई भी व्यक्ति जो इस कानून के उद्देश्य के लिए अपने को आर्यसमाजी उद्घोषित करता है वह आर्यसमाजी है।" संदिग्ध मामलों में यह सदैव अच्छा होगा कि विवाह से पूर्व विवाह

करने वाले पुरुष और स्त्री इस बात की स्पष्ट और पब्लिक में यह घोषणा कर दें कि हम आर्य समाजी हैं ।

ऐसी घोषणा को स्थिर बनाने के लिये यह ठीक होगा कि वह लिखित हो और किसी दस्तावेज अथवा कार्यवाही पुस्तक में लिख दी जाय क्योंकि विवाह के जायज होने का प्रश्न विवाह के शीघ्र पश्चात् ही नहीं उठता है । प्रायः विवाह के बहुत वर्षों के पश्चात् अदालतों के सामने ऐसे मामले आते हैं । जब यह प्रश्न अदालत के सामने आता है तब आम तौर पर कोई सबूत सम्भवतः सुस्पष्ट सबूत आवश्यक होता है । संदिग्ध मामलों में मौखिक साक्षी कदाचित् पर्याप्त न हो । अतः किसी लेख-बद्ध सबूत का रखना बुद्धिमत्ता होगी । विज्ञात और प्रसिद्ध व्यक्तियों के लिये यह आवश्यक नहीं । यथा यदि कोई व्यक्ति कई वर्षों तक समाज का नियमित सदस्य रहा हो तो उसके मामले में यह सिद्ध करना कठिन न होगा कि अपने विवाह के समय वह आर्यसमाजी था । परन्तु यदि वह नियमित सदस्य न रहा हो तो विवाह के कई वर्षों के पश्चात् यह प्रश्न उठ सकता है कि विवाह के समय वह आर्य समाजी था या नहीं ? ऐसे मामलों में पहले से लिखित सबूतों का रखना अच्छा होता है । परन्तु यह तो केवल किसी प्रकार के तथ्य (Fact) की बात है । जहाँ तक कानून का सम्बन्ध है अपने को आर्यसमाजी उद्घोषित करने वाला व्यक्ति आर्यसमाजी माना जायगा ।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस ऐक्ट के अनुसार विवाह के समय वर और वधू दोनों का ही आर्यसमाजी होना आवश्यक है । दोनों में से केवल एक का आर्यसमाजी होना पर्याप्त न होगा । इस प्रकार के विवाहों की रक्षा इस ऐक्ट से न होगी ।

यह स्पष्ट है कि विवाह करने वाले स्त्री-पुरुष अर्थात् वर और वधू विवाह के समय आर्यसमाजी होने चाहिए जिसका अर्थ यह है कि विवाह संस्कार से पूर्व किसी भी क्षण शुद्धि अथवा अन्य प्रकार से उनको आर्यसमाजी बना हुआ ही होना चाहिए । और ऐसा होने पर उनका

विवाह जायज होगा चाहे वे भिन्न जातियों के क्यों न हों। और इस विवाह के एक बार जायज रूप से हो जाने पर विवाह के पश्चात् यदि वर और वधू अपना धर्म भी बदल दें तब भी विवाह जायज बना रहेगा।

(५) अवैध नहीं होगा और न कभी भी अवैध रहा हुआ समझा जायगा।

धारा में ये शब्द मतलब से रखे गये हैं। इसका अर्थ यह है कि कोई विवाह होने की तिथि से ही जायज हो जाता है न कि इस कानून के पास होने की तिथि से। अतः इस कानून के पास होने के पूर्व के अन्तर्जातीय विवाहों को भी जो आर्यसमाजियों के बीच हुए हैं, यह एकट जायज बनाता है। यह स्पष्ट है कि इस एकट का पूर्ववर्ती असर है। प्रारम्भ से ही यह विवाहों को जायज करार देता है। यद्यपि यह ठीक है कि इस कानून के पास होने पर ही विवाह जायज बनता है। यदि इस कानून के अमल में आने से पहले के किसी विवाह के जायज होने का प्रश्न कानून के अमल में आने के पश्चात् उठता है तो वह विवाह जायज समझा जायगा। परन्तु यदि इस कानून के पास होने से पूर्व किसी विवाह के जायज होने का प्रश्न उठा हो और वह निर्णीत भी हो गया हो तो यह कानून बहुत सम्भवतः सहायक न होगा और इस कानून के आधार पर वही प्रश्न कदाचित् पुनः न उठाया जा सकेगा ?

जिस दिन विवाह हुआ, उसी दिन से विवाह के जायज हो जाने के कारण से इस विवाह से उत्पन्न समस्त बच्चे जन्म से ही जायज हो जाते हैं।

केवल इस बात से कि वे किसी समय हिन्दुओं की भिन्न जाति या उपजाति के थे या कि उनमें से एक या दोनों विवाह से पूर्व किसी समय हिन्दू धर्म से विभिन्न धर्म के थे।

‘केवल’ शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। यह कानून केवल एक कठिनाई को दूर करता है और सिर्फ उसी एक को इससे अधिक नहीं। हिन्दू लां

के अनुसार वर और वधू को मजबूरन एक ही जाति या उपजाति का होना चाहिए, यह इसी बाधा को दूर करता है।

ब्रिटिश अदालतों में 'हिन्दू ला' की जो व्याख्या की जाती है वह यह है कि जायज विवाह के लिए वर और वधू एक ही जाति के होने चाहिए। यदि वे एक ही जाति के नहीं हैं तो उनके विवाह के जायज होने में आशंका होती है। आर्य मैरिज एक्ट के द्वारा इस कठिनाई को दूर करने की योजना की गई थी और वस्तुतः इस एक्ट के बन जाने से वह पूर्णतया दूर भी हो गई है। आर्य समाजियों का कोई विवाह नाजायज न होमा केवल इसलिए कि वर और वधू एक ही जाति के न थे। विवाह से सम्बन्ध रखने वाली और कोई कठिनाई दूर नहीं की गई है। अतः आर्य मैरिज एक्ट के अनुसार होने वाले विवाह अन्य सब बातों में जायज होने चाहिए।

इस एक्ट से केवल अन्तर्जातीय वा अन्तर्उपजाति विवाह ही जायज होते हैं यही नहीं वरन् शुद्धि के विवाह भी जायज होते हैं।

या कि उनमें से एक या दो दोनों विवाह से पूर्व किसी समय हिन्दु एतर धर्म (हिन्दू धर्म से विभिन्न धर्म) के थे।

इन शब्दों में शुद्धि के तमाम विवाह आ जाते हैं। यदि वर और वधू में से कोई एक अथवा दोनों विवाह से पहले हिन्दू नहीं थे और यदि विवाह से पूर्व किसी समय हिन्दू धर्म स्वीकार करके वे आर्यसमाजी बन गये थे, तब इस कानून से उन विवाहों की भी रक्षा होगी परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि शुद्धि सदैव विवाह से पहले होनी चाहिए न कि बाद में।

यह नितांत आवश्यक है कि वर या वधू अपना धर्म विवाह से पहले बदलें। यह चाहे एक क्षण पूर्व ही क्यों न हो परन्तु धर्म परिवर्तन विवाह से पूर्व ही होना चाहिए। यदि विवाह पहले और शुद्धि पीछे हुई तो वह विवाह इस एक्ट से जायज न बन सकेगा। इसलिये यह बात सुस्पष्ट ध्यान में रहे कि शुद्धि वाले कुल विवाहों में शुद्धि अर्थात् धर्म परिवर्तन पहले होना चाहिए और विवाह उसके बाद।

घनश्याम गुप्त

टिप्पणी—इन्होंने ही लेजिस्लेटिव एसेम्बली में यह बिल पेश करके पास कराया था—र. प्र. पाठक

परिशिष्ट (१)

आर्यसमाजी की परिभाषा

—: ० :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

की

अन्तरंग सभा का निश्चय

आर्य विवाह एकट के लिए आर्यसमाजी की परिभाषा नियत करने के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि इस सभा की स्थिर सम्मति है कि आर्य समाज के उपनियमों में 'आर्य' और 'आर्य समासद्' की जो परिभाषा है वह केवल आर्यसमाज के संगठन के लिये ही है और विस्तृत आर्य जगत के लिये नहीं है। अतः जो निम्न घोषणाओं पर हस्ताक्षर करेंगे वे आर्य विवाह एकट की मंशा के भीतर आर्यसमाजी होंगे, इसमें सन्देह नहीं।

नोट—घोषणा-पत्र अगले पृष्ठों पर अंकित हैं।

आर्य विवाह एकट सम्बन्धी

घोषणा-पत्र सं० १

मैं— — — — पुत्र/पुत्री— — — — निवासी/निवासिनी— — — —
तहसील— — — — जिला— — — — आयु— — — —
पेशा— — — — घोषणा करता/करती हूँ कि मैं आर्यसमाजी हूँ और
श्रीयुत— — — — के पुत्र/पुत्री— — — — के
साथ जिसकी अवस्था— — — — की है और जो आर्य
समाजी है विवाह करना चाहता/चाहती हूँ ।

— — — — — ह० घोषणा करने वाला/वाली
हमारे सामने उक्त घोषणा की गई और हस्ताक्षर भी हुए

ह० मन्त्री

ह० प्रधान

आर्यसमाज— — — —

आर्यसमाज— — — —

तारीख— — — —

तारीख— — — —

हस्ताक्षर अन्य उपस्थित सज्जनगण

घोषणा-पत्र सं० २

मैं— — — — पुत्र/पुत्री— — — — निवासी/निवासिनी
— — — — तहसील— — — — जिला— — — —
आयु— — — पेशा— — — — घोषणा करता/करती हूं कि
तिथि— — — — को— — — — (स्थान) में शुद्धि कराके मैं
आर्यसमाजी हो गया/गई हूं । मैं यह भी घोषणा करता/करती हूं कि शुद्धि
से पूर्व मैं— — — — था/थी

ह०— — — — घोषणा करने वाला/वाली
तारीख— — — —

हमारे सामने उक्त घोषणा की गई और हस्ताक्षर हुए ।

— — — — —

ह० मन्त्री

ह० प्रधान

आर्यसमाज— — — — आर्यसमाज— — — —

तारीख— — — — तारीख— — — —

— — — — —

हस्ताक्षर अन्य उपस्थित सज्जनगण

घोषणा-पत्र सं० ३

(१९३७ से पूर्व हुए विवाहों के लिये)

मैं— — — — — पुत्र/पुत्री— — — — —
निवासी/निवासिनी— — — — — डाकघर— — — — — तहसील— — — — —
जिला— — — — — आयु— — — — — व्यवसाय— — — — —
दिनांक— — — — — सन्— — — — — को श्रीमान्/श्रीमती— — — — —
के पुत्र/पुत्री— — — — — आयु— — — — — व्यवसाय— — — — —
के साथ विवाहा गया था/विवाही गई थी और यह घोषित करता हूँ/करती
हूँ कि इस विवाह से पूर्व और अब भी आर्यसमाजी हूँ ।

नोट:—इस घोषणा-पत्र को लिखते समय की तारीख दें ।

स्थान— — — — — हस्ताक्षर— — — — —

दिनांक— — — — —

१. ह० साक्षी— — — — —

२. ह० साक्षी— — — — —

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि उपर्युक्त घोषणा-पत्र सत्य है और
उपर्युक्त घोषित विवाह आर्यसमाज— — — — — द्वारा सम्पन्न हुआ था ।

दिनांक— — — — — ह० मन्त्री— — — — — ह० प्रधान— — — — —

आर्यसमाज— — — — —

घोषणा-पत्र सं० ४

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीयुत— — — — —
 के सुपुत्र — — — — — निवास स्थान — — — — —
 डाकखाना — — — — — जिला — — — — — तह० — — — — —
 विवाह संस्कार तिथि — — — — — वि०/ई० को
 श्रीयुत — — — — — की
 सुपुत्री — — — — — निवास स्थान — — — — —
 डाकखाना — — — — — जि० — — — — — तह० — — — — —
 के साथ आर्यसमाज — — — — — में पुरोहित
 श्री — — — — — द्वारा कराया गया ।
 वर-वधू के विस्तृत विवरण इस पत्र के पृष्ठ भाग पर अंकित है ।
 ह० — — — — — ह० — — — — —

प्रधान

मन्त्री

आर्यसमाज — — — — — आर्थसमाज — — — — —
 ता० — — — — — ता० — — — — —
 ह० — — — — —
 पुरोहित आर्यसमाज — — — — —
 ता० — — — — —

नोट—इस प्रमाण-पत्र की १ प्रति आर्यसमाज की फायल में रहेगी, और दूसरी प्रति वर-वधू को दी जायगी ।

पर्वों की सूची

आर्यों को वर्ष में जो पर्व मनाने चाहिए उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) नवसम्बत्सरोत्सव । (२) आर्यसमाज का स्थापना दिवस ।
 (३) रामनवमी । (४) हरितृतीया । (५) श्रावणी (उपाकर्म) ।
 (६) कृष्ण-जन्माष्टमी । (७) विजयादशमी । (८) दयानन्द निर्वाण (दीपावली) । (९) मकरसंक्रांति । (१०) वसंत पंचमी । (११) सीताष्टमी । (१२) दयानन्द बोध-रात्रि । (१३) लेखराम वीर तृतीया । (१४) वासन्ती नवसस्येष्टि (होली) ।

इनको किस प्रकार मनाना चाहिए इसके लिये आगे लिखेंगे ।

पर्व-पद्धति

नवसंवत्सरोत्सवः (संवत्सरेष्टि)

गृहकृत्य—प्रातः पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परि-
 मार्जन, शोधन, लेपनादि के पश्चात् नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र पहनकर
 - सपरिवार सामान्य होम कग्ने संवत्सर वर्णनपरक मन्त्रों से विशेष
 आहुतियां दी जाएं ।

आर्यसमाज का स्थापना दिवस

आर्यसमाज का स्थापना दिन और नया संवत् दोनों पर्व एक ही तिथि चैत्र सुदी १ को पड़ते हैं इसलिये इन दोनों पर्वों की पद्धति एकत्र ही लिखी जाती है ।

गृहकृत्य—प्रातः पर्वपद्धति में पूर्व प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के बाद नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र

परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य होम करके नव संवत्सर विषयक मन्त्रों से विशेष अधिक आहुतियां देवें ।

रामनवमी

गृहकृत्य—प्रातः पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन, लेपनादि के पश्चात् नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य हवन होना चाहिए । मध्याह्न में स्वसामर्थ्यानुसार सात्विक और रोचक पाक सम्पन्न करके सपरिवार प्रीतिपूर्वक एकत्र मिलकर भोजन करें तथा अपने आश्रित सेवकों आदि को भी उससे मत्कृत करें ।

सामाजिक कृत्य—अपराह्न वा सायंकाल में सुभीते के अनुसार सब आर्यसामाजिक पुरुष समाज मन्दिर आदि में एकत्र सभा करें । उसमें प्रथम वेद मन्त्रों द्वारा परमेश्वर प्रार्थना के पश्चात् श्री रामचन्द्र जी के इतिहास और गुणावली पर निबन्ध और कविता पाठ तथा भाषण होने चाहिए । तदनन्तर उसी विषय पर मधुर गानवाद्य और वैदिक शांतिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित की जाय ।

हरितृतीया

प्रातः पर्वपद्धति में उल्लिखित विधानानुसार प्रत्येक परिवार में गृहमार्जन, लेपन आदि के पश्चात् सामान्य होम होना चाहिए । मध्याह्न में प्राचीन प्रथानुसार स्वादु पक्वान बनाकर उनके वायनक (वायने) बड़ी बूदियों को भेंट किये जाएं । सायंकाल को सब सखी सहेलियां मिलकर संगीत और झूला झूलने का आनन्द उठावें किन्तु प्रभुगुण गायन वर्षा की प्राकृतिक शोभा वर्णन और पवित्र प्रेम के सुन्दर गीत ही इस आनन्दोत्सव पर गाने चाहिए ।

श्रावणी उपाकर्म

श्रावणी के साधारण सामान्य प्रकरण की क्रिया करके उपाकर्म नियमित विधि के अनुसार करना चाहिए । यज्ञ में चारों वेदों के प्रथम

और अन्त के मन्त्रों से भी आहुति देनी चाहिए ।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी

श्रीकृष्ण जी के गुण तथा सामाजिक कृत्य भी श्रीराम-जयन्ती में लिखित विवरण के अनुसार ही हैं ।

विजयादशमी

स्वमुभीते के अनुसार विजयादशमी के प्रातःकाल शस्त्र और बाह-नादि का संस्कार (स्वच्छता और सुधार) किया जाय । पूर्वार्द्ध में अन्य पर्वों के समान गृह का परिमार्जन और लेपनादि करके साणान्य होम किया जाय । उसमें क्षात्रधर्म के द्योतक और यात्रा से लाभ के नूचक मंत्रों से विशेष आहुतियाँ दी जायें ।

श्री दयानन्द-निर्वाण (दीपावली)

गृहकृत्य—यतः दीपावली का पर्व वर्ष भर में घरों की लिपाई, पुताई आदि संस्कार के लिये विशेषतः उद्दिष्ट है इसलिये स्वमुभीते के अनुसार दिवाली के पूर्व दिन के सायंकाल प्रचलित प्रथानुसार यह सब कार्य समाप्त हो जाना चाहिए । कार्तिकी अमावस्या के दिन प्रातःकाल सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार यज्ञशाला वा आवासगृह के तल का गोमय से पुनः लेपन करके स्वदेशीय नवीन शुद्ध वस्त्र परिधान-पूर्वक सामान्य होम करके दयानन्द निर्वाण तथा नवमस्येष्टि के मन्त्रों से स्थालीपाक से ३८ विशेष आहुतियाँ दी जायें । स्थालीपाक नवागत श्रावणी शस्य के अन्न से बनाया गया पायस (खीर) हो । हवन के अन्य शाकल्य में लाजा (नवीन धानों की खील) विशेषतः मिलाई जायें ।

मकर-संक्रांति

गृहकृत्य—मकर-संक्रांति के दिन प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित विधानानुसार गृह के परिमार्जन, शोधन तथा लेपन आदि के पश्चात्

नवीन शुद्ध स्वदेशीय वस्त्र परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य हवन करें जिसके शाकल्य में तिल और शर्करा का परिमाण प्रचुर होना चाहिए और आहुतियों की मात्रा स्वसामर्थ्यानुसार बढ़ा देनी चाहिए ।

वसन्तपञ्चमी

गृहकृत्य—प्रातः सामान्य पर्वपद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार गृह के परिमार्जन (शोधन लेपनादि) के पश्चात् स्वदेशीय पीताम्बर (पीतपट) परिधानपूर्वक सपरिवार सामान्य होम करके वसंत वर्णनात्मक मन्त्रों से केशर मिश्रित (वा उसके अभाव में हरिद्रामिश्रित) हलुवे के स्थालीपाक से पांच अधिक आहुतियां दी जायें ।

सीताष्टमी

श्री सीताष्टमी पर्व की पद्धति भी अन्य वीर पर्वों और जयन्तियों के गृह्य और सामाजिक कृत्यों के अनुसार है ।

श्री दयानन्द बोधरात्रि

श्री दयानन्द जन्मदिवस पद्धति भी अन्य वीर पर्वों और जयन्तियों के गृह्य और सामाजिक कृत्यों के अनुसार है ।

श्री लेखराम वीरतृतीया

वीरतृतीया पर्व की पद्धति भी अन्य वीर पर्वों के गृह्य और सामाजिक कृत्यों के अनुसार ही है ।

वासन्ती नवसंस्थेष्टि (होली)

फाल्गुन पूर्णिमा के प्रातः सामान्यपद्धति में प्रदर्शित प्रकारानुसार नवपीताम्बर वा श्वेताम्बर परिधान पूर्वक सामान्य होम करके नव संस्थेष्टि के मन्त्रों से स्थालीपाक की ३१ विशेष आहुतियां दी जायें । हवन के अन्य शाकल्य में नवागत यव (जौ) विशेषतः मिलाये जायें :

आर्य कौन है ?

आर्य शब्द का अर्थ निरुक्त में "ईश्वरपुत्र" दिया है जिसका अभि-
प्राय यह है कि ईश्वर के सच्चे पुत्रों को 'आर्य' नाम से सम्बोधित किया
जाता है। एक पिता के अनेक पुत्र होते हुए भी उसकी आज्ञा पर चलने
वाले सदाचारी विनम्र पुत्र को ही वास्तविक पुत्र कहा जाता है। ऐसे
ही यद्यपि मनुष्य मात्र ईश्वर के पुत्र हैं तथापि आर्य अर्थात् सदाचारी
पुरुषों को ही 'ईश्वर पुत्र' का नाम दिया जाता है।

प्राचीन ग्रन्थों में 'आर्य' शब्द'

वेद

- (१) आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि (ऋग्वेद १०-६५-११)
- (२) कृण्वन्तो विश्वमार्यम् (ऋग् ०७-१-३०)
- (३) विजानीह्यायन्ति ये च दस्यवो बहिष्मते रन्धवा शासदन्नतान्
(१-४-१०-८)

इन मन्त्रों में सत्य, अहिंसा, पवित्रतादि उत्तम व्रतों को धारण
करने वाले को 'आर्य' कहा गया है और सारे संसार को इस प्रकार
आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का उपदेश है।

- (४) आर्यवृत्त (गौतम धर्म सूत्र १६-६६)

सदाचारी के अर्थ में 'आर्य' शब्द है।

बाल्मीकि रामायण

- (५) सर्वदाभिगतः सदिभः समुद्रइवसिन्धुभिः ।

आर्य, सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥ (१-१-१६)

श्री रामचन्द्र जी सदा सत्पुरुषों के सहयोग में इस प्रकार व्रतमान

रहते थे जैसे समुद्र नदियों से सदा मिला रहता है तथा वे 'आर्य' थे, समदृष्टि रखते थे, सबके प्रिय थे ।

यहाँ सज्जनता से पूर्ण श्री रामचन्द्र जी को 'आर्य' कहा है ।

विदुर नीति

(६) आर्यकर्माणि रज्यन्ते भूति कर्माणि कुर्वन्ते ।

हितं च नाम्यसूयन्ति पंडिता भरतर्षभ ॥

न स्वे सुखे वै कुर्वते प्रहर्षः,

नानस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः,

दत्त्वा न पश्चात्कुर्वतेऽनुतापं,

स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ॥ (१-३०-१-११८)

इन वचनों में अत्यन्त धार्मिक को 'आर्य' कहा है ।

चाणक्य नीति

(७) अभ्यासाद् धार्यते विद्या, कुलं शीलेन धार्यते ।

गुणेन ज्ञायते त्वार्यः कोपोनेत्रेण गम्यते ॥ (५-८)

यहाँ गुणी जन को 'आर्य' कहा है ।

महाभारत

(८) स बाल एवायमतिर्नृपोत्तमः (आदि पर्व (४०-७)

इस वचन में उत्तम राजकुमार के साथ 'आर्य मति' विशेषण लगाया है जो श्रेष्ठ बुद्धि वाले के अर्थ में है ।

कौटिल्य अर्थ शास्त्र

(९) व्यवस्थितार्यमर्यादः, कृतवर्णाश्रमस्थितः ।

आर्य मर्यादाओं को जो व्यवस्थित कर सके वह राज्याधिकारी है यहाँ ऐसा बताया गया है ।

गीता

(१०) कुतस्त्वा कदमलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।

अनायं जुष्टस्वर्गमकीर्तिकरमर्जुन ।

(द्वितीय अध्याय—२१२)

यहां युद्ध में सन्तुष्ट कायरता को प्राप्त हुए अर्जुन की वृत्ति को 'अनायो' की वृत्ति कहा है। इससे आर्य का अर्थ श्रेष्ठ का होता है।

धम्मपद

(११) अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पंडितो ।

पंडित जन सदा आर्यों के वतलाये धर्म में रमण करता है।

न तेन अरियो होति येन पाणनि हिसति ।

अहिंसा सब पाणानं अरियोति पवच्चति ॥ (२७०-१५)

प्राणियों की हिंसा करने से कोई आदमी 'आर्य' नहीं होता। जो किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता वही 'आर्य' होता है।

आर्य शब्द और प्राचीन कोष

शब्द कल्पद्रुम

मान्यः उदारचरितः, शान्तचित्तः, न्यायपथावलम्बी, प्रकृताचारशीलः सततकर्तव्यकर्मनुष्ठाता यदुक्तम् 'कर्तव्यमाचरन् कार्यम् अकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचरे स तु आर्य इति स्मृतः।' धार्मिकः धर्मशीलः । यथाह मनुः आर्यरूपभिवानार्यं कमभिः स्वैर्विमावयेत् । १०-५७

मान्यः—जो अपने उत्तम गुणों के कारण सम्मान के योग्य हो।

उदारचरितः—जिसका चरित्र उदार हो। जिसके व्यवहार के अन्दर उदारता पाई जाय। जिसके भीतर संकीर्णता न हो किन्तु जिसका हृदय विशाल हो।

शान्तचित्तः—जिसका चित्त शान्त हो।

न्यायपथावलम्बी :—जो सदा न्याय के पथ पर चलने वाला हो। जो कभी भूल कर भी अन्याय का अनुसरण न करे।

प्रकृताचारशील :—जिसका आचार और स्वभाव शास्त्रीय आज्ञाओं के अनुकूल हो।

सततकर्तव्यकर्मनुष्ठाता :— जो करने योग्य कार्यों को निरन्तर करने वाला हो। इसलिए प्राचीन ऋषियों ने कहा है कि जो पुरुष उत्तम कार्यों को करने वाला हो और बुरे कार्यों को कभी न करे उसे आर्य कहते हैं। आर्य का अर्थ धर्मात्मा है।

(१) माहाकुल कुलीनार्य सभ्य सज्जन साधन :— (अमर कोष)

जो आकृति-विकृति, सभ्यता-शिष्टता, धर्म-कर्म, ज्ञान-विज्ञान, आचार-विचार तथा शील स्वभाव में सर्वश्रेष्ठ हो उसे 'आर्य' कहते हैं।

(२) आर्य :— अर्तु प्रकृतभाचरितुं योग्यः

अर्थात् शास्त्रोक्त उत्तम मार्ग पर चलने वाला 'पूज्यः श्रेष्ठ' इति। शब्द रत्नावली नामक संस्कृत कोष में आर्य के अर्थ पूज्य और श्रेष्ठ बताया गया है। संगत इत्यजः अजय 'नामक कोषकार ने आर्य का अर्थ संगत बताया है अर्थात् जिसके सिद्धांत और व्यवहार बुद्धि संगत हों जिसके विद्वास और आचरण में परस्पर विरोध न हो।

पाश्चात्य विद्वानों की 'आर्य' शब्द की व्याख्या

A tall fair skinned, long headed race whose origin is still doubtful though it was probable in Central Asia and who spread in pre-historic times over the whole of Europe and parts of Asia and Africa. Almost all modern Europeans are of Aryan descent. The family also called Indo-European or Indo-Germanic but these names are open to objections from which the terms "Aryan" is free (Harmsworth History of the World) (P. 328)

Pears' Cyclopedia :—

अंग्रेजी के Pears' Cyclopedea के General Information प्रकरण में 'आर्य' का अर्थ इस प्रकार दिया हुआ है—

Arya—The word 'Arya' derived from the Sanskrit,

means an honourable lord of the soil' : अर्थात् संस्कृत के आर्य शब्द का अर्थ भूमि के माननीय स्वामी का है ।

Gentleman :—अंग्रेजी में आर्य शब्द का पर्यायवाची Gentleman समझा जाता है । अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक एमर्सन ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है :—

Whoever is open, loyal, true, of humane, and affable demeanor, honourable in himself, and in his judgement of others, faithful to his work as to law and faithful alike to God and man, such a man is a true gentleman.

The flowering of civilization is the finished man—the man of sense, of grace, of social power—the gentleman. (Emerson).

अर्थात् वही व्यक्ति सभ्य और आर्य होता है जो उदार, निष्ठावान, सत्यप्रेमी दयालू और सरल हो, जो अपनी दृष्टि में स्वयं ऊंचा उठा हो और दूसरों का सम्मान करता हो ! जो अपनी बात का धनी हो, जो परमात्मा और मनुष्य के प्रति सच्चा हो ।

सुसंस्कृत मनुष्य वही होता है जो बुद्धिमान हो, सुन्दर गुणों से अलंकृत हो और सामाजिक शक्ति सम्पन्न हो । (इमर्सन)

ऋषि दयानन्द सरस्वती और आर्य शब्द

ऋषि दयानन्द सरस्वती जिन्होंने अर्वाचीन काल में 'आर्य शब्द को उसके वास्तविक उच्च स्थान पर बिठाने का यत्न किया है, वेद भाष्य में 'अहं भूमिमददामार्याय' पर जिसमें परमात्मा का आदेश है कि मैं भूमि का राज्य आर्या के लिये देता हूँ लिखते हुए आर्य शब्द की निम्न व्याख्या की है :—

आर्याः श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव युक्ता मनुष्याः अर्थात् जो श्रेष्ठ गुण, कर्म स्वभाव वाले मनुष्य हैं वे ही आर्य संज्ञा के संज्ञी हैं ।

गुण

विद्या, विनय, प्रेमव्यवहार, चातुर्य, योग क्षेम, प्रकृति का ज्ञान और उसके गुणों की पहचान, उनसे लाम उठाने का सदैव ध्यान, समयानुकूल कार्य करना, जीवन और मृत्यु की व्यवस्था को जानकर अधिक शोक, हर्ष में न पड़ना और ईश्वर आज्ञा भंग से डरना इत्यादि गुण हैं ।

कर्म

इन गुणों के प्रसार में सदा उद्योग, इनकी वृद्धि के निमित्त तन, मन, धन का उपयोग, इसके उपाय के लिये सज्जन, गम्भीर और उदार पुरुषों का सहयोग इत्यादि कर्म हैं ।

स्वभाव

प्रकृति, सौन्दर्य, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, सहन शील, परहित विचार, स्वार्थ के वश होकर दूसरों के अपकार का भी ध्यान न आना इत्यादि स्वभाव हैं ।

यह ठीक है कि उक्त गुण कर्म और स्वभाव से सम्बन्ध रखने वाले नियमों का सर्वाङ्ग में तो विकास नहीं होता तथापि जितने अंश में जिस भी समाज में इन गुणों का विकास होगा वह समाज उतनी ही खुशहाली की निराली आभा से चमकेगा ।

‘ऋ, गतों’, इस धातु से आर्य शब्द सिद्ध होता है जिसके अर्थ ज्ञान, गमन, प्राप्ति है । जिस मनुष्य का ज्ञान निर्दोष और उसके अनुकूल आचरण हो तो वह मनुष्य ‘आर्य पद’ का अधिकारी है ।

श्री अरविन्द घोष की ‘आर्य’ की सुप्रसिद्ध व्याख्या—

श्री अरविन्द घोष ने अपने सुप्रसिद्ध What is the significance of the name of Arya लेख में ‘आर्य’ शब्द की बड़ी विशद व्याख्या की है जिस का मुख्यांश इस प्रकार है :—

The word Arya expressed a particular ethical and social ideal, an ideal of well-governed life, candour, courtesy, nobility, straight-dealing, courage, gentleness, purity, humanity, compassion protection of the weak, liberality, observance of social duty, eagerness for knowledge, social accomplishment; there is no word in human speech that has a nobler History.

The Arya is he who strives and overcomes all outside him or within him that stand opposed to the human advance.

In everything, he seeks truth, in every thing right, and freedom.

Arya Vol. 1 P. 61

अर्थात् 'आर्य' शब्द से एक सामाजिक तथा नैतिक आदर्श का, मर्यादित जीवन का, उदारता, नम्रता, सज्जनता, सरलता, साहस, सौजन्य, पवित्रता, मानवता, निर्बलों की सहायता, कर्त्तव्यों का अनुष्ठान, ज्ञान प्राप्ति की उत्कण्ठा इत्यादि गुणों का बोध होता है।

वस्तुतः मानवीय भाषा में अन्य कोई शब्द नहीं जिसका इतिहास इस शब्द से उच्च हो।

मनुष्य किसे कहते हैं :—

मननशील व्यक्ति को मनुष्य कहते हैं। मननशील व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि वह हिताहित, सत्सासत्य, न्याय-अन्याय, हानि-लाभ का विचार करके आचरण करता है। जो व्यक्ति विनय, विवेक और विचार से युक्त और बैर, विरोध विकार से मुक्त होता है वास्तव में वही मनुष्य वा आर्य कहलाये जाने योग्य है।

आर्य कोई भी हो सकता है :—

आर्य संज्ञा वाले पुरुष किसी एक स्थान, किसी एक समाज या किसी एक जाति में नहीं होते प्रत्युत सर्वत्र पाये जाते हैं। इन्हीं के पुण्य प्रताप से सत्य भाषणादि गुणों से मनुष्य समाज का उत्थान होता

है। ऐसे लोग प्रदर्शन के बन्धन से दूर रहने में अपना हित जानते और प्रशंसा के सामने आते ही अपना मुँह दूसरी ओर फेर लेते हैं। चुपचाप अपना कार्य करते हुए चुपचाप ही इस संसार से कूच कर जाते हैं, परन्तु संसार के लिये उन्नति और गौरव की सामग्री छोड़ जाते हैं। ये लोग प्रत्येक अच्छे कार्य को यज्ञ के रूप में करते हैं। अच्छे गुणों के स्वामी बनने और उनको व्यवहार में लाने पर भी अभिमान या घमण्ड से दूर रहते हैं।

आर्य और दस्यु—

यह वेद का उपदेश है—“मनुष्यों तुम आर्य और दस्यु की पहचान करो।”

जो समाज इस परीक्षा में जितना सफल होगा वह उतना ही सुखी और जितना असफल सिद्ध होगा उतना ही दुःखी होगा। वेद का सार्व-भौम नियम सदैव सर्वत्र समान रूप से रहता है। इस नियम का सहारा पाकर मनुष्य समाज, जाति व देश उन्नत और इससे हटकर अवनत होते देखे गये हैं।

आर्यत्व का बीज प्रत्येक मनुष्य के भीतर समान रूप से विद्यमान होता है। यह बीज अनुकूल वातावरण से मनुष्य को आर्यत्व की ओर और प्रतिकूल वातावरण से अनार्यत्व की ओर ले जाता है। व्रत भंग करने वाले को दस्यु कहा है। सत्यभाषणादि आत्मा के उत्तम गुण हैं जिनके पालन करने को व्रत और भंग करने वाले को अव्रत कहते हैं। अतः मनुष्य को शुभ व्रतों और प्रत्येक प्रकार के कष्ट और बलिदान पर अपने व्रतों पर अटल रहने वाला होना चाहिए तभी आर्य संज्ञा प्राप्त हो सकती है।

आर्य समाज की स्थापना का उद्देश्य :—

संगठित रूप से वेदों के प्रचार और विश्व को आर्य बनाने के महान् उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर ही आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य के लिये आवश्यक है, कि अपने को आर्य

शब्द के ठीक-ठीक भाव में आर्य बनाने का यत्न करे और सदैव आत्म निरीक्षण के द्वारा देखता रहे कि मैं अपने यत्न में कहाँ तक सफल हो रहा हूँ। अपने अन्दर जो अनार्यत्व हो उसे शीघ्र दूर करके प्रत्येक आर्य को आर्य शब्द की संज्ञा को सार्थक करना चाहिए। उसकी मनोवृत्ति ऐसी बन जानी चाहिए कि उसके जीवन के व्यवहार में आर्य शब्द का गौरव कभी कम न होने पाए।

क्या केवल संध्या हवन इत्यादि करना आर्यत्व का द्योतक है ?

जो व्यक्ति नित्य संध्या हवन करता हो, आर्य समाज में जाता हो, समय २ पर दान देता हो और वेदों का स्वाध्याय करता हो उसके लिए प्रायः कहा जायेगा कि उसका आर्य जीवन है। यह तो आर्य जीवन का केवल एक पक्ष है, यद्यपि आवश्यक पक्ष है। इससे भी अधिक आवश्यक एक और पक्ष है।

पौराणिक जगत् में जो पुरुष नित्य प्रातःकाल उठता है, संध्या गायत्री या किसी विशेष देवता की स्तुति करता है या समयानुकूल यज्ञ करता है उसको लोग कर्मकाण्डी कहते हैं चाहे उसका अन्य जीवन कैसा भी क्यों न हो ? ऐसे पण्डित और कर्मकाण्डी सज्जन बहुत से मिलेंगे जिनका अधिकांश जीवन जप, तप तथा यज्ञ की भेंट हो जाता है परन्तु उनके शेष जीवन से धार्मिकता प्रकाशित नहीं होती। ऋषि दयानन्द ऐसे जीवन को कर्मकाण्डी न कह कर पाखण्डी कहते हैं। पाखण्ड क्या है ? रूढ़ियों का मानना और उनके तत्त्व को ग्रहण न करना। इसी प्रकार जो पुरुष केवल संध्या हवन आदि अनुष्ठान करता है परन्तु उसके शेष जीवन पर उसका प्रभाव न हो तो वह आर्यत्व का द्योतक नहीं है। वह तो उसी प्रकार का आर्य जीवन रखने वाला समझा जायेगा जैसा कि खिलौने का आम या काठ का हाथी। ऋषि दयानन्द का मत है कि जीवन में साम्प्रदायिकता न हो वही वास्तविक आर्य जीवन है। ऋषि ने कहा कि धर्म को सम्प्रदाय बना देने से आर्यों में भी वे दोष आ

जायेंगे जो अन्यो में हैं। स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश में ६६६ मतों का वर्णन करते हुए धर्म के मुख्य तत्त्वों पर बल दिया है। प्रत्येक आर्य को उचित है कि वह साम्प्रदायिकता के दोषों से बचे और अपने जीवन में धर्म के तत्त्वों को धारण करे।

आर्यत्व की वास्तविक पहचान—सच्चा आर्य कौन है ? उसकी पहचान सध्या हवन तथा यज्ञों के करने से, मूर्तिपूजा और श्राद्ध न करने से, सबके साथ खा लेने से, जात-पात तोड़ कर विवाह करने से, वेदों के पढ़ते रहने से, नित्य प्रचारार्थ व्याख्यान देने, लेखों के लिखते रहने और दान देते रहने से नहीं हो सकती। ये ती वाह्य चिह्न हैं और सरल काम हैं। वास्तविक पहचान उसके आर्योचित व्यवहार से ही हो सकती है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या आर्य समाज के सदस्य का व्यवहार अपने तथा परायों के साथ धार्मिक है ? क्या उसके व्यवहार से उसकी स्त्री, माता-पिता, वच्चे, नौकर-चाकर और हितुवान्धव संतुष्ट हैं ? उसकी धर्मपत्नी को उसके व्यवहार के प्रति कोई शिकायत तो नहीं है ? यदि उसके माता-पिता वृद्ध हैं तो क्या वह उनके साथ ऐसा व्यवहार करता है जिससे उनको प्रसन्नता हो कि हमारे वच्चे का आर्य समाज के सम्पर्क में आना हितकर हुआ ? यदि वह आर्य दूकानदार है तो क्या उसके ग्राहक उस पर अन्य दूकानदारों की अपेक्षा शुद्ध व्यवहार के लिये अधिक भरोसा रखते हैं ? क्या उसके मुहल्ले वालों को पता है कि उसके आर्य होने के कारण उनको अधिक आराम पहुंच रहा है।

यदि वह किसी सर्विस में है तो क्या उसके मालिक वा अफसर यह समझते हैं कि वह आर्य सनाज का सदस्य है अतः वह अवश्य स्वामि-भक्त, ईमानदार और परिश्रमी होगा ? क्या मुहल्ले की देवियां समझती हैं कि उसकी शरण में उनका किसी प्रकार का अहित न होगा ? इन प्रश्नों से धर्म के कतिपय तत्त्वों का आभास मिलता है जिनकी ऋषि

ग्रन्थों और वेदों में विशद व्याख्या दी गई है जिनके केवल जानने से नहीं वरन् आचरण से ही आर्यत्व प्राप्त होता है। तभी तो वेद कहता है :—

आर्या व्रता विसृजन्तो अवि क्षमि । (ऋग् १०-६५-११)

अर्थात् आर्य वे कहलाते हैं जो इस पृथ्वी पर सत्त, अहिंसा, परोपकार, पवित्रतादि उत्तम व्रतों को विशेष रूप से धारण करते हैं।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

—: ० :—

SARDA ACT
Act No. XIX of 1929.

(PASSED BY THE INDIAN LEGISLATURE.)
(Received the assent of the Governor General on the
1st October, 1929.)

(As modified upto 9th April 1938.)

(An Act, to restrain the solemnisation of
Child Marriages).

Whereas it is expedient to restrain the solemnisation of child marriages, it is hereby enacted as follows :—

1. (1) This Act may be called the Child Marriage Restraint Act. ¹[1929].

Short title extent and commencement.

(2) It extends to the whole of British India, including British Baluchistan and the Sonthal Parganas and applies also to ²(a) All British subjects and servants of the crown in any part of India;

Foot Note.—¹These figures were substituted for “1928” by Section 2 and 1 of the Repealing and Amending Act, 1930 (8 of 1930).

²To sub-section 2 of Section 1 the clauses (a) & (b) were added by ‘Child Marriage’ Restraint Amendment Act No. VII of 1938 which received the Governor General’s assent on 12th March 1938.

(b) All British subjects who are domiciled in any part of India wherever they may be.

(3) It shall come into force on the 1st day of April 1930.

2. In this Act, unless there is anything repugnant in the subject or context.

Definitions.

(a) "Child" means a person who, if a male, is under eighteen years of age, and if a female, is under fourteen years of age ;

(b) "Child marriage" means a marriage to which either of the contracting parties is a child ;

(c) "Contracting party" to a marriage means either of the parties whose marriage, is³ or is about to be thereby solemnised ; and

(d) "Minor" means a person of either sex who is under eighteen years of age.

3. Whoever, being a male above eighteen years of age and below twentyone, contracts a child marriage shall be punishable with fine which may extend to one thousand rupees.

Punishment for male adult below twenty-one years of age marrying a child.

4. Whoever, being a male above twenty-one years of age contracts a child marriage shall be punishable with simple imprisonment which may extend to one

Foot Note—³The words 'or is about to be' were added by Section 2 of the Child Marriage Restraint Second Amendment Act No. 19 of 1938, which received the assent of the Governor General on 9th April 1938.

month, or with fine which may extend to one thousand rupees, or with both.

Punishment for male adult above twenty-one years of age marrying a child.

5. Whoever performs, conducts or directs any child marriage shall be punishable with simple imprisonment which may extend to one month, or with fine which may extend to one thousand rupees, or with both, unless he proves that he had reason to believe that marriage was not a child marriage.

6. (1) Where a minor contracts a child marriage, any person having charge of the minor, whether as parent or guardian or in any other capacity, lawful or unlawful, who does any act to promote the marriage or permits it to be solemnised, shall be punishable with simple imprisonment which may extend to one month, or with fine which may extend to one thousand rupees, or with both.

Provided that no woman shall be punished with imprisonment.

(2) For the purposes of this section, it shall be presumed unless and until the contrary is proved that where a minor has contracted a child marriage, the person having charge of such minor has negligently failed to prevent the marriage from being solemnised.

7. Notwithstanding anything contained in Section 25 of the General Clauses Act, 1897, or Section 64, of the Indian Penal Code, a court sentencing an offender under Section 3 shall not be competent to direct that, in default of payment of the fine imposed, he shall undergo any term of imprisonment.

Imprisonment not to be awarded for offences under Section 3.

X of 1899. XLV of 1860.

8. Notwithstanding anything contained in Section 190 of the Code of Criminal Procedure, 1898, no Court other than that of a Presidency Magistrate or a Magistrate of the 1st Class¹ shall take cognizance of, or try offence under this Act.

Jurisdiction under this Act.

9. ⁵No court shall take cognizance of any offence under this Act after the expiry of one year from the date on which the offence is alleged to have been committed.

10. The court taking cognizance of an offence under this Act shall, unless it dismisses the complaint under Section 203 of the Code of Criminal Procedure, 1898, either itself make an inquiry under Section 202 of that Code, or direct a Magistrate of the first class subordinate to it to make such inquiry.

Foot Note—“The words “Magistrate of the First Class” were substituted for the words ‘District Magistrate’ by Section 3 of the Child Marriage Restraint Second Amendment Act No. 19 of 1938, which received the assent of the Governor General on 9th April 1938.

⁵This Section was substituted by Section 4 of the Child Marriage Restraint Second Amendment Act No. 19 of 1938, which received the Governor General’s assent on 9th April 1938.

11. ⁶(1) When the court takes cognizance of any offence under this Act upon a complaint made to it, it may for reasons to be recorded in writing, at any time after examining the complainant and before issuing process for compelling the attendance of the accused, require the complainant to execute a bond with or without sureties, for a sum not exceeding one hundred rupees, as security for the payment of any compensation which the complainant may be directed to pay under Section 250 of the Code of Criminal Procedure 1898, and if such security is not furnished within such reasonable time as the court may fix, the complaint shall be dismissed

Power to take security from complainant.

V of 1898.

(2) A bond taken under this Section shall be deemed to be a bond taken under the Code of Criminal Procedure, 1898 and Chapter XLII of the Code shall apply accordingly.

V of 1898

12. (1) Notwithstanding anything contained in this Act, the court may, if satisfied from information laid before it through a complaint or otherwise that a child marriage in contravention of this Act has been arranged or is about to be solemnised, issue an injunction against any of the persons mentioned in Sections 3, 4, 5 and 6 of this Act prohibiting such marriage.

Power to issue injunction prohibiting marriage in contravention of this Act.

Foot Note—⁶This Section was substituted by Section 5 of the Child Marriage Restraint Second Amendment Act No. 19 of 1938 which received the Governor General's assent on 9th April 1938.

(2) No injunction under sub-section (1) shall be issued against any person unless the court has previously given notice to such person, and has afforded him an opportunity to show cause against the issue of the injunction.

(3) The court may either on its own motion or on the application of any person aggrieved rescind or alter any order made under sub-section (1).

(4) Where such an application is received, the court shall afford the applicant an early opportunity of appearing before it either in person or by pleader; and if the court rejects the application wholly or in part, it shall record in writing its reasons for so doing.

(5) Whoever knowing that an injunction has been issued against him under sub-section (1) of this Section disobeys such injunction shall be punished with imprisonment of either description for a term which may extend to three months or with fine which may extend to one thousand rupees, or with both.

Provided that no woman shall be punished with imprisonment.

Foot Note 7—This Section has been added by Section 6 of the Child Marriage Restraint Second Amendment Act No. XIX of 1938 which received the assent of the Governor General in Council on 9th April 1938.

शारदा ऐक्ट

धारा सभा द्वारा पारित बाल विवाह निरोधक ऐक्ट नं० १६ (१९२६)

१^{१०}/_{२६} को गवर्नर जनरल ने स्वीकृति दी ।

(६ अप्रैल १९३८ तक संशोधित हुआ ।)

१ अप्रैल १९३० से लागू हुआ ।

इस ऐक्ट की मुख्य धाराएँ इस प्रकार हैं :—

१. १८ वर्ष से कम उम्र के लड़के की ओर १४ वर्ष से कम उम्र की लड़की की शादी कानूनन अवैध होगी ।

२. यदि १८ वर्ष से ऊपर और २१ वर्ष से नीचे की आयु के किसी लड़के की शादी १४ वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ होगी तो उसे जुमनि की सजा दी जा सकेगी जो १००० रु० तक होगा ।

३. यदि २१ वर्ष से ऊपर की आयु के किसी पुरुष की शादी १४ वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ होगी तो उसे १ मास तक की सादी कैद की या १००० रु० तक जुमनि की या दोनों सजाएँ दी जा सकेंगी ।

४. जो व्यक्ति इस प्रकार की शादी करेगा, उसकी व्यवस्था करेगा या मार्ग दर्शन करेगा उसे १ मास तक की सादी कैद या १००० रु० तक जुमनि की या दोनों ही सजाएँ दी जा सकेंगी वशर्ते वह यह सिद्ध न कर दे कि उस शादी को बाल विवाह न समझने के लिए उसके पास कारण मौजूद थे ।

५. यदि किसी नाबालिग बच्चे का बाल विवाह होता है तो उस बच्चे के सर परस्त को चाहेवे माता-पिता हो या अभिभावक या अन्य कोई बैध या अवैध स्थिति का अभिभावक हो और बाल

विवाह को प्रोत्साहित करेगा या विवाह सम्पन्न करायेगा तो उसे १ मास तक की सादी कैद, या जुर्माने की जो १००० रु० तक हो सकेगा या दोनों ही सजाएँ दी जा सकेंगी ।

परन्तु किसी स्त्री को कैद की सजा न दी जायेगी ।

६. अपराध के किए जाने के १ वर्ष के बाद कोई केस न चल सकेगा ।

७. इस कानून के अधीन जुर्म पर विचार करते हुए यदि १८६८ के दंड विधान की धारा २०३ के अधीन शिकायत रद्द न कर दी गई हो तो, कोर्ट या तो स्वयं तहकीकात करेगी या अपने अधीनस्थ किसी फर्स्टक्लास मजिस्ट्रेट से करायेगी ।

८. जब कोई कोर्ट शिकायत किए जाने पर जुर्म पर विचार करने का मामला हाथ में लेगी तो शिकायत कर्ता की शिकायत सुनने के बाद अपराधी को कोर्ट में हाजिर होने के लिए विवश करने से पूर्व, किसी भी समय शिकायत कर्ता से जमानत के बिना वा उसके सहित बांड लिखवायेगी जो १०० रु० से अधिक न होगा । इस राशि में से आवश्यक होने पर अपराधी को भारतीय दंड विधान की धारा २५० के अधीन मुआवजा दिया जाएगा । यदि कोर्ट द्वारा नियत समय के भीतर यह जमानत न दी गई तो शिकायत खारिज कर दी जायेगी ।

आर्य समाज वाङ्मय सूची

आर्य समाज के नियम व उपनियम

सार्वदेशिक सभा—आर्य समाज के नियम, उपनियम
व्याख्या

स्वा० सत्यप्रकाश—दस नियम व्याख्या

सत्यानंद स्वामी—आर्य समाज के दस नियम

रघुनाथ प्रसाद पाठक—दस नियम व्याख्या

अंग्रेजी

चमूपति—Ten Commandments

आर्य समाज, उसका स्वरूप और कार्य

गंगा प्रसाद उपाध्याय—आर्य समाज

धर्मदेव वि० वाचस्पति—वैदिक धर्म आर्य समाज प्रश्नोत्तरी

नारायण स्वामी—आर्य समाज क्या है ?

सार्वदेशिक सभा—आर्य समाज का परिचय

सार्वदेशिक सभा—आर्य समाज (ला० रामगोपाल शाल वाले)

„ आर्य समाज और उसका सन्देश

„ (रघुनाथ प्रसाद पाठक)

अंग्रेजी

गंगाप्रसाद उपाध्याय—Origin, scope and mission of Arya
samaj

बाबा छज्जूसिंह—Teachings of Arya Samaj

दीवानचंद—Arya Samaj

धर्मदेव वि० मार्तण्ड—Catechism on vedic Dharma and Arya
Samaj

मदन मोहन सेठ—1. Arya Samaj and its work 2. Is Arya Samaj a Political body? 3. High Govt. Officials

मुँशी राम एन्ड रामदेव—Arya Samaj and its detractors

लाजपतराय—Arya samaj

विष्णुदत्त शर्मा—Hand book of the Arya samaj

उर्दू

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब—मलावार और आर्य समाज

विदेश प्रचार

जैमिनी महता—विदेशों में आर्य समाज के प्रचार का प्रभाव

सार्वदेशिक सभा—विदेशों में आर्य समाज

स्वतन्त्रानन्द—विदेशों में एक साल

अंग्रेजी

Hari prasad—Vedic Propaganda in Central America

Ram Bharati—Vedic Mission in British East Africa

उर्दू

रुचिराम—अरब में सात साल

आर्य समाज के सत्याग्रह

घनश्यामसिंह गुप्त—पंजाब की भाषा समस्या और आर्य समाज

जयदेव व सूर्य देव शर्मा—हैदराबाद सत्याग्रह का रक्त रंजित इतिहास

शिवचन्द्र—A case of Arya Samaj in sind

संस्कृत

सत्य देव वसिष्ठ—सत्याग्रह नीति काव्यम् ✓

आर्य समाज का इतिहास

इन्द्र विद्या वाचस्पति

(सार्वदेशिक सभा)—आर्य समाज का इतिहास २ भाग

नरदेव शास्त्री—आर्यसमाज का इतिहास

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार—आर्य समाज का इतिहास

आर्य सभाओं का इतिहास

आर्य प्रतिनिधि—सभा पंजाब का सचित्र इतिहास । आ० प्र०
सभा उत्तर प्रदेश का इतिहास ।

सार्वदेशिक सभा का २७ वर्षीय इतिहास

” ” संक्षिप्त इतिहास

अभिनन्दन ग्रन्थ

आर्य प्रतिनिधि—सभा उत्तर प्रदेश—गंगा प्रसाद उपाध्याय अभिनन्दन ग्रंथ

” ” (जज) ”

सार्वदेशिक सभा—नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ

आर्य प्रतिनिधि सभा—मध्य दक्षिण हैदराबाद—विनायक राव
अभिनन्दन ग्रन्थ

आ० प्र० सभा बिहार—डा० डी० राम अभिनन्दन ग्रन्थ

हरिशङ्कर शर्मा—माता लक्ष्मी देवी अभिनन्दन ग्रन्थ

—प्रि० ज्ञानचन्द अभिनन्दन ग्रन्थ

—पं० देव प्रकाश अभिनन्दन ग्रन्थ

अंग्रेजी

हरविलास शारदा (परोपकारिणी सभा) अजमेर—

Dayanand Commemoration Volume

डाइरेक्टरी

सार्वदेशिक सभा—आर्य डाइरेक्टरी

सामूहिक जीवन चरित्र

जयदेव शर्मा—आर्य समाज के उज्ज्वल रत्न

भगवान् देव आचार्य और वेद व्रत शास्त्री—वलिदान
स्वतंत्रानन्द—आर्य समाज के महाधन (सार्व-सभा)

अंग्रेजी

Makers of Arya Samaj दीवान् चन्द शर्मा—मेकमिलन कम्पनी
लंदन

व्यक्तिगत जीवन चरित्र

गंगा प्रसाद उपाध्याय—जीवन चक्र (आत्म कथा)

गंगा प्रसाद (जज)—मेरी आत्म कथा

नारायण स्वामी—आत्म कथा

विनोद—ला० लाजपत राय

त्रिलोक चन्द्र—पं० गुरुदत्त

मुंशीराम जिज्ञासु (स्वा० श्रद्धानन्द)—आर्य पथिक लेख राम

वेदानन्द स्वामी—महर्षि विरजानन्द चरित्र

इन्द्र वि० वा०—मेरे पिता

धर्म देव वि० वाचस्पति—स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द जी—कल्याण मार्ग का पथिक

सत्यदेव विद्यालंकार—स्वामी श्रद्धानन्द

आनन्द स्वामी जी—महात्मा हंसराज

अंग्रेजी

दीवान् चन्द शर्मा—पं० गुरुदत्त और पं० लेखराम

हर विलास शारदा—Swami Virja nand Saraswati

दीवान् चंद शर्मा—Swami Shraddhanand Mahatma Hans Raj

जम्बूनाथम्—Swami Sharaddhanand

श्री राम शर्मा—महात्मा हंसराज

संस्कृत

आचार्य मेंधाव्रत कविरत्न—नारायण स्वामी चरितम् (हिन्दी अनुवाद सहित)

—महर्षि विरजानन्द चरितम्

आर्य समाज के सिद्धांत

आनन्द स्वामी—तत्त्व ज्ञान और प्रभु दर्शन

गंगा प्रसाद उपाध्याय—आर्य स्मृति, आस्तिकवाद, जीवात्मा, वैदिक संस्कृति (सार्व-सभा)

गंगा प्रसाद (जज)—धर्म का आदि स्रोत

गुरुदत्त—गुरुदत्त लेखावली

दर्शनानन्द—दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह

नारायण स्वामी—मृत्यु परलोक, आत्म दर्शन, गृहस्थ जीवन, कर्त्तव्य दर्पण, योग रहस्य, विद्यार्थी जीवन रहस्य (सार्व-सभा)

स्वामी नित्यानन्द—पुरुषार्थ प्रकाश

बुद्ध देव विद्यालंकार—काया कल्प

मदन मोहन विद्या सागर—आर्य सिद्धान्त दीप

श्रद्धानन्द—उपदेश माला । ३ भाग

सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार—आर्य संस्कृति के मूल तत्त्व

स्वामी सर्वदानन्द—सन्मार्ग दर्शन

सूर्यदेव शर्मा—धर्म शिक्षा १० भाग

राम प्रसाद—वैदिक सिद्धान्त

रघुनाथ प्रसाद पाठक—नैतिक जीवन

ओ३म् प्रकाश त्यागी एम० पी०—एक ही मार्ग

अंग्रेजी

Ganga Prasad (Judge)—Fountain Head of Religion

„ Upadhyaya—Philosophy of Dayanand

अंग्रेजी

Ganga Prasad Upadhyaya—I and my God. 2. Life after death. 3. Reason and Religion. 4. Worship. 5. Vedic culture

सत्य प्रकाश—Agnihotra

आर्य कर्म-काण्ड

भवानी प्रसाद—आर्य पर्व पद्धति

मदनजित आर्य—सामाजिक पद्धतियाँ

सावंदेशिक सभा—यज्ञ पद्धति प्रकाश

शुद्धि

गंगा प्रसाद शास्त्री—सनातन शुद्धि शास्त्र

चांदकरण शारदा—दलितोद्धार

” —शुद्धि

” —शुद्धि चन्द्रोदय

चिदानन्द संन्यासी—शुद्धि व्यवस्था

शुद्धि संस्कार पद्धति

महता रामचन्द्र शास्त्री—शुद्धि शास्त्र सम्मत है ।

सत्यदेव आर्य—शुद्धि स्मृति-भाषानुवाद

गंगा प्रसाद (जज)—जाति भेद

अंग्रेजी

श्रीराम शर्मा—Conversion and Reconversion

गंगा प्रसाद (जज)—Vedic caste system

घर्मेन्द्र नाथ—Vedic Varna System

शिवशंकर काव्य तीर्थ—जाति निर्णय

विधवा विवाह विचार

गंगा प्रसाद उपाध्याय—विधवा विवाह मीमांसा

मांस भक्षण विचार

गंगा प्रसाद उपाध्याय—हम क्या खावें घास या मांस ?

यशः पाल स्नातक—शक्ति रहस्य अर्थात् मांस भोजन की मीमांसा

स्वतंत्रानन्द—मांस मदिरा निषेध (सार्व-सभा)

रघुनाथ प्रसाद पाठक—मांसाहार—घोर पाप एवं स्वास्थ्य विनाशक

” शराब बंदी क्यों ?

पौराणिक मत खंडन

गंगा प्रसाद उपाध्याय—गरुड़ पुराण की आलोचना

भक्तराम उपदेशक—कूर्म पुराण की आलोचना

भीमसेन विद्यालंकार—लिंग पुराण की आलोचना

मनसा राम—१. पौराणिक पोल प्रकाश २. भविष्य पुराण की
आलोचना ३. शिव पुराण की आलोचना

राम देव आचार्य—पुराण मतपर्या लोचन

श्रुति कान्त—बराह पुराण की आलोचना

मूर्ति पूजा खंडन

बुद्धदेव मीर पुरी—मूर्ति पूजा मीमांसा

भूमित्र शर्मा—मूर्ति पूजा समीक्षा

अवतार वाद खंडन

बुद्धदेव मीर पुरी—अवतार वाद मीमांसा

मृतक श्राद्ध खंडन

शिव शंकर शर्मा काव्य तीर्थ—श्राद्ध निर्णय

राधा स्वामी मत समीक्षा

लक्ष्मण (मास्टर) आर्योपदेशक—राधा स्वामी मत और वैदिक धर्म

उर्दू

सोमानन्द स्वामी—राधा स्वामी मत आलोचना

सिक्ख मत विचार

स्वतंत्रानन्द स्वामी—आर्य सिद्धान्त और सिक्ख गुरु

इस्लाम समीक्षा

रामचन्द्र देहलवी—कुरान में अन्य मतावलम्बियों के लिए कुछ अति कठोर उत्तेजक वाक्यों का संग्रह (सार्व-सभा)

लक्ष्मण आर्योपदेशक—वैदिक धर्म और दीन इस्लाम

लेख राम—कुल यात आर्य मुसाफिर

ईसाई मत विचार

हिन्दी

सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित अनेक ट्रेक्ट

अंग्रेजी

गंगा प्रसाद उपाध्याय—Christianity

आर्य सामाजिक दृष्टि से रचित वैदिक साहित्य

वेद भाष्यकार

ऋग्वेद

आर्य मुनिः—ऋग्वेद भाष्य (संस्कृत) मंडल हिन्दी ७, ९

जयदेव शर्मा—ऋग्वेद सरल भाषा भाष्य सहित

स्वा० दयानन्द सरस्वती—ऋग्वेद भाष्य (संस्कृत हिन्दी) आरंभ से ७वें मंडल के ६१वें सूक्त पर्यन्त

शिव शंकर काव्य तीर्थ—ऋग्वेद भाष्य ८-१० मंडल

यजुर्वेद

जय देव शर्मा—यजुर्वेद सरल भाषा भाष्य सहित

स्वा० दयानंद सरस्वती—यजुर्वेद भाष्य (संस्कृत हिन्दी)

द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री—यजुर्वेद का हिन्दी भाष्य

ब्रह्म दत्त जिज्ञासु—यजुर्वेद भाष्य विवरण

वैदिक संस्थान वृन्दावन—यजुर्वेद संहिता भाषानुवाद

अंग्रेजी

देवी चन्द्र—Yajur Veda

सामवेद

जयदेव शर्मा—सामवेद सरल भाषा भाष्य सहित

तुलसीराम स्वामी—सामवेद भाष्य हिन्दी

हरिश्चन्द्र विद्यालंकार—सामवेद भाष्य गुटका

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री—सामवेद भाष्य

अंग्रेजी

देवीचन्द्र—Sama Veda

धर्म वि० मात्तण्ड—Sama Veda Bhashya

अथर्ववेद

क्षेम करणदास त्रिवेदी—अथर्ववेद भाष्य (संस्कृत हिन्दी)

जयदेव शर्मा विद्यालंकार—अथर्ववेद सरल भाषा भाष्य सहित

राजाराम—अथर्ववेद संहिता भाषा भाष्य २ भाग

श्री याद दामोदर सातवलेकर—अथर्ववेद का सुबोध भाष्य

सार्वदेशिक सभा—चारों वेदों का सरल भाषा भाष्य

अंग्रेजी

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री—A tharva Veda up to 10 can tos (to be published by S. A. P Sabha)

ऋग्वेद का अंग्रेजी भाष्य जिल्द ? (सा० सभा)

वेद मन्त्र संग्रह

अच्युतानंद—ऋग्वेद शतक । यजुर्वेद शतक । सामवेद शतक, अथर्ववेद शतक ।

चभूपति—जीवन ज्योति, सोम सरोवर

जगदीश चन्द्र विद्यार्थी—चारों वेदों के शतक

देव शर्मा अभय—वैदिक ब्रह्मचर्य गीत, वैदिक विनय ३ भाग

प्रियव्रत आचार्य—वेद का राष्ट्रीय गीत, वेदोद्यान के चुने हुए फूल

ब्रह्म मुनि स्वामी—वैदिक वन्दन

रामनाथ वेदाऽलंकार—वैदिक वीर गर्जना, वैदिक सूक्तियाँ

वेद व्रत—वेद गीतांजलि

वेदानन्द स्वामी—वेदोपदेश, स्वाध्याय संदोह, स्वाध्याय सुमन,

श्री पाद दामोदर सातवलेकर—वेद परिचय ३ भाग वेदामृत

अंग्रेजी

रघुनाथ प्रसाद पाठक—Vedic teachings (Collection of 100
Veda Mantras with exposition)

आत्मा—Vedic teachings

ठाकुरदत्त धवन—(1) Truth and Vedas (2) Truth Bed
rock of Aryan Culture (सार्व-सभा)

भूभानंद—(1) Anthology of the Vedic Hymns (2)
Ecclesia Divinaca

राजेन्द्र कृष्ण कुमार—Light of the Vedas

वेद विचार

जय देव शर्मा—क्या वेद में इतिहास है ?

धर्म देव विद्या मार्तण्ड—वेदों का यथार्थ स्वरूप

नारायण स्वामी—वेद रहस्य

प्रिय रत्न (स्वा० ब्रह्म मुनि) १. अथर्ववेदीय मंत्र विद्या (२) अथर्व-
वेदीय चिकित्सा शास्त्र

प्रिय व्रत आचार्य—मेरा धर्म

भगवद्दत्त—वैदिक स्वप्न विज्ञान

रघुनंदन शर्मा—वैदिक सम्पत्ति

रामचन्द्र शास्त्री मेहता—वैदिक धर्म मुझे क्यों प्यारा है ?

वासुदेव शरण अग्रवाल—१. उरु ज्योति २. वैद विद्या

पं० विश्वनाथ—वैदिक पशु यज्ञ मीमांसा

वेद व्रत शास्त्री - वेद विमर्श

वैद्यनाथ शास्त्री—वैदिक ज्योति

वैदिक देवता

प्रियव्रत - वरुण की नौका २ भाग

बुद्ध देव वि० अलंकार—गरुड़ देवता, सोम

ब्राह्मण ग्रन्थ

क्षेमकरण दास त्रिवेदी - गोपथ ब्राह्मण भाष्य

गंगा प्रसाद उपाध्याय - १. ऐतरेय ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद २. शतपथ

ब्राह्मण हिन्दी अनुवाद

बुद्धदेव वि० अ० - शतपथ में एक पथ

उपनिषद् भाष्य

आर्य मुनि—उपनिषदार्य भाष्य (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य
ऐतरेय, तैत्तिरिय)

दर्शनानन्द - उपनिषद् प्रकाश, (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य)

देवेन्द्रनाथ शास्त्री—उपनिषद् संग्रह (१० उपनिषद्)

नारायण स्वामी—उपनिषद् रहस्य (व्याख्या ईश, केन, कठ, प्रश्न,
मुंडक, मांडूक्य, ऐतरेय तैत्तिरिय बृहदा-छान्दो)

ब्रह्म मुनि—१. बृहदारण्यक उपनिषद् कथा माला २. छान्दोग्य उप-
निषद् कथा माला

राजा राम—उपनिषद् भाष्य

शिव शंकर - छान्दोग्योपनिषद्

सातवलेकर—उपनिषद् ग्रन्थ माला

सत्यव्रत विद्यालंकार—एकादशोपनिषद्

सत्यानन्द स्वामी—एकादशोपनिषद् संग्रह

दर्शन भाष्य

आर्य मुनि—न्यायार्थ भाष्य, मीमांसार्य भाष्य (अपूर्ण) योगार्थ भाष्य,
वेदान्तार्थ भाष्य ब्रह्मसूत्र शारीरक का व्याख्यान, वैशेषिकार्थ भाष्य

ओमानन्द—आर्ष योग प्रदीप

तुलसी राम स्वामी—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, वेदान्त

दर्शनानन्द—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, वेदांत

देवदत्त—मीमांसा दर्शन

नारायण स्वामी—योग रहस्य

ब्रह्म मुनि—पातंजल, आर्ष योग प्रदीपिका, वेदान्त दर्शन (संस्कृत
भाष्य) सांख्य दर्शन (सं० भाष्य)

राजाराम—वैशेषिक, योग, वेदान्त

वैद्यनाथ शास्त्री—षड्दर्शन समन्वय

भगवान् देव शर्मा—अष्टाङ्ग योग प्रकाश

गृह सूत्र भाष्य

राजा राम—पारस्कर गृह सूत्र हिन्दी भाष्य

मनुस्मृति भाष्य

गंगा प्रसाद उपाध्याय—मनुस्मृति

तुलसी राम स्वामी—मनुस्मृति

दर्शनानन्द—मनुस्मृति

सत्यकाम ,,

आत्मानन्द स्वामी—मनुस्मृति

रामायण भाष्य

चन्द्रमणि वि० अ०—वाल्मीकि रामायण हिन्दी टीका सहित ३ भाग

दामोदर सातवलेकर—वाल्मीकीय रामायण हिन्दी टीका सहित ६ भाग

महाभारत भाष्य

श्री पाद दामोदर सातवलेकर—महाभारत हिंदी टीका सहित
(विश्वनाथ शास्त्री एम० ए० सागर विश्व विद्यालय द्वारा संकलित)
नोट—इसमें कुछ पुस्तकों की लेखक द्वारा वृद्धि की गई है, हो सकता
है कोई ग्रन्थ अंकित होने से रह गया हों।

आर्य समाज और वेद विषय पर शोध ग्रन्थ

१. डा० सुधीर कुमार गुप्त—वेद भाष्य प्रणाली को दयानंद सरस्वती की देन (राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
२. डा० लक्ष्मी नारायण गुप्त—आर्य समाज की हिंदी भाषा और साहित्य को देन। (लखनऊ विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
३. डा० भवानी लाल भारतीय अजमेर—ऋषि दयानन्द और आर्य समाज की संस्कृत साहित्य को देन (राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
४. प्रो० वेद प्रकाश मेरठ—फ़िलास्फी आफ़ स्वामी दयानन्द (आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत)
५. डा० रामनाथ वेदाङ्गलकार—वेद की विविध वर्णन शैलियाँ (आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत)
६. डा० परमानंद—ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका अनुवाद, भौलिक टिप्पणियों सहित (पंजाब विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
७. डा० वद्री प्रसाद—ऋग्वेद में गोशतक (राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
८. डा० नाथू लाल पाठक—ऐतरेय ब्राह्मण, एक अध्ययन (राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
९. डा० कुमारी विमला, पटना—सायण तथा दयानन्द के वेद भाष्य का

तुलनात्मक विवेचन (पटना विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)
(सार्व-सभा)

१०. डा० राधेश्याम पारीक—कन्ट्रीव्यूशन ऑफ आर्य समाज इन दी
मेकिंग ऑफ माडर्न इन्डिया (Contribution of Arya Samaj in
the making of Modern India.) (राजस्थान विश्व विद्यालय
द्वारा स्वीकृत) (सार्व-सभा)

११. कुमारी डा० सरस्वती पंडित—A Critical Study of the
Contribution of Arya Samaj to Indian Education.
(वड़ीदा विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत) (सार्व-सभा)

१२. श्री धन पति पांडेय—Arya Samaj and Indian Nationa-
lism (पटना विश्व विद्यालय द्वारा स्वीकृत)

इन शोध ग्रन्थों पर लेखकों को पी० एच० डी० की उपाधियाँ
प्राप्त हुईं ।

महर्षि जीवनी (मुख्य २)

- | | |
|--|------------------------------|
| १. पं० लेखराम | २. स्वामी सत्यानन्द |
| ३. पं० घासीराम | ४. हर विलास शारदा (अंग्रेजी) |
| ५. स्वामी दयानन्द का वार्त्तालाप व उगदेश | (अंग्रेजी २. प्र. पाठक) |



ओ३म्

एक ही मार्ग

भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद का समन्वय
(आर्य समाज की स्थापना का एक प्रबल कारण)

ओम्प्रकाश त्यागी
संसद सदस्य



मानव जीवन का लक्ष्य—

चींटी से लेकर मानव तक सभी प्राणियों, स्वरूपों, गतिविधियों व रुचियों में भले ही भेद हो : परन्तु लक्ष्य सब के जीवन का एक ही है अर्थात्—सुख, शान्ति व आनन्द की प्राप्ति करना ।

मानव को भगवान ने ऐसी योनि प्रदान की है जिसमें उसे अपने-जीवन-संचालन के लिए स्वाभाविक ज्ञान न देकर सोचने-विचारने के लिए बुद्धि प्रदान की है; और अच्छा-बुरा कर्म करने की उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की है; अर्थात् उसे अपने जीवन का स्वयं स्वामी व निर्माता बनाया है । वह क्या खाये ? क्या करे ? क्या बोले ? कैसे एक दूसरे के साथ व्यवहार करे ? इन सब प्रश्नों का उत्तर उसे अपनी बुद्धि के सहारे सोचना होगा ।

ईश्वर ने उसकी सहायता के लिए अपना ज्ञान “वेद” दिया है; परन्तु उसको मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार उसे दिया है ।

यदि मनुष्य ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान के सहारे बुद्धिपूर्वक अपने जीवन को चलावे तो वह अपने जीवन को सुखी बना सकता है; परन्तु दुर्भाग्यवश शक्ति की मदान्धता ने उसे ऐसा मदहोश बना दिया है कि ईश्वर के ज्ञान से लाभ उठाने के स्थान पर उसने ईश्वर को ही मानने से इन्कार कर दिया है । उसे अपनी बुद्धि व शक्ति पर भरोसा है; और उसका विश्वास है कि एक दिन वह संसार को स्वर्ग बनाकर छोड़ेगा ।

मानव के प्रयास का परिणाम—

सुख की खोज में व्यक्ति ने जो प्रयास किया है वह कई दृष्टियों से प्रशंसनीय है । उसने समुद्र, नदी, नाले, पहाड़ जंगल आकाश किसी स्थान को नहीं छोड़ा जिसकी उसने खोज न कर डाली हो । जिस प्रकार मृग रेगिस्तान में पानी की खोज में मृग मरीचिका के पीछे

भागता-भागता बिना पानी की प्राप्ति ही मर जाता है ठीक उसी प्रकार सुख की खोज में शताब्दियों से मानव भाग रहा है; परन्तु आज तक उसको निराशा ही हाथ लगी है।

सुख की अप्राप्ति से उत्पन्न निराशा ने अब मानव के हृदय में भय, क्रोध अविश्वास घृणा आदि अवगुणों को बढ़ाकर उसे विनाश के मार्ग पर डाल दिया है। अब वह जीवन से खिन्न होकर विज्ञान अर्थात् आणविक शक्ति के सहारे संसार को स्वर्ग बनाने के स्थान पर श्मशान भूमि या नरक बनाने पर तुल गया है। वर्तमान समय में स्थिति इतनी विस्फोटक व भयावह है कि किस समय क्या हो जाय कोई नहीं कह सकता। इसलिए आज संसार के समस्त बुद्धिमान विचारकों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे मानव को सुख-प्राप्ति की सही शिक्षा प्रदान कर संसार को विनाश के मुख से बचा लें।

निराशा का कारण क्या है ?

यदि कोई व्यक्ति बालू में से तेल निकालने का प्रयास करे तो निराशा के अतिरिक्त उसके क्या हाथ लगेगा ? इसी प्रकार जब उसने भोक्ता की उपेक्षा कर भोग्य पदार्थों को ही सब कुछ मानकर उसके पीछे पागलों की भाँति दौड़ना प्रारम्भ कर दिया, जब अपनी खोज किए बिना उसने संसार को खोज करना प्रारम्भ कर दिया, जब मालिक की भूख व रुचि को जाने बिना ही खाद्य-पदार्थों को इकट्ठा करना प्रारम्भ कर दिया तो फिर निराशा के स्थान पर उसे आशा कैसे प्राप्त हो सकती थी ?

मानव को यह भ्रान्ति हो गई कि सुख भौतिक वस्तुओं में निवास करता है; और यदि विज्ञान के सहारे इन्हें प्रचुर मात्रा में उत्पन्न कर दिया तो फिर संसार स्वतः स्वर्ग बन जाएगा। अमरीका, इंग्लैण्ड, जापान, रूस आदि देशों में वह ऐसा करने में सफल भी हो गया ; परन्तु सफलता की प्राप्ति पर उसे आभास हुआ कि कोरी भौतिक उन्नति से सुख कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। यही उसकी निराशा का

कारण हुआ; और इसी निराशा में वह एक ओर हिप्पी वन संसार में दर-दर की ठोकें खाने लगा, तो दूसरी ओर आणविक अस्त्र-शस्त्र बनाकर आत्महत्या करने और कराने पर उतारू हो गया ।

सुख क्या है ?

सुख की खोज करने से पूर्व सुख के अभिलाषी व्यक्ति को यह जानना आवश्यक है कि सुख है क्या ? भोगरत व्यक्ति की दृष्टि में सुख वास्तव में इन्द्रियों की इच्छा-पूर्ति का नाम है और इन्द्रियों की इच्छा पूर्ति में आने वाली बाधाओं का नाम दुःख है ।

सुख का वास्तविक अर्थ है कि सु—ख अर्थात् स्वस्थ हैं इन्द्रियां जिसकी । इसका अर्थ है कि सुख भौतिक पदार्थों पर निर्भर न होकर मुख्यतः इन्द्रियों पर ही आधारित होता है । यदि इन्द्रियां स्वस्थ हैं तो संसार की प्रत्येक वस्तु उसके लिए सुखदायक होगी; और यदि इन्द्रियाँ अस्वस्थ हैं तो संसार का कोई भी भोग्य पदार्थ मानव को सुख प्रदान करने में असमर्थ रहेगा ।

सुख की प्राप्ति में भोग्य पदार्थों का स्थान प्रथम नहीं अपितु द्वितीय है यह समझ लेने पर ही मानव सुख के दर्शन कर सकेगा अन्यथा उसकी भ्रान्ति उसकी वह दशा बना देगी कि जैसे नदी के किनारे पर कोई प्यासा मर जाय । यदि ध्यान से देखा जाय तो अधिकांश भौतिकवादी पूँजीपतियों की यही अवस्था रहती है कि वह सब कुछ रहते हुए भी खाने, पीने, सोने, रहने चलने आदि किसी का भी सुख प्राप्त नहीं कर सकते । उनकी सम्पत्ति का आनन्द तो अन्य ही प्राप्त करते हैं ।

कोरे भौतिकवाद से सुख की प्राप्ति सर्वथा असम्भव है—

इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति का नाम सुख है; और इन्द्रियों का स्वभाव ऐसा है कि उनमें से प्रत्येक की इच्छायें असीमित हैं । जगत तथा भोग सामग्रियां और भोग सामग्रियों का उत्पादन करने की मानव की शक्ति सीमित है तो भोग सामग्रियों में इन्द्रियों की असीमित मांगों की

पूर्ति क्या कभी सम्भव हो सकेगी ? सचाई यह है कि संसार की समस्त सम्पत्ति व भोग-सामग्री प्राप्त हो जाने पर भी व्यक्ति की इन्द्रियां सन्तुष्ट न हो सकेंगी । अतः जिन भौतिकवादियों व भोगवादियों का नारा (खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ) है, वह क्या कभी अपने जीवन में अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं ? उनके नारे का क्या परिणाम होता है यह देखना हो तो उन्हें यूरोप व अमेरिका में जाकर देखना चाहिए जहां अधिकांश व्यक्तियों के पास सभी प्रकार की सुख-सुविधायें प्राप्त हैं; परन्तु वहीं सबसे अधिक पागल, हृदय-रोगी, आदि होते हैं । वहां मानसिक शांति किसी बिरले ही धनी व्यक्ति को प्राप्त होगी ?

भौतिकवादियों को अपने नारे के खोखलेपन का ज्ञान यूरोप-अमरीका के भौतिकवादियों को देखकर हो जाना चाहिए था; परन्तु खेद एवं आश्चर्य इस बात का है कि जब भौतिकवाद व भोगवाद से निराश होकर यूरोप-अमरीका के निवासी सुख व शांति की खोज में भारत की शरण में आ रहे हैं, तब भारत के नवयुवक-नवयुवतियां एवं पुरुष-अमरीका की और पागलों की भाँति दौड़ रहे हैं ।

महान भ्रान्ति

भौतिकवादियों की धारणा में कुछ अंश तक सत्यता है । भोग-सामग्रियों की प्राप्ति पर भले ही स्थायी पूर्ण सुख न मिले, परन्तु सुख मिलेगा अवश्य, परन्तु कुछ भ्रमित पौराणिक अध्यात्मवादियों की धारणा का सुख के साथ इस पृथ्वी पर कोई सम्बन्ध नहीं है । उनका कहना है कि संसार मिथ्या है, संसार दुःख का सागर है, सांसारिक सुख मनुष्य को दुःखों के गढ़े में डाल देते हैं, सुख यदि कहीं है तो मोक्ष में है । इसलिए संसार से विरक्त होने में ही कल्याण है ।

उक्त अध्यात्मवादियों की मान्यता में दार्शनिक दृष्टि से भले ही कुछ सचाई हो, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कोरा दिमागी व्यायाम है, और वर्तमान जीवन को नरकमय अर्थात् दुःखदायी बनाने वाली है ।

यदि उनके उपदेशानुसार संसार के सभी मनुष्य संसार से वैराग्य धारण कर लें और अनाज, कपड़ा भोजन आदि बनाना बन्द कर दें तो उन्हें एक ही दिन में अपनी मान्यता का खोखलापन प्रकट हो जाय, और फिर वे भूलकर भी ऐसा नारा न लगावें ।

दूसरे के द्वारा उत्पन्न भौतिक भोग-सामग्रियों पर मौज उड़ाते हुए वैराग्यवाद के नारे लगाना जहाँ अपने को धोखा देना है वहाँ भोजन-कपड़ा आदि द्वारा उनका पालन-पोषण करने वाले दानी अथवा श्रद्धालु भक्तों का भी अपमान है ।

प्रकृति, के बिना जिसे मायावादी माया का नाम देकर इसे तिरस्कृत करते हैं ; और इसे मानव को फंसाने वाला मधुर जाल कहते हैं, जीवात्मा की क्या स्थिति रह जाती है ? प्रकृति ही वह सम्बल या रथ है जिसका सहारा लेकर वह मोक्ष की प्राप्ति करने में समर्थ होता है । प्रकृति के बिना जीवात्मा की स्थिति एक अपंग व्यक्ति या पंखविहीन पक्षी की भांति होती है जो चाहता हुआ भी कुछ नहीं कर पाता ।

जो प्राकृतिक अथवा भौतिक जगत् जीवात्मा को मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है उसे मिथ्या, दुःखदायक या भ्रमित कहना वास्तव में अपनी बुद्धि का अपमान करना है ।

मोक्ष में ही जीवात्मा को स्थायी सुख ही नहीं अपितु परमानन्द मिलेगा और वर्तमान जगत् में उसे अस्थायी सुख व शान्ति ही प्राप्त हो सकती है यह बात ध्रुव सत्य है; परन्तु जीवात्मा को मोक्ष दान में प्राप्त नहीं होगा या आत्म-हत्या कर इस जगत् को छोड़ने मात्र से मिल जायगा सो बात नहीं है अपितु जीवात्मा के कर्मानुसार ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी अन्यथा उसे इन जगत् में बार-बार आना ही पड़ेगा । उसके अपने चाहने या न चाहने मात्र से इस जगत् से पीछा छुट जाय सो बात नहीं है ।

मोक्ष-प्राप्ति के निमित्त कर्म करने के लिए जीवात्मा को कर्म करने का माध्यम शरीर व भौतिक साधनों की आवश्यकता होगी । इसलिए

अध्यात्मवादियों के लिए भी भौतिक जगत् व भौतिक साधन उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि भौतिकवादियों के लिए। हां, यह बात सत्य है कि भौतिक साधनों के प्रति अध्यात्मवादियों व भौतिकवादियों के दृष्टि-कोण में अन्तर अवश्य होगा, और वह होना भी चाहिए। परन्तु भौतिक साधनों के बिना दोनों में से किसी का भी लक्ष्य पूर्ण न हो सकेगा।

कोरा अध्यात्मवाद या वैराग्यवाद राष्ट्र को कहां ले जाता है इसका सबसे बड़ा उदाहरण भारत स्वयं है। जब तक भारत वेदानुकूल चलकर भौतिकवाद व अध्यात्मवाद को समान रूप से महत्व देता रहा तो यह संसार में चक्रवर्ती राज्य करने में समर्थ हो सका, और उसने वैराग्य-वाद की शरण ली तभी से इसका पतन प्रारम्भ हुआ, और शताब्दियों तक मुट्ठी भर विदेशियों का दास बनकर अपमानित होता रहा।

गरीबी हटाओ—

भारत में गरीबी हटाओ का नया नारा लगा है। इस नारे के साथ किसी भी भले व्यक्ति का विरोध नहीं हो सकता। परन्तु इस नारे के पीछे जो दर्शन काम कर रहा है उसके साथ भारी मतभेद है। यदि इस नारे की आड़ में वह दर्शन हमारे गले में अटक गया तो फिर सुख-शान्ति के साथ मानवीयता भी संकट में पड़ जायगी अर्थात् मानव के विचारों व कर्म की स्वतन्त्रता भी छिन जायगी।

गरीबी हटाओ नारा साम्यवाद की देन है। साम्यवाद का विश्वास है कि संसार में वर्ग-संघर्ष का मूल मानव समाज में आर्थिक विषमता है, और आर्थिक विषमता का मूल पूंजीपतियों द्वारा मजदूरों का आर्थिक शोषण है। साम्यवाद के अनुसार गरीबी ही समस्त बुराइयों की जड़ है। गरीबी ही व्यक्ति को चोर, डाकू, झूठा आदि बनाती है। इसलिए गरीबी को हटाये बिना संसार को सुखी बनाना सर्वथा असम्भव है।

क्या गरीबी ही सब पापों का मूल है ?

यदि गरीबी ही समस्त पापों की जड़ है, और यही व्यक्ति को चोर-

डाकू बनाती है तो फिर अमीर लोग, जिनके घरों में निर्धनता नाम तक को नहीं, जहाँ लोग भूख से नहीं अपितु बदहजमी से परेशान रहते हैं, तो चोर-चाकू नहीं होने चाहियें। फिर साम्यवादी लोग “पूँजीपतियों का नाश” का नारा क्यों लगाते हैं ? उन्हें वह चोर व डाकू के नाम से क्यों सम्बोधित करते हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि गरीबी के अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी हैं जो व्यक्ति को चोर व डाकू बनने पर विवश करती हैं।

मानसिक गरीबी सबसे बड़ा अभिशाप है—

भौतिक निर्धनता जहाँ बहुत सी बुराइयों अथवा कष्टों का कारण है वहाँ मानसिक निर्धनता जीती जागती चिताग्नि है जिसकी पूर्ति करना मनुष्य की सामर्थ्य से परे है। धन सम्पत्ति के अभाव से उत्पन्न निर्धनता व्यक्तिगत या राष्ट्रीय प्रयत्नों द्वारा मिटाई जा सकती है, परन्तु धन-सम्पत्ति का अपार भण्डार रहते हुए भी जब एक व्यक्ति अपने को निर्धन अनुभव कर रहा है, और अधिक धन-सम्पत्ति की चिन्ता में उसकी नींद, भूख हराम हो गई है, इसका क्या इलाज है साम्यवादियों के पास ?

मानसिक निर्धनता और उसका कारण क्या है ?

मानसिक निर्धनता, एक मनोवस्था का, जिसमें असंतोष की मात्रा अधिक होती है, परिणाम होती है। मन में असंतोष जाग्रत हो जाने पर फिर मन की अवस्था अग्नि के समान होती है जिसमें कितनी ही लकड़ियाँ डालो, परन्तु उसकी भूख निरन्तर बढ़ती ही रहती है। ठीक इसी प्रकार जब वैश्य के मन में असंतोष उत्पन्न हो जाय तो फिर जितनी धन सम्पत्ति अधिक आती है उतनी ही यह और बढ़ती है। इस प्रकार यह कमी संतुष्ट न होने वाली मानसिक ज्वाला है।

मानवीय कष्टों के अन्य कारण—

भारतीय दार्शनिक ने मानवीय कष्टों के कारणों की खोज करते

हुए निम्न कारणों का वर्णन किया है—

- (१) आध्यात्मिक ।
- (२) आधि भौतिक ।
- (३) आधि दैविक ।

शरीर सम्बन्धी पीड़ा आध्यात्मिक—दूसरे प्राणियों से दुखित होना आधि भौतिक, अति वृष्टि, अति ताप, अति शीत, मन इन्द्रियों की चंचलता से उत्पन्न दुःख आधि दैविक कहलाते हैं । आधि दैविक कष्टों का कारण मानसिक आवेग भी है । इन्हीं को मानव का सबसे बड़ा शत्रु माना गया है ।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, असंतोष आदि आन्तरिक शत्रु होते हैं जिनके वशीभूत हो जाने पर मनुष्य की पागलों जैसी अवस्था हो जाती है । उस अवस्था में वह अपना-पराया सबका हित अहित कर बैठता है । आवेग व्यक्ति की विवेक शक्ति का ह्रास कर देता है इसीलिये उसे फिर अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य आदि का कोई ज्ञान नहीं रहता ।

शास्त्रकारों का कहना है कि संसार पर विजय प्राप्त करना मनुष्य के लिये बड़ा ही दुर्लभ है । जो मनुष्य अपने आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेता है फिर उसे संसार पर विजय प्राप्त करने में देर नहीं लगती, और भौतिक कष्टों के बादल क्षण भर में छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ।

वास्तव में यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो भौतिक निर्धनता व कष्ट इन आन्तरिक शत्रुओं के बाह्य कुपरिणाम हैं । उदाहरणार्थ निर्धनता को ही ले लीजिये । इसका वर्तमान कारण यह है कि संसार के मुट्ठी भर पूंजीपतियों ने उत्पादन के साधनों पर अधिकार कर मजदूरों की मजदूरी का उचित मूल्य नहीं दिया अर्थात् यह मजदूरों के श्रम का शोषण है । परन्तु यह शोषण की भावना पूंजीपतियों में कहाँ से और क्यों उत्पन्न हुई ? इस प्रश्न का यही उत्तर है कि लोभ व असंतोष से प्रभावित होकर वे ऐसा करते हैं ।

जड़ की बजाय पत्तों पर पानी छिड़का जा रहा है—

सूखते वृक्ष को हरा बनाने के लिये जिस प्रकार कोई उसकी जड़ पर पानी न डालकर उसके पत्तों पर पानी छिड़के उसी प्रकार की मूर्खता आज भौतिकवादी लोग कर रहे हैं। वह मानव समाज को सुखी बनाने के लिये दुःख के मूल कारणों को दूर न करके दुःखों को बाह्य उपायों से दूर करने के स्वप्न ले रहे हैं। बाह्य उपायों में उन्होंने डण्डे का सहारा लिया है अर्थात् सबकी जमीन, कारखाना, फैक्ट्री छीन कर उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय; और फिर सबको रोटी, कपड़े और मकान की व्यवस्था कर दी जाय।

उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करने से सबको रोटी, कपड़ा, मकान आदि मिलकर लोगों की भौतिक निर्धनता कुछ सीमा तक दूर अवश्य हो जायगी; परन्तु उन्हें सुखी कदापि नहीं बनाया जा सकेगा।

क्या रोटी, कपड़ा, मकान ही जीवन का लक्ष्य है ?

लोगों की यह भ्रान्ति है कि मानव जीवन का लक्ष्य रोटी, कपड़ा, मकान आदि भौतिक पदार्थ है। उनकी प्राप्ति पर वह संतुष्ट हो जायगा। यदि यह बात सत्य होती तो फिर वर्तमान कारागारों में उक्त सभी सुविधाओं के रहते लोग सड़कों पर भूखे, नंगे पड़े रहकर मृत्यु के मुख में जाना क्यों पसन्द करते हैं ? उन्हें जेल में जाकर उक्त सुविधाओं को प्राप्त करने से कौन रोक सकता है ? इसका स्पष्ट अर्थ है कि रोटी, कपड़ा, मकान आदि भौतिक पदार्थों से भी अधिक मूल्यवान् कोई वस्तु है जिन्हें छोड़कर व्यक्ति उन्हें प्राप्त करना पसन्द नहीं करता।

रोटी, कपड़ा और मकान से भी अधिक मूल्यवान् आकर्षक वस्तु है मानवीय स्वतन्त्रता अर्थात् विचारने, बोलने, लिखने, पढ़ने, कर्म की स्वतन्त्रता। इस स्वतन्त्रता के रहते ही मानव मानव है अन्यथा फिर पशु-पक्षी और उसमें कोई अन्तर नहीं रह जाता है।

क्या भ्रष्टाचार डण्डे से से दूर हो सकेगा ?

कुछ लोगों का विचार है कि मूल समस्या गरीबी हटाने की है। चोरी, जाली, भ्रष्टाचार तो डण्डे के द्वारा जिस दिन सरकार दूर करना चाहेगी कर देगी, यहां पहला प्रश्न यह उठता है कि दुराचार को मिटाने का भले ही कोई मार्ग अपनाओ; परन्तु उसके लिये आवाज तो उठाओ। एक शत्रु के विरुद्ध आवाज उठाना और दूसरे भयानक शत्रु के विरुद्ध मौन धारण करने से स्वभावतः साधारण जनता भ्रमित होती है।

जहां तक डण्डे के द्वारा दुराचार के समाप्त करने का प्रश्न है सो डण्डे के द्वारा दुराचार को दबाया जा सकता है इसे लोगों के दिल-दिमागों से कदापि मिटाया नहीं जा सकता है। डण्डे की पापों तक पहुँच और प्रभाव दोनों ही सीमित हैं। इसलिये सीमित मात्रा में इसके द्वारा इनका हटना सम्भव है।

एकांगी नारे का समाज पर कुप्रभाव—

जब से भौतिकवाद, भोगवाद व नास्तिकवाद का तूफान भारत में आया है तब से भारत के सामाजिक ढाँचे की जड़ें हिल गई हैं। समाज के आपसी सम्बन्ध अब रक्त और हृदय पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित होते जा रहे हैं। मां-बाप, भाई-बहन, स्त्री-पुरुष के मध्य अर्थ ही प्रेम का कारण बन गया है। संयुक्त परिवार स्वप्न की वस्तु बने रह गये हैं। बूढ़े माता-पिताओं को उनके बच्चे मृत्यु की गोद में छोड़कर भागना शुरू हो गए हैं। सारांश भारत की मूल्यवान् सांस्कृतिक इमारत धीरे-धीरे ढहती चली जा रही है।

एकांगी नारे का दूसरा कुप्रभाव यह हुआ कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में झूठ, धोखा, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार व्याप्त होता चला जा रहा है। फिर भी नारा लगाने वाले नेतागण लोगों को सुख-शान्ति प्रदान करने का लगातार आश्वासन दे रहे हैं; और जनता भी

उनके वाक्यों को भगवान के वाक्य समझ पागल हुए उनके पीछे भाग रही है ।

सही मार्ग क्या है ?

सही मार्ग एक ही है, दो नहीं । वह मार्ग है, मानव की सत्ता को पूर्ण रूप में स्वीकार करके अग्रसर होना । मानव की उपेक्षा करके मानव के हितार्थ योजना बनाना पागलपन ही है । दुर्भाग्यवश यही पागलपन हो रहा है; और पागलपन हो रहा है उन लोगों से जो अपने को बुद्धिमान समझते हैं ।

वर्तमान समय संसार में मानव के शरीर को ही मानव समझ कर इसके कल्याणार्थ योजनायें बनाई जा रही हैं । यही कारण है ये समस्त योजनायें रोटी, कपड़ा, मकान की परिधि में ही सदैव चक्कर काटती रहती हैं । जब उनके द्वारा समाज में सुख, शान्ति की स्थापना न होकर विद्रोह, निराशा, भय खड़े होते हैं तो मानव फिर संसार के विनाश की योजना बना बैठता है ।

मानव केवल दो आँख-टांग वाले शरीर का नाम न होकर शरीर और आत्मा के योग का नाम है । इस तथ्य को सभी जानते हैं; परन्तु योजना-निर्माताओं की आँखों से यह साधारण सी सचाई न जाने कैसे ओझल हो जाती है । यदि वह इस तथ्य को स्वीकार कर मनुष्य के हितार्थ योजनाएं बनाएगा तो वे पूर्ण होंगी; और मानव-समाज के लिए निश्चित रूप से हितकर होंगी । उनसे व्यक्ति का अहित तो कभी भूल कर भी सम्भव नहीं है ।

राष्ट्र-निर्माताओं को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि शरीर और आत्मा में भी आत्मा ही प्रमुख है । शरीर तो आत्मा के कर्म-क्षेत्र का साधन मात्र है । शरीर आत्मा के लिए है आत्मा शरीर के लिए नहीं है । आत्मा के हितार्थ शरीर छोड़ा जा सकता है शरीर के लिए आत्मा को कदापि नहीं छोड़ा जा सकता है । परन्तु दुर्भाग्यवश हो यही

रहा है कि राष्ट्र के कर्णधारों ने शरीर के लिए आत्मा को सर्वथा भुला दिया है। यही कारण है कि आज तक सफलता के स्थान पर असफलता मिली तथा वे विनाश के गर्त में पड़ गए हैं। इसलिए जब तक वे अपनी इस महान् भूल का सुधार नहीं करेंगे, तब तक मानव समाज का कल्याण सम्भव नहीं है।

शरीरवादियों से एक प्रश्न—

शरीरवादियों से यह प्रश्न किया जाना स्वाभाविक है कि क्या संसार को केवल रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि की ही आवश्यकता है या अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दया, क्षमा, परोपकार, परसेवा, भ्रातृत्व आदि गुणों की भी समाज में आवश्यकता है? वह इन गुणों की आवश्यकता ही नहीं अपितु परमावश्यकता से इन्कार नहीं कर सकेंगे। फिर दूसरा प्रश्न उनसे यह पूछा जा सकता है कि यदि इन गुणों की समाज को आवश्यकता है तो इनकी उत्पत्ति वह समाज में किस आधार पर, किस प्रकार और किस फैक्ट्री में करेंगे?

प्रेम, दया, क्षमा, परसेवा आदि गुण शरीर के नहीं अपितु आत्मा के हैं। शारीरिक बुद्धि को स्कूल-कालेज में विकसित कर उसे बड़े से बड़ा इंजीनियर, डाक्टर, वैज्ञानिक आदि बनाया जा सकता है, परन्तु उसे परसेवी, अहिंसक आदि गुणधारी सन्त व महात्मा नहीं बनाया जा सकता है। ऐसा तभी सम्भव हो सकता कि जब आत्मा की सत्ता को स्वीकार कर उसको विकसित किया जाय, क्योंकि क्षमा, दया, प्रेम आदि गुण बुद्धि के नहीं अपितु आत्मा के हैं।

इसलिए मानव-समाज के कल्याणार्थ आवश्यक है कि मानव को केवल शरीर न मानकर शरीर और आत्मा का योग मानकर अपनी योजनाओं का निर्माण करना चाहिए ताकि यह पूर्ण होकर मानव समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकें। परन्तु दुर्भाग्यवश वैचारिक क्षेत्र में साम्यवाद आज सबका गुरु बना है; और साम्यवाद ने आत्मा की सत्ता

को स्वीकार न कर उसे मीटर का एक कैमीकल एक्शन मात्र माना है । भारत जैसा देश जो शताब्दियों तक विदेशियों का दास रहने के कारण आत्म-विश्वास, स्वाभिमान खो बैठा है; और मानसिक दासता के दोष से अभी तक मुक्त नहीं हो पाया, भला कैसे साम्यवाद के नेतृत्व से इन्कार कर सकता है ?

वेद क्या कहता है ?

मानव-समाज के कल्याणार्थ भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के प्रश्न को लेकर वेद ने बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया है । अर्थात्—

अन्धतमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्वा^१रताः ॥

अन्नदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयं^२सह ।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥

(यजुर्वेद)

अर्थात् जो व्यक्ति कारण शरीर (आत्मा) की अन्य शरीरों की उपेक्षा करके पूजा करते हैं, वे गहरे अन्धकार (कण्टो) में प्रवेश करते हैं । और जो कार्य प्रकृति अर्थात् स्थूल शरीर में (आत्मा की उपेक्षा करके) रमते वे उनसे भी अधिक अन्धकार (कण्ट) को प्राप्त करते हैं । कार्य प्रकृति (शरीर) की सेवा का और ही फल कहते हैं (होता है) और कारण प्रकृति (आत्मा) की सेवा का और ही फल होता है । इस प्रकार धीर पुरुषों के (वचन) हम सुनते हैं जो हमारे लिए उन वचनों का उपदेश कर गए हैं । जो व्यक्ति कार्य प्रकृति (शरीर) और कारण प्रकृति (आत्मा) दोनों को साथ-साथ लेकर चलता है वे कारण शरीर से मृत्यु को पार कर कार्य शरीर के द्वारा अमरता को प्राप्त हो जाता है ।

हमारे यहाँ भी शरीरवादियों अर्थात् भौतिकवादियों का उदय हुआ था । खाओ, पीओ, मौज उड़ाओ, उनका भी नारा था । वैदिक

धर्मियों ने उन्हें असुरों की संज्ञा देकर उन्हें समाज की सुख-शान्ति का शत्रु समझ उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया; और तब तक दम नहीं लिया जब तक असुरों को परास्त कर अध्यात्मवाद की स्थापना नहीं कर दी।

वेद अथवा वैदिक-धर्म की मान्यता है कि कोरा भौतिकवाद रावण राज्य उत्पन्न कर सकता है; और वह किसी भी काल में अनाचार व अत्याचार से मुक्त नहीं हो सकता है। राम-राज्य भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय से ही स्थापित किया जा सकता है।

कोरे भौतिकवाद की भांति कोरा अध्यात्मवाद भी घातक है। इससे वैराग्यवाद व व्यक्तिवाद का जन्म होकर राष्ट्र की एकता प्रगति व सुरक्षा सभी के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है। भारत स्वयं इसका भुक्त भोगी रह चुका है। इसकी दासता के मूल में यही कोरा अध्यात्मवाद या वैराग्यवाद था।

एक ही सही मार्ग—

जब मानव भौतिक शरीर तथा आत्मा का योग है तो फिर भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय ही इसके लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है अन्य मार्ग नहीं। वेद और भारतीय संस्कृति इसी मान्यता की पक्ष-पोषक है। भारत इस आदर्श को संसार के सम्मुख रखकर सारे मानव समाज का मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है।

भारत को आत्महीनता की भावना का परित्याग कर आत्मविश्वास की भावना धारण करनी चाहिए। संसार विज्ञान, राजनीति आदि में भले ही आगे हो; परन्तु भारत आध्यात्मिक क्षेत्र में आज भी संसार का गुरु है; और मानव-समाज की सुख-शान्ति की कुंजी आज उसी के पास है।

भारत के पास वेद-ज्ञान, दर्शन और संस्कृति की वह अपार व अमूल्य निधि है कि जिसके बल पर वह संसार में अपना सिर ऊँचा करके चल सकता है और संसार को विनाश के मुख से निकाल कर उसे स्वर्ग के मार्ग पर ला सकता है। परन्तु यह होगा तभी जब वह भौतिकवाद के

साथ आध्यात्मवाद की ज्योति को भी समान रूप से महत्व दे; और भारत की शिक्षा संस्थाओं में भारतीय दर्शन व संस्कृति को मान्यता दे अन्यथा कोरी स्वीकृति या नारेबाजी से कुछ बनना-बनाना है नहीं।

सौभाग्य से आज पाश्चात्य भौतिकवादी संसार ने अपनी भूल को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया है; और वह सुख-शान्ति की खोज में भारत की शरण ले रहा है। योग एवं यौगिक क्रियाओं की जितनी आज विदेशों में मान्यता है उतनी भारत में नहीं। ऐसा लगता है कुछ ही समय के अन्दर यूरोप-अमरीका के लोग भारतीय दर्शन व योग को लेकर भारतीयों को पाठ सिखाने लगेंगे। उस समय हमें अपनी भूल का अनुभव होगा; परन्तु उससे विशेष लाभ न होकर हमारी स्थिति पाश्चात्य जगत के पिछलग्गुओं जैसी बनकर रह जायगी; और अपने ही घर में हम पुनः विदेशियों के मानसिक दास बन जायेंगे। इसलिए समय पर ही चेतना हमारे लिए हितकर है।

महर्षि दयानन्द की कल्पना—

महर्षि दयानन्द राजनीति को धर्म का अंग मानते थे; और वह भारत को केवल विदेशी दासता से मुक्त देखना नहीं चाहते थे; अपितु भारत को प्राचीन गौरवपूर्ण भारत के रूप में देखने के लिए लालायित थे। महाभारत काल के पश्चात् वही ऐसे महापुरुष भारत में अवतरित हुए जिन्होंने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय का घोष लगाया; और इनकी पूर्ति के लिए साधन के रूप में उन्होंने सन् १८७५ में आर्य समाज की स्थापना एक प्रबल साधन के रूप में की।

भारत ही नहीं अपितु समूचे संसार में महर्षि दयानन्द भौतिकवाद व अध्यात्मवाद का समन्वय देखना चाहते थे। उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के दस नियमों में अपनी इस भावना को बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उपस्थित किया है।

प्रभु हमें शक्ति व साहस प्रदान करे कि हम संसार के उपकारार्थ भौतिकवाद व अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करते हुए सुख-शान्ति के अमर पथ पर चल सकें।

वैदिक धर्म और आर्य समाज का स्वरूप

एवं कार्य

वैदिक धर्म क्या है ?

आर्य समाज वह आन्दोलन है जिसका सूत्रपात महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म के पुनरुद्धार और प्रचार के लिए किया था। वैदिक धर्म ईश्वरीय ज्ञान वेद पर आश्रित आध्यात्मिक एवं लौकिक ज्ञान है और उन नित्य एवं अकाट्य नियमों का बोधक है जिनका मानव और प्रकृति पर प्रभुत्व होता है। एक दृष्टिकोण के अनुसार ये नियम साइंस और दूसरे के अनुसार तत्वज्ञान कहलाते हैं।

अन्य धर्मों में प्रतिपादित मानव-समाज की असहाय्यवस्था, निर्बलता और मुक्ति के लिए किसी बाहरी शक्ति वा किसी एक व्यक्ति पर पूर्णतः निर्भरता के साथ वैदिक धर्म का कोई सरोकार नहीं है। वैदिक धर्म में मानव के व्यक्तित्व, उसके गौरव और उसकी स्वतंत्रता को मान्यता प्रदान की गई है। आर्य परम्पराओं पर चलने वाले भारतीयों का विश्वास है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान, ज्ञानवान, निराकार सर्वज्ञ और सर्वव्यापक सत्ता है।

वैदिक धर्म का मुख्य लक्षण

वैदिक धर्म का मुख्य लक्षण उसकी वैज्ञानिकता है। प्राचीन भारत में धर्म और साइंस साथ साथ चलते थे। वैदिक धर्म कभी भी वैज्ञानिक उन्नति से भयभीत नहीं हुआ और न यह कभी उस आतंकवाद से लांछित ही हुआ जो ईसाई मत के धार्मिक न्यायालयों के नाम से संबोधित होने

वाले खूनी न्यायालयों ने व्याप्त किया था। इसने गैलीलियो, कापरनिकस या ब्रूनो के खून से कभी भी अपने हाथ नहीं रंगे। अन्य राष्ट्रों के धार्मिक सिद्धान्त साइंस विरोधी प्रमाणित किए जा चुके हैं। भारत की ब्रह्म विद्या का भवन साइंस और दर्शन शास्त्र पर खड़ा है। साइंस की नितान्त अवहेलना पूर्वक जिन धर्मों का विकास हुआ उन्होंने उन जैसे अन्ध-विश्वासों, अनाचारों और वर्बरता को जन्म दिया जिनसे चर्च के काले युगों में यूरोप ग्रस्त रह चुका था। धर्म की नितान्त अवहेलना पूर्वक साइंस के विकास से आज जैसी नास्तिकता, इन्द्रिय लोलुपता, और अश्लीलता व्याप्त होती है। साइंस और धर्म दोनों के समन्वय से ही एक दूसरे का सुधार और विकास होता है। वैदिक धर्म, साइंस और धर्म, बुद्धि और आत्मा के मध्य पुल का काम करता है। वैदिक धर्म के सिवा अन्य कोई भी धर्म आधुनिक विज्ञान की भावना के पूर्णतः अनुरूप होने का दावा नहीं कर सकता।

वैदिक धर्म विश्व धर्म

वैदिक धर्म आज के अन्य धर्मों की भांति एक मात्र भारतीयों तक सीमित कभी नहीं रहा और न वह आज ही सीमित है। यह विश्व धर्म है क्योंकि यह शब्द के संकुचित भाव में रिलीजन (धर्म) नहीं है। न यह कोई रूढ़ि ही है और न यह किसी एक व्यक्ति के द्वारा शासित है चाहे वह कितना ही बड़ा एवं पवित्र क्यों न हो ?

भारत में वैदिक दर्शन के पग २ पर दर्शन होते हैं। वहां लोगों के जीवन-दर्शन में वेदों का तत्त्वज्ञान पूर्णतः समाविष्ट एवं विकसित हुआ प्रतिलक्षित होता है।

श्री डब्ल्यू हन्टर ने ठीक ही कहा है :

“वेदों में, आत्मा को मन और प्रकृति से पृथक् रखकर, विचार, कर्म बुराई के उद्भव, जीवन के परमध्येय, स्वतन्त्र कर्तृत्व की अनिवार्यता परमात्मा के साथ प्राणी के संबंध और परमात्मा की श्रेष्ठता की

विद्यमानता में बुराई की विद्यमानता, सुख का असमान विभाजन और जीवन के कष्टों की समस्याओं पर सम्यक्तया विचार किया गया है और इन तथा अन्य कठिनाईयों के जिनसे यूनान और रोम के निवासी मध्य युगीन विद्वान और आज के तत्त्ववेत्ता परेशान रह चुके हैं और हैं, ऐसे समाधान प्रस्तुत किए गए हैं जिन तक बुद्धि की अधिक से अधिक पहुँच संभव हो सकती है।”

आर्य समाज का स्वरूप और ध्येय

आर्य समाज की संस्थापना द्वारा महर्षि दयानन्द का ध्येय किसी नए सम्प्रदाय को जन्म देना कदापि न था। महर्षि का अपना कथन है:—

“मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसका मानना, मनवाना और जो असत्य है उसका छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यवर्त्त में प्रचारित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो आर्यवर्त्त व अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन है उनका स्वीकार और जो धर्म युक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता और न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से वहिः है।”

स्वामी जी वैदिक धर्म को उसके प्राचीन विशुद्ध स्वरूप में पुनरुज्जीवित और विश्व भर में उसका प्रचार करना चाहते थे।

आर्य समाज का सबसे महत्वपूर्ण एवं सुविख्यात स्वरूप बताना अभीष्ट हो तो कहना होगा कि आर्य समाज उस धर्म का प्रचार करता है जो यद्यपि भावनाओं, मान्यताओं और विषय की दृष्टि से पुराना है तथापि युग की भावना के अनुरूप है। यह धर्म आडम्बर शून्य, एकेश्वरवाद का पृष्ठ पोषक है। अन्धविश्वासों से परिपूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह रहस्यवाद और चमत्कारों में आस्था रखने के सर्वथा विरुद्ध है। यह विश्वबन्धुत्व की शिक्षा देता है और मानव को अपने शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक उत्थान के

लिए अधिक से अधिक जितना संभव हो सकता है अवसर प्रदान करता है ।

वैदिक धर्म, बुद्धि-प्रधान और वर्तमान युग के ईश्वर-विरोधी भोग-वाद के तर्कों का वेदों की आस्तिक विचारधारा के माध्यम से सफलता पूर्वक सामना करता है और अपने अनुयायियों में सदाचार की भावना कूट-कूट कर भरता और सबसे बढ़कर १९ वीं और २० वीं शती के व्यस्त जीवन तथा अतीत के शान्त, धार्मिक, एवं कर्मकांड के जीवन के मध्य समन्वय स्थापित करने का कार्य करता है । निस्संदेह आज भारत में और भारत से बाहर कुछ लोगों में राजनीतिक नास्तिकवाद का बोल-वाला है जिसका अर्थ है राजनीति तथा राजनीतिक आन्दोलनों के प्रति रुचि तथा व्यस्तता से उत्पन्न समस्त धर्मों के प्रति लोगों की अनास्था । परन्तु आर्य समाज इस स्थिति को अच्छा नहीं समझता । साथ ही जन-समूह की स्वाभाविक प्रवृत्ति नास्तिकता विरोधी है । आर्य समाज प्रत्येक वस्तु को सत्य और पवित्र जीवन की कसौटी पर आँकता और चाहता है कि प्रत्येक कार्य परमात्मा के नियम और उसकी व्यवस्था के अनुकूल हो ।

आर्य के लिए धर्म एक मात्र वैयक्तिक मामला नहीं है । हम सब एक विशाल समष्टि के अंग हैं जिसमें हमें अपने स्थान का निरूपण करना होता तथा धार्मिक कर्तव्यों के अनुष्ठान में उसे सामने रखना होता है । आर्य समाज के मौलिक नियमों के अनुसार धर्म वह चीज है जो व्यक्ति और समष्टि में सामंजस्य उत्पन्न करता है । हम किसी बाहरी शक्ति के द्वारा मनमाने ढंग से यों ही एक साथ नहीं रख दिए गये हैं । हम स्वाभाविक और अविच्छिन्न सम्बन्धों में बंधे हुए हैं । दूसरों के योग क्षेम में हाथ बढ़ाये बिना हमारी अपनी उन्नति की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

आर्य समाज आध्यात्मिक विशेषताओं, शान्तिवाद, शाकाहार और विश्वगवर्नमेंट पर आश्रित समाज-व्यवस्था का प्रतिपादन करता है ।

आर्य समाज की सेवाएं

आर्य समाज की मानव-समाज विशेषतः हिन्दू जाति के प्रति की गई सेवायें सर्वविदित हैं। इस भाषण में उन पर विस्तार से प्रकाश डाले जाने की आवश्यकता नहीं है। आर्यसमाज ने गौरवपूर्ण अतीत एवं उसकी मूल्यवान पैतृक सम्पदा से परिचित करके, स्त्री पुरुषों सभी के लिए वेदों के द्वार खोलकर जो अनेक व्यक्तियों के लिए बन्द थे, सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों का सूत्र-पात करके हिन्दू समाज को सभ्य व्यक्तियों के रहने योग्य बना दिया है।

प्राचीन गुरुकुलों के आदर्श पर देशीय शिक्षा-प्रणाली का, वयस्क अन्तर्जातीय एवं विधवा विवाहों का प्रचलन, बाल अनमेल एवं वृद्ध विवाहों का निषेध, अज्ञान एवं अंधविश्वासों के प्रमावाधीन धर्म के नाम पर अधर्म एवं स्वार्थी लोगों के द्वारा धर्म के दोहन की प्रक्रिया पर कुठाराघात आदि आदि उसकी धार्मिक एवं समाज सुधार विषयक विविध प्रगतियों की एक छोटी सी तालिका कही जा सकती है।

आर्य समाज ने एक नई मानसिक दिशा प्रदान की है और मानसिक क्षितिज को चौड़ा किया है। आर्य समाज ने मानवीय विचारधारा में एक क्रान्ति उत्पन्न करके मानव को सुधार की परिभाषा में विचार करने के लिए बाध्य किया है। आर्य समाज ने ही धर्म को बुद्धि संगत आध्यात्मिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय प्राप्त किया है। इस प्रकार यह साम्प्रदायिक नहीं है।

आर्य समाज का संघठन

आर्य समाज का संघठन आश्चर्य जनक है जो भारत से बाहर समुद्र तटों तक फैला हुआ है। आर्य समाज के संगठन के अन्तर्गत उसके प्रबन्ध में समाज के प्रत्येक सदस्य का हाथ रहता है।

आधुनिक काल में आर्य समाज ही अकेला वह धार्मिक संगठन था जिसका संविधान प्रजातंत्रीय प्रणाली पर निर्मित हुआ था। यह प्रणाली

उत्कृष्ट और निकृष्टतम शासनप्रणाली है। यदि इसका संचालन निस्पृह और चरित्रवान व्यक्तियों के द्वारा हो तो यह वरदान बन जाती है और यदि यह स्वार्थी और चरित्रहीन व्यक्तियों के हाथों में पड़ जाय तो यह अभिशाप बन जाती है। जिन क्षेत्रों में आर्य समाज का वर्चस्व कायम है वहां इसने सार्वजनिक जीवन में चार चांद लगा दिए हैं। जहां इसकी जड़ें गहरी गई हुई हैं वहां जागृति व्याप्त है। परन्तु आर्य जनों को उन बुराईयों से सावधान रहना चाहिए जो प्रजातंत्र प्रणाली में घुस जाती है। उन्हें अपने व्यवहार से यह सिद्ध करते रहना चाहिए कि प्रजातन्त्र प्रणाली सर्वोत्तम शासन प्रणाली है।

आर्य समाज पर न गुरुडम का आधिपत्य है और न तानाशाही का जिनमें विचार और कर्म की स्वतन्त्रता जाती रहती और व्यक्तित्व का दमन हो जाता है। आर्य समाज बौद्ध धर्म-संघ के समान धर्म-संघ नहीं है जिसमें सिद्धान्त रूप में प्रजातन्त्र का समावेश तो किया गया था परन्तु उसका समस्त प्रबन्ध बौद्ध भिक्षुओं को सौंप दिया गया था। गुरुडम से आवृत संस्थाओं की अपेक्षा इस संघ का काम अच्छी गति से चला। परन्तु इसमें स्थायित्व का तत्व न था क्योंकि गृहस्थ जन इससे बाहर रखे गये थे और उन व्यक्तियों पर जिन्हें गृहस्थों में प्रचार करना था गृहस्थों का कोई नियंत्रण न रक्खा गया था फलतः भिक्षुओं के पथ-भ्रष्ट हो जाने से बौद्ध धर्म को भारी धक्का लगा जिससे वह संभल न सका।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दूर दक्षिणा से काम लेकर आर्य समाज के संगठन को प्रजासत्तात्मक रूप दिया और इसका दरवाजा प्रत्येक के लिए खुला रखकर आर्यसमाज के प्रबन्ध में दुनियादार लोगों का बड़ा हाथ रक्खा।

प्रजातन्त्र व्यवस्था के सम्यक् संचालन के लिए यह आवश्यक है कि मतदाता अपनी जिम्मेवारी को अनुभव करे और विशिष्ट ढंग से अपने मत का प्रयोग करें। ज्ञान और सदाचार सच्चे प्रजातंत्र की तराजू के पलड़े होते हैं। आर्यसमाज के मतदाताओं को यह बात हृदयंगम कर

लेनी चाहिए जिससे कि वे आर्य समाज के संगठन को श्रेष्ठ और स्थायी बनाए रखने में समर्थ हो सके। उन्हें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि जब सदस्य भ्रष्टाचारी, स्वार्थी एवं पद-लोलुप बन जाते हैं और आत्म-सम्बर्धन के लिए संगठन का दोहन करने लग जाते हैं तो संगठन छिन्न-भिन्न हो जाता है। मतदाताओं में अनुशासन की भावना होनी चाहिए, उन्हें बहुमत के समक्ष नतमस्तक होना चाहिए और यदि उनकी बात न मानी जाय तो संगठन को छोड़ने तथा उसे बदनाम करने से परहेज करना चाहिए। कोई भी मनुष्य कोई भी सम्मति रखने में स्वतन्त्र है परन्तु वह उसको प्रकट करने में स्वतंत्र नहीं होता। प्रजातंत्र की स्वस्थ प्रगति के लिए यह भी आवश्यक है।

आर्य समाज व राष्ट्रीय जागृति

भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में आर्य समाज का योगदान बेजोड़ रहा और इसने इस आन्दोलन को बहुत बड़ी प्रगति एवं प्रेरणा प्रदान की। मुझे विदित हुआ है कि स्वातन्त्र्य संग्राम में जेल जाने और बलिदान करने वालों में आर्य नर नारियों की संख्या सबसे अधिक थी। यह बात बड़े संतोष की है कि आर्य समाज स्वराज्य को सुराज्य में परिवर्तित करने में अपना मूल्यवान योग दे रहा है। भारत के संविधान में प्रायः उन सभी आदर्शों और कार्यक्रमों को स्थान दिया गया है जिनका आर्य समाज प्रचार करता और और जिन्हें आश्रय देता रहा है यथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी, शराब एवं गोहत्या बन्दी आदि। यह बात आर्य समाज के कार्यक्रम की विशिष्टता और उसकी विजय की द्योतक है, यदि यह कह दिया जाय तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

आर्य समाजने अस्पृश्यता और जन्म गत जाति-पाति के उन्मूलन शिक्षा प्रसार तथा महिलाओं की दुर्दशा के सुधार की दिशा में जो प्रयास किया है उसका संसार व्यापी आदर हुआ है। उनकी शुभकामनाएं और सद्भावनाएं न केवल आर्य समाज के ही अपितु भारत तथा भारत से बाहर

के वातावरण में भी प्रतिध्वनित हो रही है।

आर्यसमाज की प्रगतियों का संचालन वैदिक ऋषियों की शिक्षानुसार होता है जिन्हें उदार रूप में ग्रहण करने से वे राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं का भी समाधान प्रस्तुत करती है। राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने और उसे बनाए रखने के लिए धर्म का अध्ययन और प्रचार किया जाता है। धर्म की प्यास एक मात्र धार्मिक अनुष्ठानों से ही नहीं बुझती। वह निष्काम भाव से मानव समाज की सेवा करने से, निर्धनता, रोग, अनाचार, अत्याचार एवं विविध कष्टों और आपत्तियों से पीड़ित करोड़ों लोगों के कष्ट मोचन से ही बुझती है। आर्य समाज ने जनता के शैक्षणिक शारीरिक और नैतिक उत्थान के लिए जो संस्थाएं खोलीं वे इस बात की सूचक हैं कि आर्य समाज जाति, धर्म, रंग व लिंग भेद के बिना सब की सेवा करता है।

आर्य समाज का मिशन लोगों को आपस में मिलाना है। इसने हिन्दू समाज में मिशनरी भावना भरी है जिसकी उसमें कमी थी। बाहरी मतों के लोगों को वैदिक धर्म के दायरे में लाने के कार्य को आर्य समाज ने ही पुनर्जीवित किया है।

आर्य समाज की यह मान्यता है कि वैदिक धर्म के अनुयायियों के पास समस्त मानव जाति के उत्थान और कल्याण के लिए एक खास सन्देश है और इसका प्रसार करना उसका दायित्व है। इस भावना से प्रेरित होकर और अपने उच्च एवं श्रेष्ठ मिशन में आस्था रख कर ये लोग न केवल भारत में ही अपितु भारत से बाहर भी शानदार कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार आर्य समाज विश्व आन्दोलन बन गया है।

पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, मौरिशस, फिजी, गायना, ब्रह्म देश, थाइलैंड मलेशिया आदि आदि में आर्य समाज की जड़ें जम गई हैं और वह बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। वहां आर्य समाजों, प्रतिनिधि सभाओं स्कूलों, कालेजों (लड़के और लड़कियों दोनों के) अनाथ आश्रमों, विधवा आश्रमों वनिता आश्रमों इत्यादि का जाल बिछा हुआ है।

आर्य समाज लौकिकता का निषेध नहीं करता

आर्य समाज जीवन के सुखोपभोग का निषेध नहीं करता परन्तु भोगवाद की ऐसी आसक्ति से सावधान करता है जिससे मानव का नैतिक उत्थान कुंठित होता हो। आर्यसमाज के मन्तव्यानुसार वह व्यक्ति उन्नत समझा जाता है जो लौकिक, नैतिक और सामाजिक दृष्टि से उन्नत एवं विकसित हो। इस प्रकार आर्य समाज ने संसार के लोगों को इस विचार का बनाने में बड़ा योग दिया है कि प्रत्येक राजनैतिक प्रश्न सामाजिक और प्रत्येक सामाजिक प्रश्न अन्ततोगत्वा धार्मिक प्रश्न बन रहा है। आर्यसमाज ने संसार को बचाने में बड़ी भूमिका निभाई है और अब भी उसे बड़ी भूमिका निभानी है जो अनैतिकता एवं पारस्परिक द्वेष भाव एवं वैमनस्य से जर्जरित होकर विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है, जो परमात्मा एवं आत्मा को भुलाकर भौतिक विज्ञान और धन सम्पदा का उपासक बन रहा है और जहाँ नास्तिकता और इन्द्रिय लोलुपता का बोलवाला है। यतः आर्य समाज के पास धर्म और ईश्वर के विषय में बुद्धिसंगत सिद्धान्त है और लौकिक उन्नति की अनुपम योजना भी है अतः यह निश्चय ही लोगों को सही मार्ग दिखाकर उन्हें लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से उन्नत करने में समर्थ हो सकता है। यह ज्ञात नितान्त सत्य है कि नैतिक दृष्टि से पतित व्यक्ति सुख समृद्धि का शान्ति पूर्वक उपभोग नहीं कर पाता।

वैदिक धर्म की शिक्षाओं का जिनका आर्य समाज प्रचार करता है और उसमें निहित धार्मिक जीवन शैली का जिसमें मनुष्यों सहित पशु पक्षी आदि सभी चेतन प्राणियों के लिए स्थान हैं संसार व्यापी प्रचार एवं प्रसार हो, यही हमारी कामना है।

डा. सर श्रीयुत शिवसागर रामगुलाम प्रधानमंत्री मारीशस (अलवर (राजस्थान) में हुए सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन के अध्यक्ष के आसन से दिए गए भाषण का अंश)

अदालतों के कतिपय फैसले

१. पटना हाई कोर्ट

एम० जे० सी० नं० ३७५-१९५७

फैसला ६-१-१९५८

वादी—श्री डा० डी० राम प्रधान आर्य प्रति निधि सभा विहार
प्रति वादी - विहार सरकार ।

विहार के शिक्षा निदेशक ने दयानंद कन्या विद्यालय मीठापुर पटना के प्रबंध के लिए जिस के भी प्रधान श्री डा० डी० राम जी थे वलात ऐडवाक कमेटी लादने का आर्डर दिया और कमेटी नियुक्त भी कर दी । इसके विरुद्ध कोर्ट में मामला चला और हाई कोर्ट तक पहुँचा जिसने निर्णय दिया कि एतदर्थ (ऐडवाक) कमेटी की नियुक्ति अवैध और अनुचित थी । साथ ही इस कमेटी ने २१-७-१९५७ को जो प्रबंध समिति बनाई और स्वयं का निर्माण किया ये दोनों ही अवैध थीं । कोर्ट ने शिक्षा विभाग को आर्डर दिया कि जो सहायता रोकी हुई है वह दी जाय ।

२. सेशन कोर्ट भड़ोच

वादी—बम्बई प्रशासन

अपराधी—१. कान्ती लाल, इच्छा लाल

२. पं० वेद मित्र, अमर सिंह ठाकुर

दफा २९५—इन्डियन पीनल कोड ।

फैसले की तारीख—नं०—६५५/६४ ७-७-१९६४

अपराधी—१. लोक माता आर्ट प्रिंटर्स का मालिक

पं० वेद मित्र वेद विज्ञान के संपादक व प्रकाशक

दिसम्बर १९६१ के 'वेद विज्ञान' नामक पत्रिका के मुख पृष्ठ पर अत्रि स्मृति का एक श्लोक समीक्षा सहित छपा था जिस में कहा गया था कि दुष्ट और भ्रष्ट लोग भागवत् को पढ़ते हैं और अपना हित चाहने वाले लोगों को इस ग्रन्थ को नहीं पढ़ना चाहिए क्योंकि यह ग्रन्थ निम्न कोटि का है। इस श्लोक की समीक्षा जान-बूझ कर द्वेष भाव से उन लोगों की धार्मिक भावना पर आघात करने के इरादे से की गई थी जो भागवत को पवित्र ग्रन्थ मानते हैं।

यतः आरोप प्रमाणित न हो सका था अतः दोनों अपराधियों को मुक्त कर दिया गया।

३. आर्य समाज की प्रशंसा

३. अली पुर (बंगाल) के अतिरिक्त सेशन जज श्री ई० सी० सिम्प सन् का १९ फरवरी १९३४ का फैसला।

“२१ वर्षीया एक असहाया विदु ग्वालिनी नामक विधवा को जो ट्रेन से अकेली सफर कर रही थी वहका कर एक मुसलमान अपने घर ले गया और अरसे तक उसे बलात् रोकें रखा। उस पर अनेक व्यक्तियों ने बलात्कार किया। अन्त में आर्य समाज ने उस देवी का उद्धार किया और उन पापियों के चंगुल से छुड़ाया। ५ व्यक्तियों पर केस चला जिन्हें कई २ साल की सजा हुई—

१. अली हैदर मुख्तार और वारक पुर म्यूनिसिपल कमेटी का कमिश्नर।

२. अहमद सरदार (दोनों को १०-१० वर्ष की कड़ी सजा)

(यह अली हैदर के लिए स्त्रियों को लाया करता था। बिन्दु को भी यही वहका कर ले गया था।)

३. अब्दुल अजीज ८ वर्ष

४. असगर]
५. फेकन] ७-७ वर्ष

माननीय जज ने अपने निर्णय में एक स्थल पर लिखा :—

इन अपराधियों का शिकार एक अभागी, असहाया लड़की थी जो घर एवं रिश्तेदारों से विहीन थी ।

यदि मातृ सदन और आर्य समाज ने इस लड़की का उद्धार न किया होता तो बहुत संभव है अपराधी जो स्त्रियों का शील भंग करने के लिए शिकार की तलाश में रहते हैं न्यायालय के समक्ष न आ पाते ।

टिप्पणि

आर्य समाज ने हजारों लाखों असहाया देवियों दीन दुखियों एवं अनाथों की सेवा सहायता और रक्षा का रिकार्ड बनाया हुआ है । उदाहरण के लिए एक कोर्ट का प्रमाण पत्र दिया जाना पर्याप्त है ।

४.

इसके अतिरिक्त सत्यार्थ प्रकाश विषयक श्री पी० हैरिसन इलाहावाद का निर्णय (१९०२) जगत् प्रसिद्ध है जिस में स्वामी अलाराम ने कोर्ट से मांग की थी कि सत्यार्थ प्रकाश राजद्रोहात्मक ग्रंथ है अतः यह जप्त किया जाय । माननीय मजिस्ट्रेट ने इस केस को रद्द करके अलाराम से नेक चलनी का मुचलका लिया था ।

५. सुप्रीम कोर्ट

केस का नाम—वादी—डी. ए. वी—कालेज मटिडा व लाल बहादुर शास्त्री कालेज

प्रतिवादी—१ पंजाब सरकार २ पंजाबी यूनीवर्सिटी व अन्य—

अदालत—सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली—

केस नंबर—रिटपिटिशन नंबर ३५३ व ३५४/१९७०

फैसले की तारीख—५-५-१९७१

रिपोर्टेंड—ए. आई. आर १९७१ (ऐस. सी) १७३१ उच्चतम न्यायालय

निर्णय पत्रिका १९७१ वर्ष पृ ३९०

वादी आर्य समाजियों की शिक्षण संस्थाएं हैं । ये संस्थाएं

१३-५-१९६६ से पंजाबी यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध हैं। १५-६-१९७० को पंजाबी विश्व विद्यालय ने आक्षेपित परिपत्र निकालकर यह उद्घोषित किया कि १९७०-७१ वाले शिक्षा सत्र से शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम गुरुमुखी लिपि में लिखित पंजाबी भाषा होगी। वादियों की मुख्य दलील यह थी कि धारा ४(२) पंजाबी यूनिवर्सिटी एक्ट १९७१ विश्व विद्यालय के माध्यम के रूप में एक मात्र पंजाबी भाषा विहित करने के लिए अधिकृत नहीं करती। वादियों की यह दलील भी थी कि वे पंजाब में अल्प संख्यक धर्म और लिपि वाले हैं जिनकी अपनी लिपि देव नागरी और भाषा हिन्दी है। और वे अनुच्छेद २९ और ३० के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों के हकदार हैं। न्यायाधिपति रेड्डी ने वादियों की पिटीशन खर्चें सहित स्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि पंजाब राज्य को शिक्षा का माध्यम विहित करने की अपनी शक्ति का सामंजस्य धर्म या भाषा पर आधारित अल्प संख्यक नागरिकों के किसी विभाग के अनुच्छेद २९ (१) और ३० (१) के अधीन प्रत्याभूत अधिकार से करना चाहिए। कोई भी कठिनाई चाहे वह प्रशासनिक हो अथवा वित्तीय प्रत्याभूत अधिकारों के अतिक्रमण को न्याय्य नहीं ठहरा सकती। किसी भी राज्य को इस सम्बन्ध में वैधानिक क्षमता प्राप्त नहीं है कि यह उच्चतर शिक्षा वा अनुसंधान के लिए और विज्ञान तथा कला की शिक्षा के लिए कोई ऐसा विशिष्ट माध्यम विहित करे जो सूची १ की धारा ७७ के अधीन संसद की एक सूत्रता लाने और मापदंडों के निर्धारण की शक्ति में हस्तक्षेप करता हो।

यद्यपि विश्व विद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में पंजाबी भाषा विहित कर सकता था तथापि वह पंजाबी को अनन्य माध्यम के रूप में विहित नहीं कर सकता था और नहीं वह सम्बद्ध कालेजों को जो भाषा या धर्म पर आधारित अल्प संख्यकों द्वारा अथवा नागरिकों के किसी ऐसे विभाग द्वारा जो अपनी भाषा और संस्कृति बनाए रखना चाहते हों स्थापित एवं प्रशासित होते हैं इस बात के लिए बाध्य ही कर सकता

था कि वे पंजाबी माध्यम से शिक्षा दें या गुरुमुखी लिपि में लिखित पंजाबी माध्यम में परीक्षा लें। क्योंकि विश्व विद्यालय अधिनियम के अधीन इन कालेजों को पंजाबी विश्व विद्यालय से अनिवार्यतः सम्बद्ध करा दिया गया है। अतः विश्व विद्यालय ने निश्चय ही अल्प संख्यकों के उक्त कालेजों की आवश्यकता की उपेक्षा की है जो उनके अपने संस्थानों को अपने ही ढंग से प्रशासित करने और अपनी पसंद के माध्यम में शिक्षण कार्य करने और अपनी रुचि की लिपि में परीक्षा देने के अधिकार में हस्तक्षेप किया है।

६

अदालत—सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली

केस—रिटपिटीशन २५६-२६८ २७१।१९७०

फैसले की तारीख—५-५-१९७१

वादी—डी. ए. बी. कालेज जालंधर व अन्य डी. ए. बी. कालेज तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधीनस्थ कालेज

प्रतिवादी—१. पंजाब सरकार २. गुरुनानक यूनिवर्सिटी व अन्य

रिपोर्टेंड—ए. आई. आर. १९७१ एस. सी. १७३७

निर्णय—उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका १९७१ पृष्ठ ३९६—

विवरण

दयानन्द एंग्लो कालेज जालंधर तथा १३ अन्य आर्य समाजी शिक्षा संस्थाओं (कालेज) ने १४ रिट पिटीशन दायर किए। उन्होंने आक्षेप किया कि अल्प वर्ग के धर्म और लिपि के आधार पर इन संस्थाओं के संविधान के अनुच्छेद २९ (१) ३० (१) द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों का हनन या उल्लंघन नहीं हो सकता और उनके अधीन आर्य समाज के कालेजों को इच्छानुसार अपने शैक्षणिक संस्थाओं के प्रशासन

सम्बन्धी मौलिक अधिकार का हक है ।

मान्य न्यायाधिपति रेड्डी ने अपने निर्णय में लिखा कि आर्य समाज को धर्म पर आधारित अल्प संख्यक वर्ग माना जा सकता है । और किसी न किसी रूप में वह पंजाब राज्य में विद्यमान अल्प संख्यक हिन्दू धर्मावलम्बी अल्प संख्यकों का एक अंग है । उनकी एक विशिष्ट लिपि है । विश्वविद्यालय अधिनियम की धारा २ (१) (क) और १७ अवैध है क्योंकि वे वादियों के मूल अधिकारों को प्रभावित करते हैं । अधिनियम २ (१) में यह था कि कालेज का नियमित रूप से निर्मित एक शासन निकाय होगा जिसमें २० व्यक्ति होंगे जो सीनेट द्वारा अनुमोदित होंगे । और इनके अन्तर्गत अन्य व्यक्तियों के अतिरिक्त विश्वविद्यालय के दो प्रतिनिधि होंगे । इसी प्रकार अधिनियम १७ में मूलतः नियुक्त होने वाले कर्मचारियों का अनुमोदन कुलपति करेगा इसके बाद होने वाले परिवर्तनों की रिपोर्ट कुलपति के अनुमोदन के लिए विश्वविद्यालय में की जायगी ।

टिप्पणि—इन दोनों फैसलों का सार हमें श्रीयुत वा० नवनीतलाल जी एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट नई दिल्ली से प्राप्त हुआ है जिसके लिए हम एडवोकेट महोदय के आभारी हैं । ये केस आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री श्रीयुत वीरेन्द्र जी एम० ए० प्रताप वीर प्रताप जालंधर के द्वारा प्रस्तुत कराए गए थे । इनकी पैरवी श्री वा० नवनीतलाल जी ने ही की थी । इन दोनों महानुभावों द्वारा आर्यसमाज की यह महती सेवा हुई थी ।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

७ शुद्धि की विजय

श्रीयुत स्व० पं० शान्ति स्वरूप जी (हरदोई) जन्मना मुसलमान थे । आर्य समाज चावड़ी बाजार दिल्ली में उनकी शुद्धि हुई थी । वह आर्य समाज के अनन्य भक्त एवं उच्च कोटि के यशस्वी उपदेशक थे ।

उन्होंने आर्य समाज की प्राण-पण से अमूल्य सेवा की ।

सन् १९३७ में उन्होंने उत्तर प्रदेश की विधान सभा के लिए चुनाव लड़ा और वे विजयी रहे । उनके चुनाव को इस आधार पर कि वह जन्मना मुसलमान थे अतः हिन्दू सीट पर चुनाव लड़ने के अधिकारी न थे कोर्ट में चुनौती दी गई । यह मामला उत्तर प्रदेश चुनाव याचिका आयोग के समक्ष गया जिसने अपने निर्णय द्वारा उनका चुनाव वैध करार दिया । इसका संक्षिप्त विवरण एस० एस० के वाधवा द्वारा संकलित इंडियन इलैक्शन केसेज १९३५-५० के भाग २ के पृष्ठ ३२९ पर उपलब्ध है ।

टिप्पणी—इस केस का संक्षिप्त विवरण माननीय श्रीयुत रघुवर दयाल श्री मित्तल सीनियर एडवोकेट मेरठ तथा प्रधान सार्वदेशिक न्याय सभा के सौजन्य से प्राप्त हुआ है ।

हम श्री मित्तल जी के इस प्रयास के लिए कृतज्ञ हैं ।

८ विरजानंद कुटी

इसी प्रकार मथुरा की विरजानंद कुटी उत्तर प्रदेश सरकार ने हस्तगत करके आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को सौंपदी । कुटिया के स्वामी ने इस कार्यवाही को कोर्ट में चुनौती दी । यह मामला हाई कोर्ट तक गया और सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचा जिसमें वादी को सफलता न मिली । इस केस में सार्वदेशिक सभा तथा उत्तर प्रदेश की सभा को उसके प्रतिनिधि स्व० श्री कर्णसिंह जी छोंकर के द्वारा बड़ा परिश्रम एवं उद्योग करना पड़ा । सुप्रीम कोर्ट में आर्य समाज की ओर से श्री स्व० बख्शी टेकचंदजी ने तथा सुप्रीम कोर्ट के एडवोकेट श्रीयुत नवनीतलालजी (दिल्ली) ने पैरवी की थी ।

इस केस का पूर्ण विवरण प्राप्त किया जा रहा है अवसर मिलने पर अंकित किया जायगा ।

९

आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल ने आर्य समाजों द्वारा संचालित हाई

स्कूलों गुरुकुलों आदि पर जिन्हें सरकारी सहायता मिलती है वा नहीं मिलती है अपनी प्रभुसत्ता पश्चिमी बंगाल सरकार तथा कोर्ट से स्वीकार कराई। उक्त सरकार ने प्रबंध तथा स्टाफ की नियुक्ति के बारे में विस्तृत नियम बनाकर सरकारी गजट में छापे (कलकत्ता गजट असाधारण)।

१६ मार्च १९७३ ई० शिक्षा

विभाग सेक्रेटरी—

इस कार्य को आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल ने जिसके मंत्री श्री बट कृष्ण वर्मन एडवोकेट हैं सफलता पूर्वक संपादित किया।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

आर्य ध्वज

मथुरा शताब्दी (श्री मह्यानन्द जन्म शताब्दी) के अवसर पर आर्य ध्वज का आकार प्रकार और रूप रंग निश्चित हुआ था । १९४७ में सार्वदेशिक सभा की अंतरंग ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए एक निश्चय किया था । आर्य ध्वज का आकार प्रकार इस प्रकार से अन्तिम रूप में निर्णीत हुआ—

लंबाई चौड़ाई से ड्योढ़ी (तिकोना नहीं)

उगते हुए सूर्य का अरुण रंग

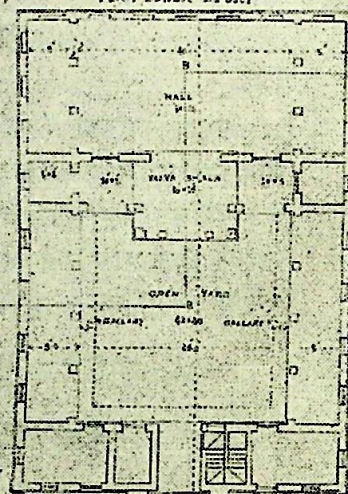
सूर्य के आकार में बीच में (ओ३म्)

ओ३म् इसी प्रकार लिखा जाना आवश्यक है । पौराणिकों का उॐ नहीं ।

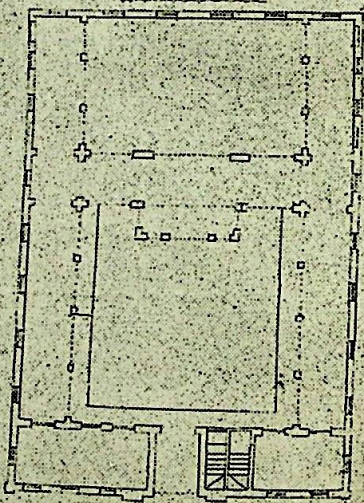
आर्य समाज मंदिर का चित्र

TYPE PLAN OF ARYA SAMAJ MANDIR

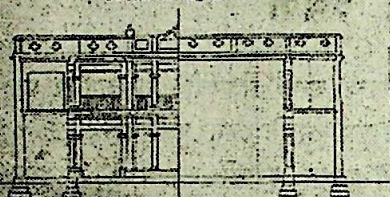
PLAN LOWER STORY



PLAN UPPER STORY

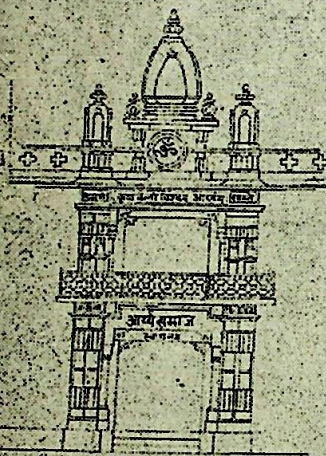


SECTION ON A.B.C.

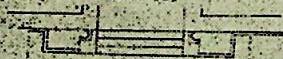


MAIN GATE
ELEVATION

Scale 1/8"



PLAN
Kasho 6.5



आर्य समाज मंदिर का चित्र
देखा

हय।

इसके अनुसार फ्रंट पोर्शन एक समान रखे जाने की व्यवस्था की गई है

महर्षि दयानन्द के सम्मान में डाक टिकट



भारत सरकार ने ४ मार्च १९६२ को महर्षि दयानन्द के सम्मान में १५ नए पैसे का डाक टिकट जारी किया। इस योजना के अन्तर्गत भारत के मुख्य २ समाज सुधारकों और धार्मिक नेताओं के डाक टिकट जारी किए जाने का निर्णय हुआ था। इस माला में सबसे पहला स्थान महर्षि दयानन्द को प्राप्त हुआ। भारत के डाक तथा तार

विभाग ने इस अवसर पर इस टिकट के प्रकाशन के साथ साथ महर्षि दयानन्द का संक्षिप्त परिचय भी अंग्रेजी में प्रकाशित किया था जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है :—

“महर्षि दयानन्द सरस्वती वेद विद्या के प्रकांड पंडित, ब्रह्म विद, समाज संशोधक और धार्मिक नेता थे। वह जितने विद्वान थे उतने ही कर्म योगी थे। १५-८—१८२४ (यह तारीख ठीक नहीं है वास्तविक तारीख १२-२—१८२५) को उनका जन्म हुआ था। उनके पिता करसन जी अपने भक्त पुत्र मूल शंकर को उन स्थानों पर ले जाया करते थे जहाँ शिव पुराण की कथा हुआ करती थी। मूल शंकर के जीवन के पहले २१ वर्ष घर पर व्यतीत हुए और इस काल में वह कुल परम्परा अनुसार धार्मिक शिक्षा प्राप्त करते रहे।”

जब यह १८ वर्ष के थे तब अकस्मात् उनकी बहिन (हैजे से) मर गई और उसके पश्चात् उनके चाचा का देहान्त हो गया जिन्हें बालक

मूल शंकर बहुत प्यार करता था। इन दोनों घटनाओं का (और शिव रात्रि के दिन शिव मन्दिर से घटना का जबकि एक चूहा शिव मूर्ति से अठखेलियाँ कर रहा था मूर्ति पूजा से बालक मूल शंकर को घृणा हो गई थी—संपादक), बालक मूल शंकर पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसे संसार से विरक्ति हो गई। उसके माता-पिता ने उसे गृहस्थ जीवन में बाँध कर रखने का यत्न किया परन्तु वह सफल न हुए और १८४६ ई० में मूल शंकर घर छोड़ कर भाग गया। शीघ्र ही लाला भक्त नामक एक संन्यासी से उसकी भेंट हुई जिसने उसे ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा देकर उसका नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया। २ वर्ष के बाद महाराष्ट्र के दंडी स्वामी परमानन्द सरस्वती ने उसे संन्यास की दीक्षा दी और उसका नाम दयानन्द सरस्वती रखा।

इसके आगे के स्वामी जी के जीवन के १५ वर्ष सत्य की खोज में देशाटन करते हुए व्यतीत हुए। इन वर्षों के सुविस्तृत भ्रमण काल में दयानन्द को यह प्रबल अनुभूति हुई कि धार्मिक मान्यताओं एवं आचरण के मध्य बहुत चौड़ी खाई विद्यमान है। उन्होंने घोषणा की कि धर्म जितना वाह्य रूप में प्रति लक्षित होता है उतना जीवन और आचरण में प्रति लक्षित नहीं होता। उन्होंने अनुभव किया कि नैतिक भीरुता, मानसिक निष्क्रियता और सामाजिक पतन को धर्मानुमोदित दिखाने का यत्न किया जाता है। वह मथुरा गए और स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठ कर वेद, एवं उपनिषदों का विस्तृत और गहन अध्ययन किया। स्वामी विरजानन्द बड़े तपस्वी और विद्वान् थे। उस समय दयानन्द की आयु ३६ वर्ष की थी और सच्चे गुरु की खोज में उन्होंने अनेक वर्ष व्यतीत कर दिए थे।

गुरु विरजानन्द की प्राप्ति में उनकी लम्बी खोज की परिसमाप्ति हुई थी। लगभग ३ वर्ष के पश्चात् जब वह गुरु देव से विदा होने लगे थे तब उन्होंने अपने शेष जीवन को धर्म के प्रचार में लगा देने का पवित्र व्रत लिया था।

काज़मी ऐक्ट १९३६

यदि कोई हिंदू लड़की या स्त्री मुसलमान बन जाय और किसी मुसलमान से शादी करले तो शुद्धि हो जाने पर विवाह विच्छेद हो जाता है ।

पहले यदि मुस्लिम पति पत्नी दोनों में से कोई इस्लाम का परित्याग कर देता था तो मुस्लिम शरीअत के अनुसार उनका विवाह टूट जाता था । परन्तु १९३६ के काज़मी ऐक्ट के अनुसार (धारा ४) ऐसा न ही हो सकता । परन्तु यदि कोई स्त्री हिंदू धर्म का परित्याग करके मुस्लिम बनी हो और उसका किसी मुसलमान के साथ विवाह हुआ हो और वह पुनः हिंदू धर्म में वापस चली जाय तो उस पर यह धारा लागू न होगी । धारा ४ इस प्रकार है —

The Renunciation of Islam by a married Muslim woman or here conversion to a faith other than Islam shall not by itself operate to dissolve her marriage.

Provided that after such renunciation or conversion the woman will be entitled to obtain a decree for the dissolution of the marriage on any of the grounds mentioned in section 2.

Provided further that the provision of this section shall not apply to a woman converted to Islam from some faith who reembraces her former faith.

नित्य-कर्म विधि

प्रातःकाल पढ़ने के मन्त्र

ॐ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातमित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥ १ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेयों विर्धता । आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ २ ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराघो भगेमां धियमुदवा ददन्तः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्रनृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३ ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उत्तोदिता मघवन्तसूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ ४ ॥

भग एव भगवां अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एताभवेह ॥ ५ ॥

(ऋ० ७।४१।१-५ ॥)

ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासना)

स्नानादि से निवृत्त होकर पवित्र स्थान पर बैठकर पहले तीन प्राणायाम करें और फिर गायत्री मन्त्र (पृष्ठ १३ पर) से शिखा को बाँधें ।

अथ आचमनमन्त्रः

ओं शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ (य० ३६।१२)

इस मन्त्र की पढ़कर तीन आचमन करें ।

सर्वव्यापक, सबका प्रकाशक और सबको आनन्द देने वाला परमेश्वर मनोवांछित सुख और पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए हमारा कल्याण करे तथा हम पर सुख की सर्वदा वृष्टि करे ।

अथ इन्द्रियस्पर्शः

वायें हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करके नीचे लिखे मन्त्रों से (पहले दाहिनी ओर फिर बाई ओर) अंग स्पर्श करे।

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः ।

ओं चक्षुश्चक्षुः । ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ।

ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः ।

ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ।

ओं करतलकरपृष्ठे ।

इन मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक क्रमशः मुख, नासिका, नेत्र, श्रोत्र (कान), नाभि, हृदय, कण्ठ, सिर तथा भुजाओं के मूल स्कन्ध और दोनों हाथों के ऊपर-तले स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की कृपा से हमारी ये सब ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां यश और बल से युक्त हों।

अथ ईश्वरप्रार्थनापूर्वक मार्जन मन्त्राः

इसके पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुलियों के अग्रभाग से अंगों पर जल छिड़कें।

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः ।

ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये ।

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः ।

ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणों से भी प्रिय परमात्मा सिर को पवित्र करे। दुःखविनाशक परमात्मा आँखों को पवित्र करे। सदा आनन्दमय और सबको आनन्द देने वाला परमात्मा कण्ठ में पवित्रता करे। सबसे महान् और सबका पूज्य परमात्मा हृदय को पवित्र करे। सर्वजगदुत्पादक परमात्मा नाभि को

पवित्र करे। दुष्टों को सन्ताप देने वाला परमात्मा पैरों को पवित्र करे। सर्वव्यापक सर्वतोमहान् परमात्मा शरीर के सब अंगों में पवित्रता करे।

अथ प्राणायाममन्त्राः

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः ।
ओं सत्यम् । (तैत्ति० १०।२७)

परमपिता परमात्मन् ! आप प्राणों से प्रिय, दुःख विनाशक और सुखदाता, आनन्दमय और आनन्ददाता सर्वतोमहान्, सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, दुष्टों को दण्ड देने वाले, सदा एकरस, अखण्ड, अविनाशी, और अपरिवर्तनशील हो ।

इस प्रकार ईश्वर के गुणों का स्मरण करते हुए उसमें अपने आपको मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिए ।

अथ अधमर्षणमन्त्राः

ओं ऋत च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत ।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ घाता यथापूर्वमकल्पयत् ।

दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ६ ॥

(ऋ० १०।१६०।१, २, ३,)

सर्वत्र प्रकाशमान ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से वेद विद्या और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई । उसी परमात्मा के सामर्थ्य से प्रलय उत्पन्न हुई और उसी परमात्मा से महासमुद्र उत्पन्न हुए ।

सारे ब्रह्माण्ड को सहज ही में अपने वश में रखने वाले परमेश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर=वर्ष और फिर इनके विभाग, दिन, रात, क्षण, मुहूर्त आदि को रचा ।

सब जगत् को धारण और पोषण करने वाले परमात्मा ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य और चन्द्र रचे, वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं । ठीक

उसी प्रकार द्युलोक, पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष और आकाश में जितने लोक हैं उनका निर्माण भी पूर्वकल्प के अनुसार ही किया है ।

अथाचमनमन्त्रः

पुनः निम्न मन्त्र को बोलकर तीन आचमन करें :—

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि
स्रवन्तु नः ॥

इस मन्त्र से पुनः तीन आचमन करें तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर पश्चात् प्रार्थना करें ।

अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः

निम्न मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन के चारों ओर बाहर-भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निश्चिन्त, उत्साही, आनन्दित तथा पुरुषार्थी रहना ।

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽदित्या इषवः
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर
इषवः । तेभ्यो नमो० ॥ २ ॥ (शेष पूर्ववत्)

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्न मिषवः ।
तेभ्यो नमो० ॥ ३ ॥ (शेष पूर्ववत्)

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिःरिषवः ।
तेभ्यो नमो० ॥ ४ ॥ (शेष पूर्ववत्)

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध
इषवः । तेभ्यो नमो० ॥ ५ ॥ (शेष पूर्ववत्)

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः शिवत्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।

तेभ्यो नमो० ॥ ३ ॥ (शेष पूर्ववत्)

(अथर्व० ३।२७।१-६)

पूर्वदिशा या सामने की ओर ज्ञानस्वरूप परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। वह बन्धन-रहित भगवान् सब ओर से रक्षा करता है। सूर्य की किरणें उसके बाण अर्थात् रक्षा के साधन हैं। उन सब के गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं। जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो। जो अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उन सबकी बुराई को उन बाणरूपी मुख के बीच में दग्ध कर देते हैं ॥ १ ॥

दक्षिण दिशा में सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। कीट-पतंग वृश्चिक आदि से वह परमेश्वर रक्षा करने वाला है। ज्ञानी लोग उसकी सृष्टि में बाण के सदृश हैं। उन सबके...इत्यादि पूर्ववत् ॥ २ ॥

पश्चिम दिशा में वरुण सबसे उत्तम परमेश्वर सबका राजा है। वह बड़े-बड़े अजगर सर्प आदि विषधर प्राणियों से रक्षा करने वाला है। पृथिव्यादि पदार्थ उसके बाण के सदृश हैं। श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। उन सबके...इत्यादि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

उत्तर दिशा में सोमशान्त्यादि गुणों से आनन्द प्रदान करने वाला जगदीश्वर सब जगत् का राजा है। वह अजन्मा और अच्छी प्रकार रक्षा करने वाला है। विद्युत् उसके बाण हैं। उन सबके...इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४ ॥

नीचे की दिशा में विष्णु सर्वत्र व्यापक परमात्मा सब जगत् का राजा है। चित्र ग्रीवा वाला परमेश्वर सब प्रकार से रक्षा करता है। नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उसके बाण के सदृश हैं। उन सबके...इत्यादि पूर्ववत् ॥ ५ ॥

ऊपर की दिशा में बृहस्पति, वाणी, वेदशास्त्र और आकाश आदि बड़ी-बड़ी शक्तियों का स्वामी सबका अधिष्ठाता है। अपने शुद्ध ज्ञानमय स्वरूप से हमारा रक्षक है। वृष्टि उसके वाणरूप अर्थात् रक्षा का साधन है। उन सबके... इत्यादि पूर्ववत् ॥ ६ ॥

अथ उपस्थानमन्त्राः

ओं उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ [यजु० ३५।१४]

हे परमेश्वर ! आप अन्धकार से पृथक् प्रकाश स्वरूप हैं। आप प्रलय के पश्चात् भी सदा विद्यमान रहते हैं। आप प्रकाशकों के प्रकाशक, चराचर के आत्मा और ज्ञानस्वरूप हैं। आपको सर्वश्रेष्ठ जान कर श्रद्धापूर्वक हम आपकी शरण में आये हैं। नाथ ! अब हमारी रक्षा कीजिए।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
यजु० ३३।३१ ॥

वेद की श्रुति और जगत् के नाना पदार्थ, भण्डों के समान उस दिव्यगुण युक्त, सर्व प्रकाशक चराचर के आत्मा वेद प्रकाशक भगवान् को विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए उत्तम रीति से जनाते और प्राप्त कराते हैं।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आ प्राद्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥
(यजु० ७।४२॥)

जो सब देवों में श्रेष्ठ और बलवान् है, जो सूर्यलोक प्राण, अपान और अग्नि का भी प्रकाशक है। जो द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीलोक में व्यापक है, जो जड़ और चेतन जगत् का आत्मा—जीवन है वह चराचर जगत् का प्रकाशक परमात्मा हमारे हृदयों में सदा प्रकाशित रहे।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं

जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः
शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

[यजु० ३६।२४] ॥

उन सब के द्रष्टा, धार्मिक विद्वानों के परमहितकारक सृष्टि से पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्य-स्वरूप से विद्यमान रहने वाले और -सर्व जगदुत्पादक ब्रह्म को सौ वर्ष तक देखें। उसके सहारे से सौ वर्ष तक जियें। सौ वर्ष उपदेश करें। उसी की कृपा से सौ वर्ष तक किसी के आधीन न रहें। उसी ईश्वर की आज्ञापालन और कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें।

अथा गायत्रीमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ [यजु० ३६।३]

सच्चिदानन्द, सकल जगदुत्पादक, प्रकाशकों के प्रकाशक परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ पापनाशक तेज का हम ध्यान करते हैं। वह परमेश्वर हमारी बुद्धि और कर्मों को उत्तम प्रेरणा करे।

समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत् कृपयाऽनेन जपो पासनादिकमंगा
धर्मार्थकाममोक्षाणाम् सद्यः सिद्धि र्भवेन्नः ।

नमस्कार मन्त्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ (यजु० १६।४१)

जो सुखस्वरूप और संसार के उत्तम सुखों को देने वाला, कल्याण का कर्त्ता, मोक्षरूप और धर्म के कामों को ही करने वाला, अपने भक्तों को धर्म के कामों में युक्त करने वाला अत्यन्त मंगलरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष देने वाला है, उसको हमारा वारम्बार नमस्कार हो।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं
तन्न आसुव ॥ १ ॥ यजु० ३०।३

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स
दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

यजु० १३।४।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

यजु० २५।१३।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । यईशे
अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

यजु० २३।३७

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः । यो
अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

यजु० ३२।६

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥

ऋक् १०।१२१।१०

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृती ये धामन्नध्वैरयन्त ॥ ७ ॥

यजु० ३२।१

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि
विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम

यजु० ४०।१६॥ ॥ ८ ॥

॥ अथ स्वस्तिवाचनम् ॥

अग्निमीले पुरोहिते यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधात-
मम् ॥ १ ॥ (ऋक्० १।१।१)

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः
स्वस्तये ॥ २ ॥ (ऋक्० १।१।६)

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्य दितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतना ॥ ३ ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥ ४ ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पातृंहसः ॥ ५ ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति । स्वस्ति न इन्द्रश्चा-
ग्निच स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥ ६ ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता
जानता सं गमेमहि ॥ ७ ॥ (ऋक्० ५।५।१।१५)

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

(ऋक्० ७।३।१।१५)
येभ्यो माता मधुमत्पिबन्ते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्विबर्हाः ।

उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा
स्वस्तये ॥ ९ ॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते
स्वस्तये ॥ १० ॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्या अदिति

स्वस्तये ॥ ११ ॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो
यतिष्ठन । को वोऽध्वरं तुविजाता अरंकरद्यो नः पर्षदत्यंहः
स्वस्तये ॥ १२ ॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहो-
तृभिः । त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्तुं सुपथा
स्वस्तये ॥ १३ ॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगस्तच मन्तवः
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्शद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥ १४ ॥

भरेष्विन्द्रं सुह्वं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यम् जनम् । अग्नि
मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥ १५ ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदिति सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥ १६ ॥

विश्वे यजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नो दुरे वाया अभि-
हूतः । सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे
स्वस्तये ॥ १७ ॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपाराति दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥ १८ ॥

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता
स्वस्तये ॥ १९ ॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥ २० ॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति । स्वस्ति
नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥ २१ ॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्ण स्वस्त्यभि या वाममेति । सा
नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः ॥ २२ ॥

इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय
कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा
मा वस्तेन ईशत माघशः सो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वी-
र्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ [यजु० । १।१] ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो ऽअपरीतास
उद्भिदः । देवा नो यथासदमिद्वृधेऽ असन्नप्रायुवो रक्षितारो
दिवे दिवे ॥ २४ ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्त-
ताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु
जीवसे ॥ २५ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियग्निजन्मवसे हूमहे वयम्
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २६ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ २७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः स्थिरै-
रङ्गैस्तुष्टुवाग्ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २८ ॥

[यजु० २५ मं० १४, १५, १८, १९, २१]

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये । नि होता सत्सि
वर्हिषि ॥ २९ ॥

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे
जने ॥ ३० ॥ [साम० १।१-२]

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वारूपाणि विभ्रतः । वाचस्पति-
र्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥ (अ० १।१।१)

॥ इति स्वस्तिवाचनम् ॥

॥ अथ शान्तिप्रकरणम् ॥

शं न इन्द्राग्नि भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु
रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्य्यमा पुरुजातो
अस्तु । २ ।

शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरुची भवतु स्व-
धाभिः । शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि
सन्तु । ३ ।

शं नो अग्निज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना
शम् । शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु
वातः । ४ ।

शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५॥

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलापः शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

श नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु
यज्ञाः । शं नः स्वरूपा मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्बस्तु
वेदिः ॥७॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु । शं
नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्बस्तु वायुः ॥९॥

शन्नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूपसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु
शम्भुः । १० ।

शं नो देवा विश्वे देवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो
अप्याः । ११ ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥
शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥
(ऋक् ० ७।३५।१—३)

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे । १४ ।
शं नो वातः पवताँ शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिकदद्देवः
पर्जन्यो अभिवर्षतु । १५ ।

अहानि शं भवन्तु नः शं रात्रीः प्रतिधीयताम् शं न
इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं नः
इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः ॥ १६ ॥
शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु
नः ॥ १७ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः द्यौषधयः
शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं
शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं
जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शत-
मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥
यजु ० ३६।८, १०, ११, १२, १७, २४ ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति । दूरङ्गमं
ज्योतिषाँ ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु । २० ।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२१॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्प-
मस्तु ॥२२॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन
यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२३॥

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभा-
विवाराः । यस्मिन्श्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्क-
ल्पमस्तु ॥२४॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशु भिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥२५॥

यजु० ३४। १-६।

मन्त्र सं० २० से २५ तक रात्रि सोते समय के भी हैं ।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोष-
धीभ्यः ॥२६॥

साम० १।३।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं
पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

अथर्व १६। १५। ५।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥

आ० १६। १५। ६

॥ इति शान्तिप्रकरणम् ॥

देवयज्ञ (हवन)

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः—ओमावसोः सदनं सीद ।

ऋत्विगुक्तिः—ओं सीदामि ।

यजमानोक्तिः—

ओं तृत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीयप्रहाराद्धं वैवस्वत मन्वन्तरेऽ-
अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणेऽमुक संवत्सरे...
अयने ऋतौ मासे...पक्षे...तिथौ दिवसे...नक्षत्रे...लगने...मुहूर्ते
अत्र...अहम्...कर्मकरणाय भवन्तं वृणे ।

ऋत्विगुक्तिः—वृतोऽस्मि ।

आचमनमन्त्राः

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा । १ ।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा । २ ।

ओम् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा । ३ ।

तैत्तिरीय आरण्यक प्र० १० । अनु० ३२, ३५ ।

अङ्गस्पर्शमन्त्राः

ओं वाङ् मे आस्येऽस्तु ।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।

ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।

पारस्कर गू० का० १ । कण्डिका ३ । सू० २५

अग्न्याधानमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः ।

गोभिल गृ० प्र० १ । खं० १ । सू० ११ ।

ओं भूर्भुवः स्वद्यौरिवभूम्ना पृथिवीव वरिष्णा । तस्यास्ते
पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे । यजु० ३ । ५ ।

अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्र

ओं उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूतं सँसृजेथामयं
च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवाः यजमानश्च
सीदत । यजु० १५ । ५४ ।

समिदाधान के मन्त्र

ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध
वर्धय चास्मान् प्रजया, पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे नान्नाद्येन, समेधय
स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम । १ । इस मंत्र से पहली
समिधा की आहुति देवें ।

ओं समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्
हव्या जुहोतन स्वाहा । इदमग्नये इदं न मम । २ । इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे
स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम । ३ । इससे दूसरी समिधा
की आहुति देवें ।

तन्त्वा समिद्धिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा
यविष्ठय स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम । ४ ।

यजु० अ० ३ । मं० १, २, ३ ।

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें ।

घृताहुति के मन्त्र

ओं अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध
वर्धय चास्मान् प्रजया, पशुभिर्ब्रह्म वर्चसेनान्नाद्येन, समेधय
स्वाहा । इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम । १ ।

इस मन्त्र को पाँच बार पढ़कर पाँच आहुति दें।

जल-प्रसेचन के मन्त्र

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व । इससे पूर्व दिशा में जल छिड़कावें

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व । इससे पश्चिम दिशा में

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व । इससे उत्तर दिशा में

गोमिल गृ० प्र० १ । ख० ३ । सू० १—३ ।

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो
गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।
यजु० ३० । १ ।

इस मन्त्र से चारों ओर जल छिड़कावें ॥

आधारावाज्याहुतिमन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम

उत्तर भाग अग्नि में घृत की आहुति दें ।

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्न मम ।

गो० गृ० प्र० १ । स्व० ८ । सू० ३४

दक्षिण भाग अग्नि में घृत की आहुति दें ।

आज्यभागाहुतिमन्त्र

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदं न मम ।

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय इदं न मम ।

इन दोनों मन्त्रों से मध्य में दो आहुति दें ।

प्रातःकाल का प्रधान होम 'मुख्य होम'

॥ प्रातः काल में आहुति के मन्त्र ॥

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । १ ।

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्विर्चः स्वाहा । २ ।

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा । ३ ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजरूषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु
स्वाहा । ४ ।

निम्नलिखित मन्त्रों से प्रातः-सायं आहुति देनी चाहिए ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदं न
मम ॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा इदं वायवेऽपानाय इदं न
मम । २ ।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय
इदं न मम । ३ ।

ओं भूभुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम । ४ ।

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूभुवः स्वरों स्वाहा । ५ ।

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तथा मामद्य मेघ-
याग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा । ६ ।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्न
आसुव । ७ ।

ओं अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि
विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम
स्वाहा । ८ । यजु० । अ० ४०, म० १३ ।

सायंकाल यज्ञ के मन्त्र

ओं अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । १ ।

ओं अग्निवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा । २ ।

ओं अग्निज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा । ३ ।

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजरूषसेन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु
स्वाहा । ४ ।

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्न-
मम । १ ।

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय इदन्न-
मम । २ ।

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय
इदं न मम । ३ ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः
स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न
मम । ४ ।

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों स्वाहा । ५ ।

ओं सर्वं वै पूर्णं^७ स्वाहा । १ ।

पूर्णाहुति प्रकरण

आधारावाज्याहुतिमन्त्र

ओं अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदं न मम ।

ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदं न मम ।

गो० गृ० अ० १ । ख० ८ । सू० २४ ।

आज्यभागाहुतिमन्त्र

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदं न मम ।

ओं इन्द्राय स्वाहा । इदमिन्द्राय इदं न मम ।

व्याहुति आहुति

ओं भूरग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदन्न मम । १ ।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा । इदं वायवे इदन्न मम । २ ।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा । इदमादित्याय इदन्न मम । ३ ।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वा-
दित्येभ्यः इदन्न मम । ४ ।

[गो० १ । ८ । ४]

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्नि-
ष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे अग्नये स्विष्टकृते
सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्तः
कामान्तसमर्द्धय स्वाहा । इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ।

[शतपथ का० १४१।४।२४। पा० १।२।१०]

प्राजापत्याहुति

ओं प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम

(अ० १३ । ८)

प्रधान होम सम्बन्धी चार आज्याहुति

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आर्यूषि पवस आसुवोर्जमिषं च
नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न
मम ।

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरो-
हितः । तमीमहे महागयं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्नमम ।

ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयि मयि पोषं स्वाहा । इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम । ३।

(ऋ० म० ६ । सू० ६६ म० १६-२१)

ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि
परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुम स्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो
रयीणां स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम । ४ ।

(ऋ० म० १० सू० १२१ मं० १०। आ० १।४।४)

॥ अष्ट आज्याहुति मन्त्राः ॥

ओं त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेलोऽव यासि-
सीष्ठाः यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रमुमुग्ध्य-
स्मत् स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्न मम । १ ।

(ऋ० ४ । १।४)

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नैदिष्ठो अस्या उषसो
व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृलीकं सुहवो न
एधि स्वाहा । इदमग्निवरुणाभ्यां इदन्न मम । ४ ।

(ऋ० ४ । १ । ५)

ओं इमं मे वरुण श्रुधो हवमद्या च मृलय । त्वामक्स्युराचके
स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम । ३ ।

[ऋ० मं० १ सू० २५ मं० १६]

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो
हविर्भिः । अहेलमानो वरुणेह बोध्युरुक्षंस मा न आयुः प्र सोषी
स्वाहा । इदं वरुणाय इदन्न मम । ४ ।

[ऋ० मं० १ । सू० २३ । मं० ११ ।]

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः
तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः
स्वाहा । इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः
स्वर्केभ्यः । इदन्न मम । (का० श्रौ० सू० २५ । १ । ११)

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिश्चस्तिपाश्च सत्यमित्त्व मयासि ।
अया नो यज्ञं बहास्यया नो धेहि भेषजं स्वाहा । इदमग्नये
अयसे इदं न मम । ६ । (कात्या० १५-११)

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा
वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा । इदं वरुणा-
याऽऽदित्यायादितये च इदन्न मम । ७ ।

(ऋ० मं० १ । सू० २४ मं० १५)

ओं भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञं हि^७ सिष्टं
मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा । इदं जात-
वेदोभ्यां इदन्न मम । ८ । यजु० अ० ५ । मं० ३ ।

ओं सर्ववे पूर्णं^७ स्वाहा ।

भोजन से पूर्व बोलने का मन्त्र

ओं अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।

प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

पूर्णमासी की आहुतियाँ

ओं अग्नये स्वाहा । १ । ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । २ । ओं विष्णवे स्वाहा । ३ ।

अमावस्या की आहुतियाँ

ओं अग्नये स्वाहा । १ । ओं इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा । २ । ओं विष्णवे स्वाहा । ३ ।

अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ है । पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों को यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है ।

॥ इति पितृयज्ञः ॥

अथ भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेव)

निम्नलिखित दस मन्त्रों से घृत मिश्रित क्षार और लवणान्न को छोड़कर पाकशाला में जो भोजन बना हो उसी की आहुति करें—

ओं अग्नये स्वाहा । ओं सोमाय स्वाहा । ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । ओं धन्वन्तरये स्वाहा । ओं कुहूवै स्वाहा । ओमनुमत्यै स्वाहा । ओं प्रजापतये स्वाहा । ओं द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलि दान करे । एक पत्तल व थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग रखना । यदि भाग रखने के काल में कोई अतिथि आ जाये तो उसी को दे देना, अथवा अग्नि में डालना चाहिये—

भाग रखने के मंत्र

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । (इससे पूर्व) । ओं सानुगमाय यमाय नमः । (इससे दक्षिण) ओं सानुगाय वरुणाय नमः ।

(इससे पश्चिम) । ओं सानुगाय सोमाय नमः । (इससे उत्तर)
 ओं मरुद्भ्यो नमः । (इससे द्वार) ओं अद्भ्यो नमः (इससे जल)
 ओं वनस्पतिभ्यो नमः । (इससे मूसलोखल) । ओं श्रियै नमः ।
 (इससे ईशान) । ओं भद्रकाल्यै नमः । (इससे नैऋत्य) । ओं ब्रह्म-
 पतये नमः । ओं वास्तुपतये नमः (इससे मध्य) ओं विश्वेभ्यो
 देवेभ्यो नमः । ओं दिवाचरेभ्यो नमः । ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो
 नमः । (इससे पृष्ठ) । ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः
 (इससे दक्षिण) । मनु० ६ । ८७-९१ ।

तत्पश्चात् निम्नलिखित छः भाग घी के साथ मिला के रखे—
 शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
 वायसानां कृमीणां च शुनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥

मनु० अ० ३ । श्लोक ९२ ॥

अर्थ—कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः
 नामों से छः भाग पृथिवी में घरे और छः भाग जिस जिस नाम के
 हों उस उसको देवे ।

इति बलिवैश्वदेवविधिः ।

अतिथियज्ञः

तद्यस्यैवं विद्वान् ब्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् । १ । त्वयमे-
 नमभ्युदेत्य ब्रूयाद्ब्रात्यं क्वऽवात्सीर्ब्रात्योदकं ब्रात्यं तर्पयन्तु ब्रात्य
 यथा ते प्रियं तथास्तु ब्रात्यं यथा ते वशस्तथास्तु ब्रात्यं यथा ते
 निकामस्तथास्त्विति । २ ।

अ० कां १५ । अनु० २ । व० ११ । मं० १, २ ॥

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी सत्योपदेशक, गृहस्थों के घर आवें, तब
 गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वानों को प्रणाम आदि करके
 उत्तम आसन पर बैठकर पूछें कि कल के दिन कहाँ आपने निवास किया
 था ? हे ब्रह्मन् ! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हों ग्रहण कीजिए
 और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए ।

जो धार्मिक परोपकारी सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहित-कारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना अतिथियज्ञ कहाता है, उसको नित्य प्रति किया करें ।

यज्ञोपवीत मन्त्र

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं

प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।

आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं

यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

यज्ञ-प्रार्थना

पूजनीय प्रभो ! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए ।

छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिए ॥

वेद की वोलें ऋचायें सत्य को धारण करें ।

हर्ष में हों मग्न सारे शोक-सागर से तरें ॥

अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को ।

धर्म मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को ॥

नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें ।

रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें ॥

भावना मिट जाय मन से पाप-अत्याचार की ।

कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की ॥

लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए ।

वायु जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किए ॥

स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो ।

इदन्न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो ॥

हाथ जोड़ भुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे ।

नाथ करुणा रूप करुणा आपकी सब पर रहे ॥

(राष्ट्रीय प्रार्थना)

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मर्चसी जायताम्
 राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो
 जायताम् दोग्ध्रीः धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा
 जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
 निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवर्त्यो न ओषधयः पच्यन्तां
 योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ यजु० अ० २ मं० २२ । २२ ॥

ब्रह्मन् ! सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
 क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
 होवें दुधारू गौएँ, पशु अश्व आशुवाही ।
 आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही ॥
 बलवान् सम्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
 इच्छानुसार वर्षे, पर्जन्य ताप धोवें ॥
 फल फूल से लदी हो, औषध अमोघ सारी ।
 हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

संगठन सूत्र

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
 इलस्पदे समिध्यसे स नो वसून्त्या भर ॥ १ ॥
 हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को ।
 वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन वृष्टि को ॥
 संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
 देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ॥ २ ॥
 प्रेम से मिल कर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो ।
 पूर्वजों की भाँति तुम कर्तव्य के मानी बनो ॥
 समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्त-
 मेषाम् । समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो
 हविषा जुहोमि ॥ ३ ॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों ।
 ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों ॥
 समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
 सानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ ॥
 हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरোধी सदा ।
 मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा ॥

आरती

ओ३म् जय जगदीश हरे; पिता जय जगदीश हरे ।
 भक्त जनन के संकट, क्षण में दूर करे ॥ १ ॥
 जो ध्यावे फल पावे, दुःख विनशे मन का ।
 सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का ॥ २ ॥
 मात पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किस की ।
 तुम बिन और न दूजा, आस कहूँ जिस की ॥ ३ ॥
 तुम पूरण परमात्म, तुम अन्तर्यामी ।
 पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ ४ ॥
 तुम करुणा के सागर, तुम पालनकर्त्ता ।
 दीन दयालु कृपालु, कृपा करो भर्त्ता ॥ ५ ॥
 तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति ।
 किस विघ्न मिलूँ दयामय, तुम को मैं कुमति ॥ ६ ॥
 दीनबन्धु दुःखहर्ता, तुम रक्षक मेरे ।
 करुणाहस्त बड़ाओ, शरण पड़ा तेरे ॥ ७ ॥
 विषय विकार मिटाओ पाप हरो देवा ।
 श्रद्धा भक्ति बड़ाओ, सन्तान की सेवा ॥ ८ ॥

VEDIC SANDHYA

Introduction

Compiled by Rishi Dayanand, the Vedic Sandhya or prayer consists of 17 MANTRAS, seven (Nos. I, and XII-XVII) from the Yajur Veda, six (Nos. VI-XI) from the Atharva Veda and one (No. V) from the Rig Veda. II, III and IV Mantras are from the Brahmins.

Literally, Sandhya means meditation at dawn and dusk. Thus prayer should be offered twice a day in the twilight before sun-rise and after sunset. Sandhya combines in itself STUTI, GLORIFICATION PRARTHANA (PRAYER) and UPASANA. (communion) STUTI is recitation of the qualities and virtues of the Creator, so that our desires, thoughts and actions are guided on to the righteous path. The object of the PRARTHANA is to seek God's blessings for a good cause. It does not suggest inaction, but PRARTHANA is synonymous with effort according to a person's maximum capacity. Upasana which literally means sitting near, implies acquisition of virtues and qualities which may entitle the worshipper to be in communion with God. The Sandhya can be divided into four

parts. The first part (Mantaas I-V) deals with the purification of the individual. The second part (Mantras VI-XI) aims at spiritual uplift of the society as a whole. Having purified himself and having done his duty towards the society, he approaches at the feet of the Master, in the third part (Mantras XII-XV). In the last part (Mantras XVI-XVII) the worshipper who is now nearer his Benefactor and is able to partake of the master-lustre prays for enlightenment of his intellect. In the end, the worshipper, beholden by God's gifts of personal purity, social uplift, intellectual enlightenment etc. bows to Him in gratitude.

HARISHARAN
SIDDHANTALANKAR

—:c:—



१. आचमन मन्त्र

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु ३६—१२

Psalm of Peace

O Lord Divine and omnipresent, bless us with all that is good. Content with the worldly gifts you have bestowed on us, we beseech Thee, O Lord, to give us peace of mind. We Pray to Thee, the spiritual Healer, to heal us of our vices and fears, so that we may be pure of body, mind and intellect.

२. इन्द्रिय स्पर्श

ओ३म् वाक् वाक् । ओ३म् प्राणः प्राणः । ओ३म् चक्षुः चक्षुः ।
ओ३म् श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओ३म् नाभिः । ओ३म् हृदयम् ।
ओ३म् कण्ठः । ओ३म् शिरः । ओ३म् बाहुभ्यां यशो बलम् ।
ओ३म् करतलकरपृष्ठे ।

Path of Righteousness

O, the Protector of the Universe, confer Thy blessings on me so that my expression, my breath, my vision, my hearing, my navel,

my mind, my throat, and my head are possessed of proper vigour and vitality. Give my arms and hands, O Lord, strength so that they are always engaged in righteous deeds.

३. मार्जन मन्त्र

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः ।
ओ३म् महः पुनातु हृदये । ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम् ओ३म्
तपः पुनातु पादयोः । ओ३म् सत्यं पुनातु पुनः शिरसि । ओ३म्
स्वं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

Purification of Mind and Body

Om is the Protector of mind and body from all ills. He is the force behind our breath and we pray to Him to purify our heads. We beseech Him to make our vision pure, for He is the Power that can destroy all evils, visible and invisible. To Him, whose power and influence pervade the entire body, we beg for purity of our throat. O Lord, the Great, We ask for your generosity to enlarge our hearts to purify them of all prejudices and predilections. May God the Creator purify the centre of our body (the creative energy). May He, the Supreme Effort, keep our feet pure. God is the Eternal Truth and we once again pray for His benediction to keep our heads pure. In conclusion, we beg of our Protector, who is spread as an all-pervading umbrella over the Universe, to redeem us

from all ills and ailments and ever to keep us pure and blotless in all respects.

४. प्राणायाम मन्त्र

ओ३म् भूः । ओ३म् भुवः । ओ३म् स्वः । ओ३म् महः ।
ओ३म् जनः । ओ३म् तपः । ओ३म् सत्यम् । तै० १०-१०-२७

Know Thy Lord

The Lord is the giver of breath, the destroyer of all evils and ailments, is the omnipotential force. He is the Great Master, the Creator, the Supreme Effort and the Truth.

५. अघमर्पण मन्त्र

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो
रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

ओ३म् समुद्रादणवादधि संवत्सरो अजायत अहोरात्राणि
विदधत् विश्वस्य मिषतोवशी ॥२॥

ओ३म् सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् द्विवञ्च
पृथिवीञ्चान्तरिक्ष मथो स्वः ॥३॥ ऋ० १० १६१. १-३

The Evolution of the Universe

The Master made the entire system governing the Universe and the spirit, which He directs through His penetrating knowledge. Thereafter, from Matter, shrouded in mystery, was evolved the Universe. And so was set in motion the whole oceans. Simultaneously with this motion came the conception of Time. The Director of

the Atomic Motion then created the day and the night. As in the case of earlier Universes, the Ever-Present Lord created the Sun and the Moon to regulate the day and the night. Also did He create the Planets, the skies, the Earth and the Stars.

Round the World with the Master

The worshipper who sat at the feet of his Master asked for mental peace in the first 'Mantra'. In the second, he invited Lord's benedictions for the path of righteousness. In the third 'Mantra', he sought His blessings for purity of mind and body. In the next, he recited the various qualities of God. In the fifth, he learnt of the evolution of the Universe. Armed with this spiritual equipment the worshipper takes a trip round the world with the master in the six 'Mantras' below (VI-XI).

६. मनसा परिक्रमा मन्त्र (१)

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।

अथर्व ३, २७, १

Excelsior

The worshipper first visualises to-wards the East. This direction is symbolic of advance forward guided by Agni, the Supreme Leader. Let

the flames of spiritual progress consume all worldly shackles and restrictions which stand in the way of march forward. The ever advancing sun constantly invites the worshipper to go ahead. The beholden worshipper bows in gratitude to all those from whom he received guidance, protection and inspiration in his march forward. In this struggle, the devotee does not take the law in his hand, for if there is a person who is hostile to others and for that reason does not merit the latter's affection, he (the worshipper) leaves that person to the jaws of lord's justice.

७. मनसा परिक्रमा मन्त्र (२)

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चाजी रक्षिता पितर
इषवः । तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो
नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे
दध्मः ।

—अथर्व ३, २७, २

Turn South

Now the worshipper visualises towards the right. This direction is symbolic of efficiency. Indra, the custodian of wealth and prosperity, will be his guide in this direction. The performances of the birds and animals will serve in this path as his ideals (e.g. flight of the kite, honey making by bees and the swimming of the lion). The achievements of the elders will

engineer in him the requisite inspiration. The struggle for uplift leads to efficiency and efficiency to wealth and prosperity. But wealth has its corrupting influences and one must cry halt to his race for worldly goods in the interest of spiritual progress; hence the 'recall' in the next 'Mantra'.

८. मनसा परिक्रमा मन्त्र (३)

प्रतीची दिग् वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अथर्व ३, २७, ३

Turn West

Next the worshipper visualises to-wards the West. This direction is symbolic of return. He is required to recall his senses from indulgence in luxury. In this effort for recall, Varun, the Sublime, will be his guide. The Earth, which recalls everything to its lap, will be his protector. Our experience of eating food is an index of recall, for a man does withdraw his hand from food howsoever good, after a certain point, beyond which the self-same food becomes definitely harmful.

९. मनसा परिक्रमा मन्त्र (४)

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

Turn North

The worshipper now visualizes towards the North. This direction is symbolic of uplift. In this effort, his watchword will be humility, backed by ceaseless activity. The flame will be his ideal, for it always rises upwards.

१०. मनसा परिक्रम मन्त्र (५)

ध्रुवादिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अथर्व ३, २७, ५

Look Under

The worshipper next concentrates his meditation in the direction below him. This direction is symbolic of stability. The broad-minded Vishnu will be his guide. In his quest for stability, the worshipper will be protected by one adorned with vast and variegated knowledge and the luxurious creepers will provide inspiration for his large-heartedness.

११. मनसा परिक्रमा मन्त्र (६)

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः शिवत्रो रक्षिता वर्षमिषवः
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो
अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

अथर्व ३, २७, ६

Look Highest

Having already looked round in five directions, the devotee concentrates his meditation on the highest point. This is symbolic of perfection. In his quest for perfection, the worshipper seeks the guidance of All-knowing Brihaspati and Protection from 'Shvitra', the Chaste. The reward is bliss.

१२. उपस्थान मन्त्र (१)

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यम-
गन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥

यजु ३५, १४

The Devotion Proper

In the preceding six 'Mantras', the devotee moved round the World with the Master and looked and learnt. The first step was to advance forward, to attain maximum efficiency and in consequence worldly goods. The quest for worldly goods was to be only to a point, short of craze for luxuries. So he was asked to recall his senses or to return. With his senses under control and humility as his watchword, he proceeded towards firmness of character and mind, to attain the highest perfection and spiritual bliss. With his mind so calmed and cured, he is now ready to enter upon 'upasana', the real devotion. Elevated from the blissfully ignorant material world, and illumined in our inner

selves, we come to Thee O Lord, the Light Sublime. Thou art Light of Lights, the Prime Mover and the Inspirer of all that is good.

१३ उपस्थान मन्त्र (२)

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ।

यजु ३३, ३१

The object

The object of devotion to the Omnipresent is not a selfish aim; it is to attain knowledge for the benefit of humanity at large.

Those who have realised Him proclaim for the knowledge of humanity that He is present in things, big and small, high and low; that He is the light of the lights that shine and that He is the Inspirer of all that is good and virtuous.

१४. उपस्थान मन्त्र (३)

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्रा
द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं^७ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

यजु ७, ४३

Dedication

It behoves us to worship God and God alone. He is the force behind all that shines and He is the knowledge behind all the learning. It is He that blossoms in our hearts, His worshippers. He is the lustre of the sun; the speed of

the wind and the flame of fire- He completely envelopes space-ethereal celestial and terrestrial and is the life-giver of all. He is the soul of all that is in motion or at rest. To him we dedicate ourselves.

१५. उपस्थान मन्त्र (४)

तच्चक्षुर्देवहितं पुरताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतम्,
जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः
शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात् ।

यजु १६,४१

Self-realization

At the commencement of each. 'Sri-shti' (world), the all-knowing God imparts knowledge through the Vedas for the benefit of those who strive to understand it. It is our bounden duty that all through the one hundred years of our lives, we should learn, listen and live according to this knowledge. Not only that, we should also disseminate this knowledge to others. The result will be self-realization. May we live more than a hundred years and continue to act as cited above.

१६. गुरु मन्त्र

भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्व रेणयं भर्गो देवस्य धीमहि धियो
यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु ३,३५

The Touchstone

God is the supreme existence, the everlasting entity; He is the source of all knowledge and the giver of happiness and bliss. He is the Creator, the Benefactor and the Revealer. He is the all-powerful Light that illuminated everything. It is incumbent on us to aspire to partake of His purifying lustre, so that our intellect and actions may be directed to-wards the right path.

१७. नमस्कार मन्त्र

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय
च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ मनु १६, ४१

Thanks-giving

We bow in gratitude to Him, the embodiment of contentment, peace and bliss. We offer our thanks to Him, for He alone is the source of peace, and he alone is the generator of happiness. We prostrate before Him for He is Benevolent, nay the Supreme Benevolent.